॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार

(भाषा वार्तिक)

जम्बुदेशाधिपति श्री १०८श्रीरणवीरसिंहजी के आज्ञानुसार
पण्डित-शिवशंकरजी ने बनाया.

उसे
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
इन्हों ने
शुद्ध करवाकर
अपने
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखानेमें
छापकर प्रसिद्ध किया.

कल्याण—मुम्बई.

शके १८१६ संवत् १९५१

29-2

॥ श्रीः ॥

अथ वासिष्ठसारनाम के ग्रंथ की विषयानुक्रमणिका ।

29-2

॥ इति वासिष्ठसारानुक्रमणिका संपूर्णा ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापखाना

कल्याण-मुंबई

9

॥ श्रीः ॥

श्रीरघुनाथो विजयतेतराम् ।

अथ

वासिष्ठसार.

मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

दोहा—गणपति गुरु गिरिजासधव, गिरिधर गिरा मनाइ ॥ वरणोंचरित वसिष्ठ जो, प्रश्नोत्तर हरषाइ ॥ १ ॥ वाल्मीक भरद्वाजसों, रघुनंदनहि वसिष्ठ ॥ वर्णितहै अध्यात्मप्रद, ब्रह्मज्ञानको इष्ट ॥ २ ॥ आदिकाव्य वाल्मीकमुनि,—विरचित लक्षश्लोक ॥ अधिकाहिहैं तातें सबहिं, होत नाही अवलोक ॥ ३ ॥

सोरठा—यांको मथ संक्षेप, सार बैन सब मनुजहित ॥ मिटहि अजाविक्षेप, सुगम अर्थ आनंदप्रद ॥ ४ ॥

दोहा—नगरबिसोलिमै भये, पंडित जतीसराम॥ तिननके शिष्यजु जानिए, विद्यासद्गुणधाम ॥ ५ ॥

सवैया—नाम गुपालसराम कहैं पुरमंडल धाम रहैं निहकामा॥ ग्रंथ वसिष्ठ विचार करें नित संग्रहसार वसिष्ठ सुनामा ॥ नूतनही रच बोध हुवै सब लोकहुको सुमरै हिय धामा॥ सप्तसहस्र सलोककिये सब अर्थ लहैं नर पूरणकामा ॥ ६ ॥

दोहा— जंबुसतीसरतिवतमुख, देशनको अधिईश ॥ श्रवण कियो संग्रह सकल, १०८ श्रीरणवीर नरेश ॥ ७ ॥

ज्यौं विश्वंभर विश्वगत, पालक सब जग जोइ ॥ त्यौं भूपति रण-वीर हरि, पालहि निजजन सोइ ॥ ८ ॥ सुन वसिष्ठ संग्रह सुगम, ब्रह्मज्ञानसुख पाइ ॥ शिवशंकरजीसौं कही, वार्तिक रचों बनाइ ॥ ९ ॥

सोरठा–श्रीहरियश अभिधान, ब्रह्मनिष्ठ पंडित विमल ॥ तिनकी शासन मान, वार्तिक कियो वसिष्ठरच ॥ १० ॥ मुनिवर वचन निगूढ, अर्थ न समझो जातहै ॥ तद्यपि करों अगूढ, शिवशंकरपरसादते ॥ ११ ॥

दोहा– सब लोकहिं उपकारहित, भाषा सुगम बनाइ ॥ वसिष्ठसार वार्तिक रच्यो, सबहीके मनभाइ ॥ १२ ॥

अडिल–संवत् नवत्रिकअंकइंदुमित वैक्रमी ॥ शैशिरऋतुतपमाहि अरंभ्यो अनुक्रमी ॥ हुवो सपूरणमुद्रित जनहितकारही ॥ जांहि पढैं अरु श्रवण करत भवतारही ॥

टीका–वाल्मीकजीने भरद्वाजकेप्रति जो वसिष्ठरामजीका संवाद सुनायाहै तिसका सार लेकरके शुभ करनेहारा संग्रह कराहै ॥१॥ तिसमें भरद्वाजका प्रश्न है हे गुरुजी! मुक्तका क्या लक्षण है? अरु स्वरूप क्या है? मुक्ति किसप्रकारकर होतीहै? सो मेरे प्रति कहो, ऐसा प्रश्न सुन वाल्मीकिमुनि भरद्वाजप्रति कहतेभये ॥ २ ॥ पहिले मंगलाचरण करतेहैं कि, जौनसा प्रभु मेरेको स्वर्गविषें, पृथिवीविषें, आकाशविषें बाहिर अरु भीतर सर्वत्र प्रकाशमान होताहै अरु स्वयंप्रकाशरूप है तिस सर्व स्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ३ ॥ हे भरद्वाज! यह जगत्का भ्रम आकाशके नीलरंगकी नांई मिथ्याही फुराहै इसका जो फेर नहीं फुरणा ऐसा जो विसरणाहै तिसको मैं बहुत श्रेष्ठ मानताहूं ॥ ४ ॥ हे शिष्य! यह नेत्रोंकरके प्रत्यक्ष देखीदा जो जगत् है सो सत्य नहींहै ऐसा ज्ञानकरके मनसें दृश्यपदार्थका दृढपरित्याग सि-

द्ध होवे तो परमनिर्वाणके आनंदकी प्राप्ति उत्पन्न होतीहै ॥ ५ ॥ जो मनसे दृश्यपदार्थका दृढपरित्याग नहीं होवे तो अनेकशास्त्ररूपेश्य कुहाविषे भ्रमण करनेहारे जो तुम हो अपने स्वरूपके ज्ञानविना आपही अज्ञानी हो तुमको अनेक कल्पोंकरकेभी आनंदकी प्राप्ति नहीं होवेगी ॥ ६ ॥ हे शिष्य! सर्वप्रकारकरके अंतःकरणते वासनाका दृढपरित्याग जो है सोई मोक्ष कहीदीहै वही आनंदप्राप्तिका निर्मल मार्ग है ॥ ७ ॥ सो वासना दो प्रकारकी कहीहै एक शुद्ध वासना है अरु एक मलीन वासना है तिनमें मलीन वासना जन्ममरणका कारण है अरु शुद्धवासना जन्ममरणका नाश करतीहै ॥ ८ ॥ अज्ञानही दृढस्वरूप है जिसका दृढ अहंकारको प्रवृत्त करतीहै फिर जन्मको करनेहारी है पण्डित लोगोंने वह मलीन वासना कहदीहै ॥ ९ ॥ जौंनसी दूसरे जन्मके अंकुरको त्यागकर दग्ध भयेहुये बीजकी नांई स्थित भईहै देहके निर्वाहकेलिये धारण करीदीहै, जानिया है परमात्माका स्वरूप जिसकरके सो शुद्ध वासना कहदीहै ॥ १० ॥ हे शिष्य! जौंनसे शुद्ध वासनावाले पुरुष फिर जन्मके क्लेशकों नहीं भोगतेहैं परमात्माके स्वरूपकों जाननेहारे हैं जीवन्मुक्त कहेहैं अरु उदारबुद्धि हैं ॥ ११ ॥

भरद्वाज उवाच—हे गुरुजी ! वसिष्ठजीने श्री-रामचंद्रके प्रति जिसप्रकारका उपदेश कियाहै तिस उपदेशको तुम मेरेप्रति कहो तुम दयारूपी अमृतके समुद्र हो ॥१२॥ श्रीवाल्मीकिजी कहतेहैं, हे शिष्य! जिससमय विश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाकेलिये श्रीराचद्रंजीको लेजानेको राजा दशरथके पास आयेहैं तिससमयमें श्रीराजा रामचंद्रजीके सेवकोंको पूछताभया रामचंद्रजी कहां हैं अरु क्या करतेहैं? तब श्रीरामचंद्रजीके सेवक राजा रामचद्रजीका वैराग्य कहतेभये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! श्रीरामचंद्रजी अपने दिनके भोजनादि व्यवहा-

रके हमारे यत्नकरके बहुत विनती करके सायंकालविषे प्रसन्नवदन होयकरके किसीसमयमें करतेहैं अथवा किसी समयमें नहींभी करतेहैं ऐसे विरक्त जैसे जानीदेहै ॥ १४ ॥ स्नानविषें देवताकी पूजाविषें अरु दानविषें भोजनादिकोंविषें दुःखी मन जैसे जानीदेहैं हमारी बिनती करकेभी तृप्तपर्यंत भोजन नहीं करतेहैं खान-पानसेंभी विरक्त जानतेहैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! चंचल जो मंदिरों—मेहलोंविषें स्त्रियां हैं सो रामचंद्रजीको झुलाओंनेवास्ते झूलना करतीहैं तिन्हके साथभी क्रीडा नहीं करतेहैं जैसे वर्षाकी धारासाथ पपीहा खेलताहै तैसे भोगपदार्थोंमें प्रीति नहीं करतेहैं ऐसा विरक्तहै ॥ १६ ॥ हे राजन्! मणिगणोंकरके खचित मुकुटकंकणादिकभूषणोंकी सामग्री रामचंद्रजीको प्रीति नहीं करतीहै जैसे नक्षत्र तारागण स्वर्गतें अपने गिरनेको नहीं प्रीत करते ॥ १७ ॥ पृथिवीके भोगोंको तुच्छ मानतेहैं हे राजन्! क्रीडा करतियां स्त्रियोंके देखनेंसे वहतेहुये पुष्पोंकी सुगंधीवाले पवनोंविषें शोभायमान कुंजभवनोंविषें रामचंद्रजी अत्यंत खेदको प्राप्त होतेहैं ॥ १८ ॥ जौनसा राजालोगोंके भोगनेयोग्य पदार्थ हैं अत्यंत स्वादवाला है अत्यंत सुंदर है मनको हरनेहारा है तिसको देखकर मानों आंसूजलकरके नेत्र भरेगयेहैं ऐसे रामचंद्रजी उसीपदार्थकरके खेदको प्राप्त होतेहैं ॥ १९ ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी नृत्य—विलासोंविषें नगरकी वेश्याको देखकरके इसप्रकार करके निंदित करतेहैं यह स्त्रियां क्या हैं अत्यंत क्लेशकों देनेहारियां हैं इन्हकी शोभा कैसी है कछुभी नहीहै यह नरकका स्थान है ॥ २० ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी जो हैं सो उत्तमभोजनकों उत्तमशय्याकों उत्तम हाथी-घोडा-रथकी सवारियोंकों उत्तम विलास स्नानकी सामग्रीकों उत्तम विछौनोंकों विक्षिप्त पुरुषकी नाई पसंद नहीं करतेहैं ॥ २१ ॥ मेरेको संपदा करके सुख क्या है? वि-

पदाकरके दुःख क्या है? गृहकरके अनेक प्रकारकेउत्तम चेष्टाकरके क्या प्रयोजन है? यह सबही असत्य है ऐसे काहिकरके चुप्प होय रहेहैं ॥ २२ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी हासविलासोंविषें प्रसन्न नहीं होतेहै अरु भोगपदार्थोंविषें मग्न नहीं होतेहै कार्य करनेविषें उद्यम नहीं करतेहैं केवल मौनकोही धारण करतेहैं ॥ २३ ॥ हे राजन्! सुंदर चंचल हेमलताकीनाईं अलकां जिन्हकी अरु अनेक भावोंकरके चंचल हैं नेत्र जिन्हके ऐसी स्त्रियां रामचंद्रजीको आनंद नहीं करतीहैं जैसे हरणियां बनके वृक्षोंको विकार नहींकरतीहै ॥२४॥ हे राजन्! रामचंद्रजी एकांतस्थानविषें, इष्टदेशोंविषें, नदीतीरोंविषें, वनोंविषें, शून्यस्थानोंविषें प्रीत धरता है जीवोंविषें विकाय गयाहै मानों ऐसी दया करताहै ॥ २५ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी वस्त्रविषें, जलपानादिकविषें, दानविषें विरक्त होयकरके सर्वत्याग करनेवाले ब्रह्मनिष्ठ तपस्वीके पीछे अपने चित्तकी शांतिवास्ते सेवा करने जाताहै ॥ २६ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी अकेला एकांतनिर्जनस्थानविषें स्थित होताहै एकाग्र बुद्धिकरके हँसताभी नहींहै गायनभी नहीं करताहै रोदनभी नहीं करताहै एकाग्रवृत्ति धारण करताहै ॥ २७ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी पद्मासन बांधकरके स्थित होतेहै वैराग्य करके योग्यपदार्थोंके भोगसें जड होयकरके अंतःकरण शून्य हैं और कैसे हैं वामेहाथविषें मुखकों स्थापन करके चिंताकरके केवल मौन धारण करके स्थित होतेहैं ॥२८॥ हे राजन्! रामचंद्र देहके अभिमानको नहीं करताहै राजा होनेकीभी वांछा नहीं करताहै सुखदुःखादि वृत्तियोंविषें हर्ष शोक नहीं करताहै ॥ २९ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी दिन दिन प्रति पीले वर्णकों प्राप्त होताहै अरु दिन २ प्रति वैराग्यकों प्राप्त होताहै जैसे शरदऋतुके अंतमें वृक्ष पत्र-पुष्प-फलोंकरके रहित होताहै तैसें विषयभोगकी वृत्तितें रहित भयाहै अरु

निर्वासन भयाहै ॥ ३० ॥ हे राजन्! रामचंद्र अपने पास बैठे-हुये प्रीतवाले सुहृज्जनोंको ऐसे शिक्षा करताहैं. हे भाई! तू भोगोंविषें वनको मतकर यह भोग देखनेमात्रही सुंदर है अंतकालमें शोक दुःखको देनेहारे है ॥ ३१ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी अनेक प्रकारके ऐश्वर्य भूषणकर शोभायमान भई कथा प्रसंगयो सभामें प्राप्त भई स्त्रियोंविषें आत्मनाशको नहीं प्राप्तभयेको देखताहै स्त्रिप्रसंगकरके आत्माका विस्मरण होताहै ॥ ३२ ॥ हे राजन्! रामचंद्र संसारके कार्यमें आसक्त भये लोकनकों ऐसे कहताहै यह लोकोंने परमानंदकी प्राप्तिके साधनविना कामभोगकी अनेक चेष्टाकरके वृथा आयुष्य गवाईहै ॥ ३३ ॥ हे राजन्! रामचंद्र राज्यप्राप्तिसे विरक्त-मन हैं तुम चक्रवर्ती राजा बनों ऐसे कहते अपने सेवककों बकवाद करते विक्षिप्त पुरुषको जैसे लोक हँसताहै ऐसे हँसताहै अरु आदर नहीं करताहै ॥ ३४ ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी किसीके कहेहुये वचनको नहीं श्रवण करताहै आगे आप प्राप्त भयेको देखताभी नहींहै जौनसे संसारमें उत्तम पदार्थ है तिन्हमें सर्वत्र अनादर करताहै जैसे सोवते पुरुषको पदार्थका ज्ञान नहींहोताहै ऐसे रामचंद्रजीको वैराग्यकरके कछुभी नहीं भासताहै ॥ ३५ ॥ जो श्रीरामचंद्रजी आकाशविषें कमलको देखे अथवा आकाशमें वृक्षोंके महावनको देखे तोभी यह मायाका विलास ऐसाही है ऐसे मनमें विचार करके आश्चर्यकों नहीं मानताहै ॥ ३६ ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी सुंदरस्त्रियोंके बीच स्थित होताहै तौभी कामदेवके बाण श्रीरामचंद्रजीके मनको वेध नहीं करतेहैं जैसे पत्थरकी शिलामें वर्षाजलकी धारा नहीं प्रवेश करती हैं ॥ ३७ ॥ हेराजन्! रामचंद्र ऐसा विचार करके अपना सर्वस्व अर्थिजनोंकों देने चाहताहै यह धन आपदाका मुख्य निवास है. हे मन! तू

धनकी वांछाको क्यों करताहै यह बाकी कछु नहीं रहेगा धनका त्यागना उत्तम है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्र इसप्रकारके श्लोकोंको गायन करतेहैं यह आपदा है यह संपदा है यह मनकी कल्पनासे मोह उदय भयाहै सच्चा नहींहै ॥ ३९ ॥ हे राजन्! रामचंद्र वैराग्यकरके ऐसा कहताहै यह लोक दुःखको प्राप्त हो ऐसा पुकारता है मैं मरा हूं मैं अनाथ हूं तथापि वैराग्यकों प्राप्त नहीं होताहै यह आश्चर्य है ॥ ४० ॥ हे राजन्! रामचंद्र अपनेको उपदेश करनेको आए राजाओंको अथवा ब्राह्मणोंको आगे देखकर मूर्खकी तरह आदर नहीं करताहै भलीतरहँ जानताभी नहींहै ऐसी एकाग्रताकों प्राप्त भयाहै ॥ ४१ ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्र यह निश्चयकरके स्थिरचित्त भयाहै जो यह जगतनाम करके इंद्रजाल विस्तारको प्राप्त भयाहै सो सत्य नहींहै झूंठाही उदय भयाहै ॥ ४२ ॥ हे राजन्! रामचंद्रको शत्रुमें आपने आपेमें राज्यमें मातामें संपदाकरके विपदाकरके बाहिरके पदार्थोंमें आदर अनादर कोई नहींहै ॥ ४३ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजी अंतःकरणमें यह निश्चय करता है मेरेको धन करके और माता करके राज्यकरके जगतकी चेष्टाकरके क्या अर्थ है? और प्राणत्याग करनेकोभी तत्पर भयाहै ॥ ४४ ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी भोगोंमें और जीवनकी आशामें राज्यमें मित्रमें और पितामें और मातामें उदासीनताको धरताहै जैसे पराये घरमें उदासीनता होतीहै श्रीराचंद्रजीने ऐसी उदासीनता करीहै ॥ ४५ ॥ हे राजन्! रामचंद्रजीका ऐसा स्वभाव भयाहै अब श्रीरामचंद्रजीको संपूर्ण ऐश्वर्यसहित जितना संसारके पदार्थोंका जाल है सो नागफांसीके समान भासताहै ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत राजा दशरथने रामजीको सभामें बुलाया तो सभामें आये श्रीरा-

मचंद्रजीको विश्वामित्रजीने प्रश्न किया, हे रामचंद्रजी ! तुमनें खेदकी अवस्था क्यों धारण करीहै तो श्रीरामचंद्रजी अपने विचारको विश्वामित्र प्रति कहतेहैं ॥ ४७ ॥

श्रीरामचंद्र उवाच-हे मुने ! यह संसारमें सुख क्या है ? संसारकी उत्पत्तिका विस्तार क्या है ? इसका नाम क्या है ? लोग मरणकेलिये जन्म लेताहै और जन्मकेलिये मरताहै ॥ ४८ ॥ हे मुने ! यह जगत्के भाव केवल अपनी मनकी कल्पनाकरके आपसमें मिलतेहैं कैसे हैं लोहकी शिलासमान आपसें भिन्न भिन्न हैं ॥ ४९ ॥ हे मुने ! झूंठी मनकी कल्पना करके हम लोग खेंचेगयेहैं जैसे जैसे रेतीमें सूर्यकी किरणोंकी चमककरके जलकी भ्रांति होतीहै तो मृगजलकी तृष्णाकरके दौडकर प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ हे मुने ! मेरेको राज्यकरके क्या सुख है? और भोगोंकरके हर्ष क्या है ? मैं कौन हूं मेरेको यह कौन वस्तु प्राप्त भईहै ? जो मिथ्या पदार्थ है सो मिथ्याही है इन्ह पदार्थोंमें किसको कौन नामकरके कौंन फल प्राप्त भयाहै ॥ ५१ ॥ हे मुने ! ऐसे विचार करते मेरेको जगत्के सब भावोंमें विरक्ति आईहै जैसे मुसाफरको निर्जलदेशमें विरक्ति होतीहै ॥ ५२ ॥ हे मुने ! यह लोक जड हैं प्राणरूपी पवनोंकरके वृथा श्वास शब्द करतेहैं जैसे वनमें पवनकरके पोले वांस शब्द करतेहैं ॥ ५३ ॥ हे मुने ! यह संसारका दुःख कैसे शांत होय ऐसी चिंता करके मैं तपित हूं जैसे पुराने वृक्ष अपने कोटरमें प्राप्त भई उग्रअग्निकरके दग्ध होताहै ॥ ५४ ॥ हे मुने ! यह संसारके दुःखरूपी पत्थरोंकरके मेरा हृदय भराहै मैं अपने लोकोंकी लज्जाके भयसे अश्रु प्रगट करके रोदन नहीं करताहूं ॥ ५५ ॥ हे मुने! यह धन जो है सो चिंतासमूहके चक्र फिरतेहैं गृह जो है सो आ-

पदारूप स्त्रियोंके उत्पत्तिस्थान है मेरेको आनंद नहीं करतेहै ॥ ॥ ५६ ॥ हे मुने ! यह लोक अपने परायेमें तबलग कोमल वृत्ति करके वर्त्तमान हैं जबलग लक्ष्मीके मदकरके कठोर नहींभया-है जैसे पवनके वेगकरके ओस उडजातीहै ऐसे लक्ष्मीके मदक-रके शीलता उडजातीहै ॥ ५७ ॥ हे मुने ! लोक विद्यामें पंडित होवे और वीर होवे या उपकारी होवे अथवा शीलवंत होवे तोभी ल-क्ष्मीका मद सबको मलीन करदेताहै जैसे गरदकी मुठीकरके मणि मलीन होतीहै ॥ ५८ ॥ हे मुने ! पुरुष संपदावाला होकर जिसमें अन्याय और गर्व और बल और व्यसन और पाप नहीं होवे और लोक जिसकी निंदा नहीं करे और जो पुरुष शूर वीर होवे अपनी स्तुति नहींकहे और जो राजा होकर न्याय करनेमें समदर्शी होवे ये तीन पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं ॥ ५९ ॥ हे मुने ! यह लक्ष्मी देखनेमें सुंदर है चित्तवृत्तिको खेंचलेतीहै और कृप-णोंके आधीन रहतीहै क्षणमात्रमें नष्ट होतीहै सर्पिणीके समान चि-त्तवृत्तिको घेर लेतीहै जैसे फलपुष्पोंकरके युक्त लता पासके वृ-क्षको घेर लेतीहै ॥ ६० ॥ हे मुने ! आयुष्य नयेदलके अग्रभागमें स्थित जलबिंदुके समान चंचल है जैसे कोई विक्षिप्त पुरुष अ-कस्मात् घरको त्यागकर चलाजाताहै तैसे आयुष्य शरीरको अकस्मात् त्याग कर जाताहै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! विषयरूपी स-र्पोंके प्रसंगकरके जिन पुरुषोंके चित्त शिथिल होगयेहैं तिन पुरुषोंको आत्माका विवेक दृढ नहीं भयाहै तिनका जीव दुःखों-का कारण है ॥ ६२ ॥ हे मुने ! हमने देहका स्वरूप जानलिया है निश्चय मान लियाहै अब संसाररूपी घटामें बिजुलीके समान चंचल ऐसी आयुष्यमें आनंद नहीं मानतेहैं ॥ ६३ ॥ हे मुने ! जो पुरुष पवनके रोकनेको योग्य मानें आकाशके खंडनको योग्य

मानें तरंगोंके पकडनेको योग्य मानें सो पुरुष आयुष्यकी स्थिरताको योग्य मानें ॥ ६४ ॥ हे मुने ! जिस जीवनकरके परमात्मावस्तुकी प्राप्ति होवे जिस करके फेर शोक नहींकरनाबने वही जीवन परम आनंदकी प्राप्तिका स्थान है सो उत्तम जीवन कहाहै ॥ ६५ ॥ हे मुने ! वृक्षभी जीवतेहैं मृगपक्षीभी जीवतेहैं जिसका मन अपने संकल्प विकल्परूपी मननव्यापारसें रहित होकर स्थिर होय गयाहै सोही जीवताहै ॥ ६६ ॥ हे मुने ! जगत्में जीव जन्मे हैं तिनका जीवना सफल है जो यहां फिर जन्म नहीं लेतेहैं और सबही आवा गमनके गये हैं ॥ ६७ ॥ हे मुने ! निर्विवेकी पुरुषको शास्त्रका पठन भार है राग–द्वेषवालेको तत्त्वज्ञान भार करताहै जिसको शांति नहींहै तिसको मनकी कल्पना भार करतीहै जिसको आत्मज्ञान नहींहै तिसको देह अपना भार है उसको मोक्षसुख प्राप्त नहींहोताहै ॥ ६८ ॥ हे मुने! सुंदर रूप और आयुष्य और मन और बुद्धि और अहंकार और इच्छाकिये हुये मनोरथ जो हैं यह सबही दुर्बुद्धिपुरुषको दुःख देनेवाले हैं जैसे भार उठावनेवालेको आपही उठाया हुआ भार दुःख देताहै ॥ ॥ ६९ ॥ हे मुने ! जो दीर्घ दुःख है और अत्यंत उग्र दुःख है और भारी दुःख है सो सबही अहंकारसे प्रगट भयेहैं जैसे खदिरवृक्षसे अंगारे प्रकट होतेहैं ॥ ७० ॥ हे मुने ! अहंकारके वशते जो जो मैंने भोगाहै और जो होम कियाहै अरु जो जो कर्म कियाहै सो सो सबही मिथ्या है अहंकारसे रहित होनाही सत्यपदार्थको प्राप्त करताहै ॥ ७१ ॥ हे मुने ! सो अहंकार चिरकालका उग्रवैरी है तिसको धारकर मैं भोजन नहींकरताहूं और जलपान नहींकरता हूं भोगोंको कैसे भोग करूं ॥ ७२ ॥ हे मुने ! पुत्र और मित्र और स्त्रियां जगत्का विस्तार आत्मज्ञान विना अहंकारनाम वैरीने फैलायाहै ॥ ७३॥

हे मुने! अहंकारकरके यत्नकरके जो जो कियाहै सो सो सर्व आपदाका स्थान है अरु असत्य है अंतःकरणमें उपाधिभूत है उत्तम गुणोंसे रहित है. हे मुने! अहंकारका त्यागकर जो मुझको कर्त्तव्य है सो उपदेश तुम मेरेको करो ॥७४॥ हे मुने! यह चित्तकी शुभवृत्तियां अनेक कल्पनारूप शय्यामें लीन भईहैं और अबलग सावधान नहीं होतींहैं इसीकारण मैं संतापको प्राप्त भयाहूं ॥ ७५॥ हे मुने! समुद्रके पान करनेसें और सुमेरुपर्वतके उठावनेसें अरु अग्निके भक्षण करनेसेंभी चित्तका रोकना बडा काठिन है तिससें चित्त यत्नकरके रोकने योग्य है ॥ ७६॥ हे मुने! चित्त जगतके पदार्थोंका कारण है और चित्तके होनेंसे त्रैलोक्य बनाहै अरु चित्तके क्षीण भयते त्रैलोक्य क्षीण होताहै चित्त यत्नकरके जीतने योग्य है ॥ ७७ ॥ हे मुने! अनेक जगत्के सुख चित्तसें प्रगट होतेहै और विवेकबलसे चित्त शांत भयेते सुखदुःख सब शांत होतेहैं ॥ ७८ ॥ हे मुने! तृष्णा नामवाली विषज्वालाकरके मैं दग्ध भयाहूं जैसे तृष्णारूपी ज्वालाका संताप शांत होवे सो मेरेको अमृतके सिंचन करकेभी नहीं बनताहै ॥ ७९॥ हे मुने! अपनी आत्मापदवी प्राप्तहोनेको हमारी बुद्धि समर्थ नहीं है हमलोक चिंताके जालमें मोहित भयेहैं जैसे जालमें पक्षी फस जाताहै ॥ ८०॥ हे मुने! यह लोक चिंता त्यागकरके दुःखको त्याग करताहै तृष्णारूपी विषूचिकाको दूर करनेंको चिंता त्याग करनाही महामंत्र कहाहै ॥ ८१ ॥ हे मुने! यह तृष्णा रोगपीडाकी स्त्री है सो गंभीरमनवाले पुरुषकोंभी अपने वश करलेतींहै जैसे सूर्यकी किरण कमलको अपने सन्मुख करलेतीहैं ॥ ८२ ॥ हे मुने! तरवारकी धारा और वज्रकी ज्वाला और तपेहुये लोहेकी चिनगारी जैसी तीक्ष्ण नहीं हैं जैसे हृदयमें स्थितभई तृष्णा तीक्ष्ण है ॥८३ ॥ हे मुने! यह तृष्णा एकही है त्रैलोक्यको निशानेकी तरह वेध करतीहैं देहमें स्थित है

तोभी लखी नहींजातीहै संसारसमुद्रसें ऐसे प्रकट भईहै जैसे क्षीर-समुद्रसें मदिरा प्रकट भईहै ॥ ८४॥ हे मुने! यह कलेवरही अहंकार-रूपी पुरुषका घर है सो चहिये नष्ट होवे चहिये रहे मेरेको इसकरके कोई काम नहींहै ॥८५॥ हे मुने! यह देहरूपी घर कैसा है मल कर के युक्त ऐसे विषसमूहके भांडेओंके संग्रहवाला है और अज्ञानरूपी खारे द्रव्यकरके भराहै सो मेरेको प्रिय नहींहै ॥ ८६ ॥ जिह्वारूपी वा नदीने रोका मुखरूपी द्वार करके भयानक दंतादिक हड्डियां प्रत्यक्षही देख परतीहैं ऐसा देहरूपी घर मेरेको प्रिय नहींहै ॥ ८७ ॥ नखरू-पी झोपडी नाम कीडोंका घर है कुत्तेके भोंकनेकी सदृश ये श-ब्दवाला है ऐसा देहरूपी घर मेरेको प्रिय नहींहै ॥ ८८ ॥ समस्त रोगोंका स्थान है त्रिवलीयां और सपेद केशोंका नगर है समस्त दुःखरूपी शत्रुनके घेरनेका घर है ऐसा देहरूपी घर मेरेको प्रिय नहीं-है ॥ ८९ ॥ हे मुने! मरणके समयमें जौंनसे देह गेह इंद्रिय धनादिक जीवके साथ नहींहोतेहै सो सवही कृतघ्न हैं तिनहूमें बुद्धिवान् पुरुषों-को क्या विश्वास है ॥ ९०॥ हे मुने! यह देह वृद्धावस्थामें वृद्ध होता-है और मरणसमयमें मृत होताहै और भोगवानको और दरिद्रको देह एकसमान है ॥ ९१ ॥ हे मुने! जौंनसे देहमें दृढ विश्वास करतेहैं और जौंनसे जगत्की स्थितिमें नित्यता मानतेहैं सो पुरुष मोहरूपी मदिराकरके मत्तवाले हैं तिन्हको वार वार धिक्कार है ॥ ९२ ॥ हे मु-ने! देहका मैं नहीं मेरा देह नहीं ना यह मेरा है ना मैं इसका हों ऐसे निश्चयवाले जो है सो उत्तम पुरुष हैं. हे मुने! जिसने विजुलीमें शरद-ऋतुके वदलेमें गंधर्वनगरमें स्थिरता मानीहै सो देहकोभी नित्य माने ॥ ९३ ॥ हे मुने! चंचल है स्वरूप जिसका अनेक कार्य भार तिसके तरंग हैं ऐसे संसारसमुद्रमें जन्म पायकरके बालकअवस्थाके बड़ दुःख देनेवाली है ॥९४॥ हे मुने! जौंनसी चिंता बालकअवस्थामें

हृदयको पीडा करतीहैं सो चिंता मरनेमेंभी नहींहै! न वृद्धावस्थामें है न रोगपीडामें हैं न आपदामें हैं न यौवन में हैं ॥ ९५ ॥ हे मुने! जौंनसे बालकअवस्थाको सुंदर मानतेहैं सो मूढ हैं और व्यर्थबुद्धि हैं तिन्हका चित्त नष्ट भयाहै उन्हको धिःकार है॥९६॥ हे मुने! मन स्वभावतें चंचल है बालपना उसतेंभी चंचल है सो दोनों जब मिले तो चंचलतासें कौन बचावनेवाला है ॥ ९७ ॥ हे मुने! स्त्रियोंके नेत्रोंने और विजुलीके पुंजोंने और अग्निकी ज्वालापुंजोंनें और तरंगोंने बालपनाते चंचलता लीनी है ॥ ९८ ॥ हे मुने ! बालपनामें गुरुतें भय होता है और मातापितातें भय होताहै लोकोंतें भय होताहै और बडे बालकतें भय होताहै और बालपना भयका घर है ॥९९॥ हे मुने! महानरकोंका बीज है सदैव भय देनेहारा है ऐसें यौवनकरके जौंनसे नहीं नष्ट भयेहैं सो और किसीकरके नहीं नष्ट होतेहैं ॥ १०० ॥ हे मुने! हृदयविषे अंधेरा करनेहारी है ऐसीं यौवनरूपी जो अज्ञानकी रात्रि है तिसते भयानक रूपवाला शिवभी डरताहै ॥ १ ॥ हे मुने! बुद्धि निर्मलभी है विशालभी है जितनी कहै तितनी यौवन करके मलीन होतीहै जैसे वर्षाऋतुमें नदी मलीनजल होतीहै ॥ २ ॥ हे मुने! सो स्त्री सुंदर हैं सो कुचभारे हैं सो उत्तम विलास हैं सो सुंदरमुख है ऐसी चिंताकरके यौवनमें मन जीर्ण होताहै ॥३॥ हे मुने! यौवन जैसे जैसे चढता जाताहै तैसे तैसे कामवासना आत्मविचारके नाशवास्ते विस्तारको प्राप्त होतीहैं ॥४॥ हे मुने! तबलग रागद्वेषरूपी पिशाच वर्त्तमान होतेहैं जबलग यौवनरूपी रात्रि संपूर्ण अस्त नहींहोतीहै ॥ ५ ॥ हे मुने! जौंनसा विनयकरके शोभायमान है और उत्तमलोकोंका आश्रय है दयाकरके उज्ज्वल भयाहै और गुणोंकरके युक्त है ऐसा यौवन दुर्लभ है जैसे आकाशविषे वन दुर्लभ है ॥६॥ हे मुने! स्त्री मांसकी पुतली है अंगोंका पिंजर बनाहै नाडी और अस्थियां इन्हकरके

रचना करीहै ऐसी स्त्रीके शरीरमें सुंदरवस्तु क्या है ॥ ७ ॥ हे मुने! कामीपुरुषको प्रश्न है हे भाई! त्वचा, मांस, कफ, रक्त, जल, और नेत्र इन्हको भिन्न भिन्न करके देखले स्त्रीमें क्या सुंदरता है तूं क्यों वृथा मोहित भयाहै ॥८॥ हे मुने! यह पुरुषरूपी हाथी है सो स्त्रीरूपी मानस सरोवरमें लीन भयेहैं तीक्ष्ण शमरूपी अंकुशोंकरकेभी सावधान नहीं होतेहैं ॥ ९ ॥ हे मुने! यह स्त्री केशरूपी शिखा धारण करती है स्पर्श करनेको महाकठिन हैं देखनेमेंही प्रिय हैं पापरूपी अग्निकी ज्वाला हैं पुरुषको तृणकी समान दग्ध करती हैं ॥१०॥११॥ हे मुने! यह स्त्रियां कैसी हैं दूरसेही प्रज्वलित भईहैं ऐसे नरकरूपी अग्नि प्रचंड करनेकी घोर समिधां हैं ॥ १२ ॥ हे मुने! यह संसारमें जन्मरूपी सरोवर हैं तिनमें पुरुषरूपी मछली है सो चित्तरूपीकीचडमें फस करके भ्रमतेहैं तिनके पकडनेकेवास्ते कामवासनारूपी डोरी बनीहै और स्त्रीयां लोहेके कुंडेकेसमान बनीहैं ॥ १३ ॥ हे मुने! यह स्त्रीयां संपूर्ण दोषरूपी रत्नोंकी पिटारियां हैं और दुःखोंकी संगली है इसकरके मेरेको क्या प्रयोजन है ॥ १४ ॥ हे मुने! जिसके स्त्री है तिसको भोगोंकी इच्छा होतीहै स्त्रीरहित पुरुषको भोगोंका कहाँ ठिकाना है स्त्रीको त्यागकरके जगतका त्याग होताहै फिर जगतको त्यागकरके सुखी होताहै ॥१५॥ हे मुने! यह भोग देखने मात्र सुंदर हैं और तरे नहीं जातेहैं और चंचल हैं मरण, रोग, वृद्धावस्था इनके भयतें मैं भोगोंका यत्न नहीं करताहूं और प्रीतिभी नहीं करताहूं और शांतिको पायकरके परमपदवीको प्राप्त होउंगा ॥ १६ ॥ हे मुने! बालकपनको तत्काल जवानी ग्रसतीहै युवाको जरा ग्रसतीहै इनकी आपसमें बडी कठोरताको तुम देखो ॥१७॥ हे मुने! वृद्धपुरुषको अपने चाकर और पुत्र और स्त्रीयां और बांधव और सुहृत विक्षिप्तपुरुषकी नाईं सबही हँसतेहैं अनादर करतेहै ॥ १८ ॥ हे मुने!

वृद्धपुरुषको एक तृष्णा बढतीहै सो तृष्णा कैसी है अदीनता दोषकरके भरीहै और अपार है और हृदयको संतापके देनेहारी है संपूर्ण आपदाको अकेली आप साहाय करनेहारी है ॥ १९ ॥ हे मुने! अब मुझको क्या करनाहै परलोकमें मेरेको बहुत कष्ट प्राप्तहोवेगा वृद्धावस्थामें ऐसा भय आयकर प्राप्त होताहै कैसा है जिसको दूर करनेका कोई उपाय नहींहै ॥२०॥ हे मुने! मैं कोनहूं मेरेको कोई नहीं मानताहै मैं अब कछु नहीं करसकताहूं चुप कैसे बैठाहै ऐसी दीनता वृद्धपुरुषको प्रगट होतीहै ॥ २१ ॥ हे मुने! अब मेरेको स्वादवाला भोजन अपने घरते किससमयमें कैसे प्राप्त होवे इसप्रकार करके वृद्धावस्था दिन रात्रिमें चित्तको दाह करती रहती है ॥ २२ ॥ हेमुने! वृद्धावस्था मरणरूपी राजाकी सेना चलीआतीहै वह कैसीहै धौले केशहीं चमर है जिसके अनेक चिंता और रोग रूपके निशानहैं ॥ २३ ॥ हेमुने! वृद्धावस्था रूपी ओसकरके शीतल भयाहै ऐसे देह रूपी मंदीर में इंद्रियां रूपी बालक चलने को समर्थ नहीं होतेहैं ॥ २४ ॥ हेमुने! वृद्धावस्थारूपी चूनाका लेप करके सपेतभये देहरूपीमहिलके अंदर शिथिलता और पीडा और आपदा यह तीन नायका सुखकरके निवास करतीहैं ॥ २५ ॥ हेमुने! वृद्धावस्था करके जो जीवना है सो दुष्ट जीवना है ऐसे जीवनकरके क्या जीवना है वृद्धावस्था जगतमें किसी पुरुषने नहीं जीतीहै कैसी है संपूर्ण परलोककी वासना को दूरकर जड करती है ॥ २६ ॥ हेमुने! यह जरातृष्णाको और रेनुको और इंद्रको सुमेरुको पत्रकों समुद्रको यह जरा सबकों जीर्ण करके निगल लेतीहै और अपने उदारको सबपदर्थों करके भर लेतीहै ॥ २७ ॥ हेमुने! इस जगतमें ऐसा पदार्थ कोई नहीं है जिसको सर्व भक्षी जो काल है सो ग्रास नहीं करता है जैसे वडवानल जो अग्निहै सो समुद्र के जलको नाश करतीहै और भस्म करदेती है॥२८॥

हे मुने! यह काल भगवान महात्मा ब्रह्मादिकों को भी क्षणमात्र भी नहीं देखता है और यह काल अनेक प्रकारके विश्वको ग्रस लेताहै और कालही विश्वरूपताको प्राप्त भयाहै ॥ २९ ॥ हे मुने! यह जो काल है सो भूतरूपी जो मच्छ रहे तिनका उदुंबर वृक्ष बनाहै और वह कैसा है भूतरूपी मच्छर क्षणमात्रमें नाश होनेवाले हैं तिनकरके भरेहुवे जो अनेक ब्रह्मांड हैं तिन्हका रुंबल वृक्ष बनाहै ॥ ३० ॥ हे मुने! जिन गुणों करके लोकरूपी रत्नमाला पूर्ण होतीहै और काल तिसीको अपने अंगकी शोभावास्ते सर्वभूतोंका वारंवार संहार करताहै ॥ ३१ ॥ हे मुने! दिशाभी शून्य होतीहैं और देशभी उलट पलट होतेहैं और पर्वत भी चूर्ण होतेहैं यह सब कालकी गतिहै हमारे शरीरोंकी कौन गिणती है ॥ ३२ हेमुने! कालकरके स्वर्गभी नष्ट होताहै और आकाशभी लीन होताहै और पृथ्वी भी क्षीण होतीहै हम लोगोंमें कौनसी स्थिरता है ॥ ३३ ॥ हे मुने! काल करके समुद्रभी शुष्क होजाते हैं और तारामंडलभी गिर जाता है जोगसिद्ध भी नाशको प्राप्त होते हैं और हमारी क्या गिनती है ॥ ३४ ॥ हे मुने! दैत्य दानवभी चूर्ण होते हैं और कालकरके ध्रुव अपनी ध्रुव पदवीसे गिरता है और अमरहुएभी मरजाते हैं तब हमारी क्या गती है ॥ ३५ ॥ हे मुने! कालने इंद्रभी मुखों करके ग्रहण कराहै यमभी फांसीओंकरके बांधा है और पवन भी चलनेतें रहित होताहै उसकालमें हम क्या वस्तु हैं ॥ ३६ ॥ हे मुने! कालसे चंद्रमाभी आकाशमें लीन होताहै और सूर्यभी खंडित होताहै और अग्निभी मग्न होती है तिसते हमारी क्या गिनती है ॥ ३७ ॥ हे मुने! कालते ब्रह्माभी संहारको प्राप्त होता है और विष्णुभी प्रलयको प्राप्त होताहै और शिवभी अभावको प्राप्त होताहै हमारी क्या संख्याहै ॥ ३८ ॥ हे मुने! यह जगतका स्वरूप सुंदरभी है तोभी इसमें एक और दुःखहै

और ऐसा कोई आनन्दको करनेवाला अखंडपदार्थ नहीं जिस करके चित्त विश्रामको प्राप्तहोवे ॥ ३९ ॥ हे मुने ! बालकपन खेलनेमेंही जाताहै और यौवनमें मनरूपी हरण स्त्रीरूपी कंदरामों जायकर जर्जर होताहै और वृद्धावस्थाकरके शरीर जीर्ण होता है लोक वृथा दुःख भोगताहै ॥ ४० ॥ हे मुने ! यह देह वृद्धावस्था रूपी तुषार करके सूख गईहै और ऐसी देहरूपी कमलनीको छोड जीवरूपी भ्रमर क्षणमात्रमों चला गयाहै तो यह संसाररूपी लोकका सरोवर शुष्क होगयाहै ॥ ४१ ॥ हे मुने! जबजब यह पुराणा होता है तब तब मृत्यु शरीरमें अति प्रीति करताहै और वृद्धावस्थारूपी बेल नये पत्रोंकरके बढती है और देहरूपी बेल मनुष्योंकी शुष्क होजातीहै ॥ ४२ ॥ हे मुने ! तृष्णा नदी उग्रवेगवालीहै अनेक पदार्थोंको बहाय कर लेजातीहै तटविषें संतोषरूपी वृक्षोंकों ढाइकर वहती है ॥ ४३ ॥ हे मुने ! यह देहरूपी नौका है और यह त्वचा चर्मकरके मढी है संसारसमुद्रमें डोलती है और पंचप्राण पवनोंकरके थरथराती है और इन्द्रियांरूपी मगरोंनें डुबाय दिनींहै ॥ ४४ ॥ हे मुने ! यह मनरूपी मृग हैं सो तृष्णारूपी लताओंके बनमें फिरता है अनेक कामनारूपी शाखाके सैंकडे गढ्ढरोमें भ्रमते हैं और कालक्षेपना करतेहैं सो किस फलको प्राप्त होतेहैं ॥ ४५ ॥ हे मुने ! ऐसे जो महात्मापुरुष संसारमें दुर्लभ हैं वह कैसे हैं अत्यंतकष्टमें खेद करके और मोहकरके रहितहैं और सुखकी प्राप्तिविषें हर्षको और गर्वको नहीं धारणकरते और वह कैसे हैं स्त्रीयोंकरके जिनका अंतःकरण नहीं जीता गयाहै ॥४६ ॥ हे मुने ! जौनसे पुरुष रणरूपी समुद्रको तरजातेहै कैसा हैं हाथीयोंकी घटाही भारी तरंग हैं उनको में शूर बीर नहीं और मानता हैं जौनसे मनहै तरंग जिसका ऐसे देह और इन्द्रियोंके समुद्रको तरे तिसको में शूर बीर मानताहुं ॥ ४७ ॥ हे मुने ! ऐसी किसीकी भी कोई क्रि-

या नहीं देखीहै वह कैसे है जिसमें आदरसे लेकर फलपर्यंत क्लेश नहीं है और जिसमें दुष्टआशा करके चित्तकी वृत्ति नहीं मारी है और जिसको प्राप्त होयकर लोक विश्रामको प्राप्त होतेहैं ॥ ४८ ॥ हे मुने! ऐसे पुरुष जगतमें दुर्लभ हैं जौनसे कीर्तिकरके पुरुष जगतको पूर्ण करते हैं और प्रतापोंकरके चारोंदिशाओंको पूर्ण करते हैं और संपदाकरके घरको पूर्ण करते हैं अपने पराक्रमकरके लक्ष्मी उपार्जन करते हैं और अखंड है धैर्य जिनका ॥ ४९ ॥ हे मुने! चाहे यह पुरुष पर्वतोंके किलोंमें रहे और चाहे वज्रके बने घरके अंदर रहे तोभी संपूर्ण आपदा और संपदा जो प्राप्त होनी है सो जहां रहे तहांही आपही वेगकरके बहुत जलदी आय प्राप्त होतीहैं ॥ ५० ॥ हे मुने! वृद्धावस्थाकरके युक्त जो पुरुष हैं सो बडे विषादकरके युक्त होता है और बडे दुःखकी अवस्थाको प्राप्त भया है और देहकी अंतकालकी अवस्थामें और अपने पीछे धर्मकरके रहित जो भाव किये है तिनको स्मरण कर्ता है अंतःकरणमें दग्ध होताहै ॥ ५१ ॥ हे मुने! धर्म अर्थ काम इनकी प्राप्तिने किया है और मोक्षमार्गका विघ्न जिन्होंने ऐसी क्रिया करने करके पहिले वृथा दिनोंको व्यतीत करके यह जो पुरुषोंका चित्त है सो कैसाहै मयूरके परोंके सदृश चंचल हैं और अब किस उपायकरके विश्रामको प्राप्त होवे॥५२॥ हे मुने! यह लोक अपने कर्मोंके फलोंकरके आपही वंचनाको प्राप्त होताहै और कैसे हैं क्रिया फल आगे आयकर प्राप्त भयेहैं और तौभी प्राप्त नहीं भये नदीके भारी तरंगोंके समान चंचल हैं और दैववशते प्राप्त भयेहैं और उलटे हैं लोक सुखको चाहते तौभी कर्मफल दुःख देतेहैं ॥ ५३ ॥ हे मुने! यह कार्य कियेहैं और यह करनेहै यह हमारी भावनामें हैं यह हमारेकार्य हमको निरंतर भले हैं इस प्रकार स्त्रियोंके साथ वार्त्ता करते लोकके चित्तको वृद्धावस्थापर्यंत अनेक कार्य जीर्णकरते हैं ॥ ५४ ॥

हे मुने ! जैसे वृक्षोंके पत्र पुराणे समय करके गिरतेहैं और फिर इकट्ठे होय कर नये पत्र प्रकट होतेहैं और फिर गिर पडतेहैं ऐसे विवेक रहितजो लोक हैं सो अनेक दिनोंकर उत्पन्न होयकर आपसमें मिलकर कितने दिनोंकर नाशकों प्राप्त होतेहैं ॥ ५५ ॥ हे मुने! दिनमें इधर उधर चारोंतरफ फिरके रात्रमें घरको प्रवेश करके विवेकी लोकोंका समागम बिना और शुभ कर्मों बिना कौंनसे सुख करके लोक निद्राको प्राप्त होतेहैं ॥ ५६ ॥ हे मुने! अपने बलकरके सब शत्रुनष्टकर दिये हैं और चारों तरफते संपदा प्राप्ति भई है जबलग यह लोकके सुखोंकों पुरुष भोगता है इतनेमें मृत्यु अकस्मात् सिरके ऊपर आयकरके गरजतीहै ॥ ५७ ॥ हे मुने ! यह जितना जीवोंका समूह निरंतर संसारमें चला आता है और निरंतरही चलाभी जाताहै अत्यंत चंचल है जैसे समुद्रमें अनेक प्रकारके तरंगोंकी माला उदय होतीहैं और क्षणमें लीन होतीहै ॥ ५८ ॥ हे मुने ! यह स्त्रीयां जगतमें सुंदरताकरके मनको हर लेतीहैं और प्राणोंके हरनेको तत्पर भईहैं नवदलोंकीतरह रक्तही वस्त्र जिन्हके है और चंचल भ्रमरोंकी तरह श्याम और चंचलहीहैं नेत्र जिन्हके सो स्त्रियां पुरुषोंको मोहित करनेलिये विषवृक्षोंकीलता उत्पन्न भई हैं ॥ ५९ ॥ हे मुने! यह जगतमें पुरुषोंको स्त्री पुत्रादि व्यवहारकी जो मायाहै सो तीर्थोंके मेलोंके समागम जैसी है लोक अपने आप वृथा और पाससें आय मिलते हैं और एकस्थानमें इकट्ठे होनेका संबन्ध है जिन्हका फेर अपने अपने सबही चले जाते हैं और तैसेही कर्मयोग करके संसारमें समागम होताहै और अपने अपने कर्मयोग करके वियोग भी होताहै ॥ ६० ॥ हे मुने! ऐसी कौन लोक विषें दृष्टि हैं जिन्हमों माया नहीं देखीदीहै और ऐसा कौन भोग हैं जिन्हमें दुःख और अग्निका दाह नहींहै ऐसी कौन प्रजाहै जौंनसी क्षणभंगुर नहींहै और ऐ-

सी कौन क्रिया है जिन्हमें माया नहींहै ॥६१॥ हे मुने! कल्पपर्यंत है और आयुष्य जिन्हकी ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं सोभी अपने कल्पादिक कालकी संख्या पूरी होनेसें कालके वश होतेहैं इसीसैं हे मुने! कालके जालमें बडे छोटे सब एक सरीखे नाशको प्राप्त होतेहैं ॥६२॥ हे मुने! पर्वत सर्वत्र पत्थरोंके बने हैं पृथ्वी सर्वत्र मृत्तिकाकी बनी है वृक्ष सर्वत्र काष्ठके हैं और देह सर्वत्र मांसकी है और इस जगतमें अपूर्व पदार्थ कोई नहींहे और विकारसे रहितभी कोई नहीं है सब पदार्थ विकारवाले हैं ॥६३॥ हे मुने! जौनसा यह कुछ स्थावर और जंगम जगतमें दिखताहै सो सम्पूर्ण स्थिर नहींहै वह स्वप्नके समागम सरीखाहै॥६४ हे मुने! संसारमें जौनसा स्थान सूखे समुद्र जैसा महा डुंखा दिखताहै सो अस्थान दूसरे दिन बदलोंको घटाकरके युक्त उच्चापर्वत जैसा बन जाता है ॥६५॥ जौनसा पर्वत बनों करके युक्त है सो आकाश पर्यंत ऊंचा दिखताहै और वह पर्वत दिनों करके पृथिवीके समान होता है अथवा कूहा बनताहै ॥ ६६ ॥ जौनसा अंग आज सुंदर वस्त्रों करके छादन करीदा है और अनेक माला भूषणोंकरके शोभायमान होताहै सो शरीर दूसरे दिनमों नग्न होय करके दूर देशोंमें खराब होवेगा ॥ ६७ ॥ और जौंनसा पुरुष आज बडा तेजवाला है और पृथिवी मंडलमें राज्यकरताहै और सोई पुरुष दिनों करके भस्मकी ढेरी होताहै ॥ ६८ ॥ और जौनसे अस्थानमों आज नगर दिखताहै अनेक लोकनके शोभायमान है फिर उसी स्थानमें दिनों करके निर्जन बन सरीखा उजार होताहै ॥ ६९ ॥ ओर जौनसे स्थानमें आकाश पर्यंत ऊंची भयानका झाडी देखीहै तहां पताका करके छादित भई महा नगरी दिखता है ॥ ७० ॥ और जौनसी लता पत्र और पुष्पोंकरके शोभायन जलकी नहेरों करके युक्त सुंदर बनी देखीदी है सो दिनों करके मारवाडकी पृथिवीके तुल्य होतीहै ॥७१॥ जलाशय

का स्थान सूका मैदान होताहै और सूका मैदान स्थान जलमय होताहै हे मुने ! काष्ठ जल और तृण करके सहित संपूर्ण जगत दिनों करके उलटापलटा होताहै ॥ ७२ ॥ हे मुने ! वह पिछले संपदावाले बडे दिनसो पीछे कियां उत्तम संपदां और वह पीछे कियां उत्तम क्रियां यह सबही अब जैसे हमारेको कथामात्र स्मरण होतीहै तैसेही हमभी कथामात्र स्मरणमें होवेंगे ॥ ७३ ॥ पुरुष पशुभावको प्राप्त होतेहैं और पशु पक्षी मनुष्यभावको प्राप्त होतेहैं और देवता जो हैं सो मनुष्य और पशु पक्षी होतेहैं हे मुने ! इहां जगतमें स्थिरताको कौन प्राप्त भया है ॥ ७४॥ हे मुने ! ब्रह्मा और विष्णु और रुद्र और सबही भूतजाती जो है सो नाशकोही प्राप्त होतीहै जैसे समुद्रके जल नाश होनेको वडवानामी अग्निको जाइ प्राप्त होतीहै ॥ ७५॥ हे मुने ! स्वर्ग और पृथिवी और पवन और आकाश और पर्वत और नदियां और दिशां यह सबही नाशरूपी वडवा अग्निको प्रज्वलित करनेको सुक्की लकडी है ॥ ७६ ॥ हे मुने ! यह संसारमें आपदा क्षणमात्रमें प्राप्त होतीहै और संपदा प्राप्त होतीहै और क्षणमात्रमें मृत्यु भी प्राप्त होताहै और क्षणमात्रमें जन्मभी प्राप्त होताहै हे मुने ! वह कौनसा पदार्थ है जो क्षणमें नाश और क्षणमें उत्पन्न नहीं होताहै॥७७॥ हे मुने ! यह संपूर्ण पदार्थ तबलग चेष्टा करते हैं जबलग नाशरूपी राक्षस स्मरणको नहीं प्राप्त भया है ॥ ७८ ॥ हे मुने ! यह जगतमों घडेका वस्त्र होता देखिया है और वस्त्रका घडा होता देखिया है सों जगतमों नहीं देखिया है उलटा पलटा नहीं होता है ॥ ७९ ॥ हे मुने ! यह मन क्षणमों आनंदको प्राप्त होता है और क्षणमात्रमें व्याकुलताको प्राप्त होता है और क्षणमात्रमें सौम्यताको प्राप्त होताहै और क्षणमों उग्रताको प्राप्त होता है नटवियोंसरीखा अनेक स्वरूपवाला है ॥ ८० ॥ हे मुने! यह संसाररूपी

महावृक्षसें अनेक प्राणिरूपी फल दिन प्रतिगिरते हैं और वह कैसेहैं अपने अपने कर्म फल तें इकट्ठेभी पकतेहैं और भिन्नभिन्न भी पकते हैं और कालरूपी पवनके वेगसें अपने अपने स्थानसें गिरायेहैं॥८१॥ हे मुने! इसप्रकारके दोषरूपी वनकी अग्निकरके मेरा चित्त दग्ध भयाहै और तिसमों भोगोंकी आशा नहीं फुरदीहै जैसे निर्जल देशमों जलपानकी आशा नहीं फुरदीहै ॥ ८२ ॥ हे मुने! जनोंके चित्तमों दुर्जनता बढतीहै और स्वजनता क्षीणताकों प्राप्त होतीहै और अत्यंत कठोरहै दिन दिन प्रति कठोरताको धरताहै ॥ ८३ ॥ हे मुने! मेरेको सुंदर बागबगीचे आनंदको नहीं करतेहैं और स्त्रियां सुखको नहीं देतीहैं और द्रव्यकी आशा मेरेको हर्ष नहीं करतीहै और मैं अपने मनकरके आपही शांतिको धारताहूं ॥ ८४ ॥ हे मुने मैं वैराग्यकरके मरणकी इच्छा नहीं करताहूं अरु जीवनेको चाहता नहीं हूं जैसे मैं स्थित होयेसे ही स्थित होताहूं और मैं चिंताज्वरकरके रहित भया हूं ॥ ८५ ॥ हे मुने! मेरेको राज्य करके क्या प्रयोजनहै और भोगोंकरके क्या प्रयोजनहै और द्रव्योंकरके क्या है और उद्यमोंकरके क्या है यह सब अहंकार वशतेहैं सो अहंकार मेरा अब नष्ट भयाहै ॥८६॥ हे मुने! जो अब निर्मल बुद्धि करके चित्तकी चिकित्सा नहीं करूं तो फिर चित्तकी चिकित्साका समय कहां मिलनाहै॥८७॥ हे मुने! विषको हम विष नहीं मानतेहैं और इंद्रियोंके विषयोंको विष मानतेहैं और विषय रूपी विष जन्म जन्मको मारतेहैं विष इस एक देहकोही मारताहै ॥८८॥ हे मुने! ज्ञानीपुरुषोंको सुख बंधन नहीं करतेहैं और दुःखभी बंधन नहीं करतेहैं और मित्रभी बंधन नहीं करतेहैं बांधवभी बंधन नहीं करतेहैं ॥ ८९ ॥ हे मुने! देहको छेदन करने वास्ते करपत्र शस्त्रकरके छेदनकी पीडाको सहिनेको मैं समर्थहूं परंतु संसारके व्यवहारसों उत्पन्न भयेहैं ऐसे विषयरूपी शस्त्रोंकरके नाशको सहिनेको समर्थ नहीं हो-

ताहूं ॥ ९० ॥ हे मुने! अब मेरा मन भ्रमता जैसाहै और मेरेको भय प्राप्त भयाहै और अंग मेरे सब कंपायमान होतेहैं जैसे पुराणे पत्र वृक्ष से गिरतेहैं ॥ ९१ ॥ हे मुने! मेरेको यह आश्चर्यहै क्या आश्चर्यहै वह तुच्छहै अकस्मात् उपाधि बिनाही मनतेही भ्रम उदय भयाहै और हे मुने! ऐसा कौन स्थित होनेका स्थान है जहां शोक भय नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ९२ ॥ हे मुने! जनकराजासे लेकर भले लोक भये हैं सोभी संसारके व्यवहारोंमें रहेहैं और वह उत्तम जनोंकी गिनती में कैसे भये हैं ॥ ९३ ॥ हे मुने! तुमभी कौनसी उत्तम दृष्टिका आश्रय करके संसारमलसे रहित भये हो और महात्मा होय कर जीवनमुक्त भये हो और अपनी इछा करके विचरते हो ॥ ९४ ॥ हे मुने! ऐसा पदार्थ तुच्छ भी पृथिवी में नहीं और स्वर्गविषे भी नहीं हैं और देवतों के विषे भी नहीं है जिसको तुम सरीखे उत्तम बुद्धि वाले संतजन अपनी संगती करके उत्तमता को नहीं प्राप्त करते हैं ॥९५॥ हे मुने! तुम धैर्यवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो संसाररूपी अग्निमें विचरण करते हो तोभी संसार के संतापको किस युक्ति करके नहीं पावते हो जैसे पारा अग्निमें दग्ध नहीं होता है तिस युक्तिको तुम मेरे प्रति कहो ॥ ॥ ९६ ॥ हे मुने! साधु पुरुष निश्चय करके जिस उपाय करके दुःख से रहित भये हैं तिसको तुम जानते हो तो मेरा मोह निवृत्त करने के वास्ते मेरे प्रति कहो ॥ ९७ ॥ अथवा हे मुने! ऐसी युक्ति कोई नहीं है अथवा मेरेको प्रकट करके सुनावताभी कोई नही है और में आपभी उत्तम विश्रामको प्राप्त नहीं होता हूं तो में सब भावनाको त्याग करता हूं और अहंकारसे रहित भयाहूं ॥९८॥ हेमुने! नातोमें भोजन करूं और नातोमें जलपान करूं और नातोमें वस्त्रधारणकरूं और स्नान दान भोजनादि व्यवहारकों नहीं करताहूं ॥ ९९ ॥ हे मुने! केवल अकेलाही रहूंगा और निःशंक होयकर ममताको त्याग करके

ममतासे रहित होय कर मौनको धारणकरताहूं जैसे चित्र विषे लिखि हुई पुतली होतीहै तैसे ही स्थित होता हूं ॥ २०० ॥ हे मुने ! नातोमें इस देहका हूं और ना मेरा और कोई है जैसे तेलविना दीपक शांत होता है तैसे सब कुछ त्याग करके इस देहको त्याग करता हूं और शांति सुखको प्राप्त होता हूं ॥ २०१ ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच हे भरद्वाज ! श्रीरामचंद्र इतना बचन कहिकर चुपकर जाते भये वह श्रीरामचंद्रजी कैसेहैं निर्मल पूर्णमासीके चंद्रमाकी न्याई है स्वरूप जिहूका और बडे उत्तम विचारके प्रकाश करके शोभायमान है चित्त जिसका ऐसे विश्वामित्रजीके आगे मौनधारण करके बैठ जाते भये जैसे घने बदलोंकी घटाओंको देखकर बहुत बोलनेका श्रमसें खेदको प्राप्त भया ऐसा जो मोर है सो चुप होइ जाता है ॥ १ ॥ आकाशमों बदलोंकी घटामों स्थित भये जो सिद्ध है सो श्रीरामचंद्रजीके मुखारविंदसे प्रकट भया हुआ बचनरूपी अमृतको पान करके अनेक प्रकारोंके पुष्पोंकी बर्षा करके राजा दशरथकी सभाको पूर्ण करके बचन कहते भये ॥

सिद्धाऊचुः हमने ब्रह्माजीके दिनके आदिसे चारों तर्फ भ्रमते रहेहैं परंतु आज श्रीरामचंद्रजीके मुखारविंदसे प्रकट भया करणों विषे अमृतका आनंद करनेहारा अपूर्व बचन सुनाहै ॥ २ ॥ रघुकुलके चंद्रमा ऐसे जो श्रीरामचंद्रजीने जो उत्तम बचन वैराग्य करके कहिआ है सो ऐसा बचन बृहस्पतीजीसेभी नहीं कहिआ जाता है ॥ ३ ॥ अहो आज हमारे वडे पुण्य उदय हुवेहैं यह जो श्रीरामचंद्रजीके मुखारविंदसे प्रकट भया उत्तम बचन हमने सुनिया है यह बचन बुद्धिको बहुत आनंदको करनेवालाहै ॥ ४ ॥ फिर यह बचन कैसा है जो शांति प्राप्तिके करनेको अमृतसेभी उत्तमहै और अति सुंदरहै जो श्रीरामचंद्रजीने कहाहै इस बचनके सुनने करके हम परमबोधके आनंदको

प्राप्त भयेहैं ॥ ५ ॥ और आकाशमें जो विचरणे वाले देवता सो राजा दशरथकी सभामें बैठे हुवे जो मुनिहै सो श्रीरामचंद्रजीको वचन कहते भये अहो आज हमारे बडे भाग्य उदय हुवेहैं सो उत्तम गुणोंकरके जो बिराजमान ऐसे जो श्रीरामचंद्रजीने परम उदार बानी कहीहै वह बानी केसीहै वैराग्य रसकरके भरी हुईहै ॥ ६ ॥ तदनंतर आकाशसें उतरकर सभामों आइकर देवता और मुनि निश्चय करके कहने योग्य बोधवाला प्रकट श्रीरामचंद्रजीको प्रीतिकरके बचन कहते भये ॥ ७ ॥ यह जो श्रीरामचंद्रजीके वचन किसको विस्मय नहीं करताहै प्रकट है और अर्थ जिसका स्पष्टहै पद और अक्षर जिसके सबको इष्ट है और तुष्टिके करनेवालाहै ॥ ८ ॥ और उदारहै और सबको प्रियहै उत्तम लोगोंके योग्यहै और व्याकुल नहीं है और प्रकटभी है तौभी सैंकडे पुरुषोंमें किसी उत्तम बुद्धिवाले पुरुषको सर्व प्रकारके चमत्कार करनेवालाहै ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी! तेरे बिना ऐसी उत्तम बानी किसीकोभी नहीं प्रकट होतीहै वह कैसीहै इष्ट अर्थको समर्पण करनेमों एकांत करके चतुरहै और विवेकरूपी फलको देनेवालीहै ॥१०॥ हे रामचंद्रजी! जौनसे यशके निधि जो पुरुष हैं उन्हकी बुद्धिरूपी लता तुह्मारे बचनको श्रवण करके प्रकाशमान होतीहै और यत्नकरके सारकी प्राप्तिभी होतीहै ॥ ११ ॥ सभामों स्थित भये सबके प्रति यह बचन कहतेहैं श्रीरामचंद्रजीके समानकोई पुरुष नहींहै फिर कैसेहैं श्रीरामचंद्रजी उदार बुद्धिवालेहैं और विवेकवालेहैं और यही हमारी बुद्धिहैं और श्रीरामचंद्रजीके समान तीन लोकमें कोई भया नहींहै और न आगेको ऐसा होवेगा ॥ १२ ॥ जो श्रीरामचंद्रजीके मनका मनोरथ सिद्ध नहीं होवे तो सबही हम लोग और मुनिलोग नष्ट बुद्धिहैं और वह कैसेहैं श्रीरामचंद्रजी सबलोगको चमत्कार करनेवाले हैं और मुनिलोगभी सबको चमत्कार करनेहारे हैं॥१३॥ इतिश्रीवासिष्ठसारेमोक्षोपायेवैराग्यप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् १

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार

॥ अथ मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ॥

॥ प्रथम विश्वामित्रजीके बचन श्रीरामचंद्रजी प्रति ॥

हे रामचंद्रजी! शुकदेवने अपने पिता व्यासदेवजीको प्रश्न किया है हे पिताजी! मेरेको मोक्षमार्गका उपदेश करो जिसकरके में संसार के दुखोंसे रहित होजाओं श्रीव्यासदेवजी शुकदेवको कहते भये. हे शुकदेव! यह संसार अपने मनके विकल्पसे प्रकट भया है यह इसका निश्चय है क्याहै यह संसारसारसे रहित है अरु स्वभावकरके दग्ध है सो अपने मनके विकल्पका क्षय भये संते जिस प्रकारके क्षीण होता है तिस प्रकारकों तुमको राजा जनक कहेगा ॥ १ ॥ तदनंतर श्रीशुकदेवजी पिताकी आज्ञा लेकरके राजा जनकके पास जाते भये राजा जनक शुकदेवजीको नमस्कारकरके पूजा करताभया और शुकदेवजीको आगमनकारण पूछता भया तो शुकदेवजी मोक्षमार्गके उपायका प्रश्न राजा जनकको करते भये तो राजाजनक शुकदेवजीको बचन कहता भया हे शुकदेव ! चैतन्यस्वरूप एक आत्मा पुरुष है और वह कैसा है निर्लेप है और असंग है और तिससे भिन्न और कुछ नहीं है वह पुरुष अपने संकल्पवशते बंधको प्राप्त भया है और संकल्पसे रहित होवे तो मुक्त होताहै ॥ २ ॥ हे बाल तूं संसारतरनेको महावीर है और जिस कारण तें तेरी बुद्धि भोगरूपी दीर्घरोगोंसे विरक्त भई है वैराग्यकरके संसारसे मुक्ति होतीहै और क्या श्रवण करनेको चाहता हैं ॥ ३ ॥ हे शुकदेव! जैसी ज्ञानकरके पूर्णता तेरेको भई है ऐसी पूर्णता तुम्हारे पिता व्यासदेवजीको

नहीं भई है वह कैसे हैं व्यासदेवजी सर्व प्रकारके ज्ञानके निधी हैं और चिरकालसे तप करनेमें स्थित हैं और अनेक प्रकारके ज्ञान करके मुक्त नहीं होतीहै और मुक्तके लिये चित्तकी एकाग्रता करने योग्य हैं ॥ ४ ॥ हे रामजी! राजा जनकने इस प्रकारका उपदेश किया तो शुकदेव परमात्मा वस्तुविषें एकाग्रताको धारण करते भये ॥५॥ और वह कैसे हैं शोक भय और खेद करके रहित भये हैं निस्पृह होते भये संशय रहित होय कर समाधि करने वास्ते सुमेरु पर्वतको चले जाते भये ॥ ६ ॥ तहां जायकर निर्विकल्पसमाधिकरके दशहजार वर्ष स्थित होइ करके चित्तकी शांति होताहै ॥ ७ ॥ हे रामचंद्रजी! सो शुकदेव मनकी कल्पनारूपी कलंकसे रहित होतेभये शुद्ध अंतःकरणवाले होते भये निर्मल और पवित्र ऐसे परमात्माकी पदवीमें एकताको प्राप्त होते भये कैसे जैसे जलका एक किणका समुद्रके जलमें एक रूप होताहै ॥ ८ ॥ विश्वामित्र श्रीरामचंद्रजीको कहते हैं जाना है परमात्माका तत्व जिस करके ऐसे मनका निश्चय करके यही लक्षण है वह क्या है संपूर्ण भोगोंके समूहोंको फेर चित्त नहीं चले ॥ ९ ॥ भोग वासना करके संसारका बंधन दृढ होताहै भोगवासना शांत होने करके जगतमें बंधन शांत होताहै ॥ १० ॥ हे रामचंद्रजी! वासनाकी जो शांति है सोही ज्ञानी पंडितोंने मोक्ष कहेया है और पदार्थोंकी वासनाकी दृढताही बंधन कहेया है ॥ ११ ॥ भोगोंकी इच्छा त्यागकर कितने लोक यश वास्ते भोगोंका त्याग करते हैं सो दंभी हैं तिसतें हे रामचंद्रजी! यशकी इच्छा बिना भी जिसको भोगों विषें रुचि नहीं होती है सो जीवन्मुक्त कहेया है ॥ १२ ॥ विश्वामित्रजी वसिष्ठजीको कहते हैं हे वासिष्ठजी सो ही ज्ञान है सोही शास्त्रोंका अर्थ है और वही ज्ञानका अखंड निश्चयहै जौंनसा वैराग्यकरके मुक्त भले शिष्यको उपदेश करीदा है ॥ १३ ॥

हे मुने ! वैराग्यसे रहित दुष्ट शिष्यको जो कुछ उपदेश करीदा है सो अपवित्र होताहै जैसे कपिला गौका दुग्ध कुत्तेके चमडेमें अपवित्र होताहै ॥ १४ ॥ हे मुने ! जौंनसे राग और भय और क्रोधसें रहित भये हैं और अभिमान रहित हैं पापरहित हैं एसे तुह्मारे सरीखे उत्तम पुरुष जो उपदेश करते हैं और तिसमें श्रवण करनेवालेकी बुद्धि विश्रामको प्राप्त होती है और सबही संशय दूर होते हैं ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको कहते हैं हे रामजी परमात्मारूप सूर्यके प्रकाशमें जौंनसे त्रैलोक्यरूपी रेणुके किणके और पूर्व कालमें उत्पन्न होइ होइ कर लीनभये हैं सो अब संख्यामें नहा आवते हैं ॥ १६ ॥ जौंनसी अब की त्रैलोक्यगणोंकी कोटी वर्तमान है सो भी किसीनेभी गिणी नहीं जाती है ॥ १७ ॥ जोंनसी आगे परमात्मारूपी समुद्रमें जगतके सृष्टिरूप तरंग उत्पन्न होवेंगे और तिन्हकी संख्याकी कोई वार्त्ता भी नहीं है ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी ! जैसे संकल्पकी रचना मिथ्या है और मनोरथके विलास मिथ्या हैं और जैसे इंद्रजालकी माया मिथ्या है और जैसे पूर्वकी कथा के अर्थ नाम मात्र हैं और दुष्ट पवनवेगकरके और पृथिवीका चलना मिथ्या है जैसे बालकको पिशाचका त्रास क्षणमात्र होता है और आकाशमें मुक्तामणीकी माला मिथ्या भासती है जैसे बेडीके चलनेमें किनारेके वृक्षोंका चलना मिथ्या ही भासताहै और जैसे स्वप्नके ज्ञानमें नगरादि भान मिथ्या होताहैं जैसे आकाशपुष्पोंका फुरणा मिथ्या होताहै तैसेही इस पुरुषकों जगतका उत्पत्ति होनेका फुरणा मिथ्या है और मृत होनाभी मिथ्या है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष मृत होताहै जगतमें जन्मके अनुभवको प्राप्त होता है फिर अपने स्वरूपका स्मरण भूल जाताहै तो जगतका फुरणा ह[illegible] होताहै फेर जीवरूपी आकाशमें यह लोकहैं ऐसा अनुभव दृढ होत[illegible]

है फेर जन्मकी इच्छा दृढ होतीहै फेर मरणेका अनुभव होताहै तो परलोककी कल्पना करता है और परलोकमें अनेक पुरुषोंकी कल्पना होतीहै तिन्ह पुरुषोंमेंभी और पुरुषोंकी कल्पना होतीहै ॥ २३ ॥ हे रामजी! पुरुषके फुरणेंमे यह अनेक संसार भासते हैं जैसे केलेकी स्तंभके अंदर अनेक त्वचाके आवरण होतेहैं ॥ २४ ॥ हे रामजी! जौंनसे मृत होतेहैं तिन्हको पृथिवी आदि महाभूतोंकी गिनती नहीं है और जगतके क्रमभी नहीं है तदपि इन्हको जगतका भ्रम दृढ रहते हैं ॥ २५ ॥ हे रामजी! यह अविद्या अनंत है और अनेक प्रकारके विस्तारवाली है और जड बुद्धिवाले पुरुषोंकों महादुस्तर नदी है और वह कैसी है अनेक प्रकारके जगतकी सृष्टिरूपी तरंगोंकरके युक्त है ॥ २६ ॥ हे रामजी! परमार्थरूपि विशालसमुद्रमें जगतकी सृष्टिके तरंग वारंवार प्रवृत्त होतेहैं कितने पहिले सरीखे है और कितने और जैसे हैं ॥ २७ ॥ कितने उत्पत्ति करके मनकरके और क्रमकरके गुणोंकरके समानहै और कितने आधे गुणवालेहै कितने और प्रकारकेहैं ॥२८॥ हे रामजी! कालरूपी समुद्रसे सृष्टिरूप तरंग तिसी प्रकारकरके अथवा और प्रकारकरके वारंवार प्रवृत्त होते हैं ॥ २९ ॥ हे रामजी! जौंनसा ज्ञान विचारवाला पुरुष है सो अंतःकरणकरके स्थिर होताहै उसके मनके विकल्प शांत होते है और स्वरूपके सारको जाननेवाला है शांतिरूप अमृत करके तृप्त होताहै सो अविद्याके बंधनसे मुक्त होताहै ॥ ३० ॥ हे रामचंद्रजी! जो पुरुष संदेहरूपी देहसे मुक्तभये हैं ऐसे बोधरूपी पुरुषोंको आत्मा परमात्मामें संदेह नहीं होताहै और भेद भी नहीं होताहै जैसे समुद्रके जलका और तरंगका भेद नहीं होता है ॥ ३१ ॥ हे रामचंद्रजी! यह संसारमें भले प्रकारकरके किये अपने पौरुष करके सर्व जीवोंकरके सर्व पदार्थ प्राप्त होतेहैं

॥ ३२ ॥ हे रामचंद्रजी ! भले सत्पुरुषोंने उपदेश किया जो मार्ग है तिसकरके जौंनसा देहको और मनको वरतावता है वही पौरुष है तिस विना मनका इंन्द्रियोंका वरतावता है और सोही विक्षिप्त पुरुषकी चेष्टा है ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष जिस अर्थको चाहता है सो पुरुष तिस अर्थके लिये उद्यमकरताहै तो उस अर्थको पुरुष अवश्य मेव प्राप्त होताहै और जो उद्यम नहीं करे तो नहीं प्राप्त होताहै ।३४। हे रामचंद्रजी ! यह जगत्में कोई एकजीव अपने उद्यमके यत्न करके त्रैलोक्यके ऐश्वर्य करके उत्तम इंद्रकी पदवीको प्राप्त होता भया।३५। हे रामचंद्रजी ! कोई एक चैतन्यका प्रतिबिंब अपने पौरुषके यत्न करके कमलके आसन ऊपर बैठ करके ब्रह्माकी पदवीको प्राप्त होता-भया ॥ ३६ ॥ हे रामचंद्रजी ! कोई एक पुरुष अपने उत्तम पुरुषार्थ करके और गरुडके ऊपर चढकरके पुरुषोंमें उत्तम ऐसा विष्णुरूप भयाहै ॥३७ ॥ हे रामचंद्रजी ! एक कोइ पुरुष यह संसारमें पौरुषकरके यत्नकरके एकशरीरमें आधा स्त्रीरूप और आधापुरुषरूप होताहै यावह कैसाहै अर्धचंद्र है मस्तकका भूषण जिसका ऐसे अर्धनारीश्वर रूप भयाहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! तिस पौरुषके दो प्रकार तुम जानों और एक पूर्वजन्मका किया और एक इसजन्मका है तिहूमें पूर्वजन्मका पौरुष इसजन्मके पुरुषार्थ करके जीतेयाजाताहै ॥ ३९॥ हेरामचंद्रजी ! यत्नवाले दृढअभ्यासों करके बुद्धिकरके और उद्यम करके युक्त ऐसे पौरुषोंकरके पर्वतभी गिराये जातेहैं और पूर्वजन्मके पौरुषके गिराओंनेमें क्या आश्चर्यहै ॥ ४० ॥ हे रामजी ! इस जन्मका पौरुषभी दोप्रकारका है और एक शास्त्रसे रहित है और एक शास्त्रकी विधि करके सहितहै और तिहूमें शास्त्रकी विधि रहित जो पुरुषार्थहै सो अनर्थको प्राप्त करताहै और शास्त्रकी विधि सहित जो पुरुषार्थहै सो परमार्थको प्राप्त करताहै ॥ ४१ ॥ हे रामजी

इह जन्मका पुरुषार्थ और पूर्वजन्मका पुरुषार्थ यह दोनों आपसमें युद्ध करतेहैं जैसे दोनो भैंसे आपसमें युद्ध करतेहैं और वह कैसेहैं एक बलकरके पूर्णहै और एक निर्बलहै तिहूमें बलवानकरके दुर्बल शांत होताहै ॥ ४२ ॥ तिसतें परम पौरुषकों धारकर दंतोकर दंतोंको दबाइकर हे रामचंद्रजी! यह जन्मका शुभ पुरुषार्थ करके और अशुभरूपकरके उदय भयेहुये पूर्वजन्मके पुरुषार्थकों यत्न करके जीतने योग्यहैं ॥ ४३ ॥ हे रामचंद्रजी! पूर्वजन्मका पुरुषार्थ मेरेको प्रेरण करताहै ऐसी बुद्धि यह जन्मके पुरुषार्थ करके दूर करनें योग्यहै जिस कारणतें सो बुद्धि यह जन्मके प्रत्यक्ष पुरुषार्थसें दुर्बलहै ॥ ४४ ॥ हे रामचंद्रजी! उद्यमको त्यागकरके और उद्यमसे रहित है सो मनुष्यरूपकरके गधा बनेहैं ऐसे प्रारब्ध माननेवालेओंके बरोबर नहीं होनेयोग्यहै और शास्त्रकरके किया जो उद्यम है सो यह जन्ममें और अगले लोकमें दोनोंमें सिद्धि कर देताहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी! उद्यमरूपी यतनको धारणकरके यह संसाररूपी गर्भसे बल करके आपही निकलने योग्य है जैसे सिंह अपने बलकरके अपने शत्रुनके बंधनसें निकसजाताहै ॥ ४६ ॥ हे रामचंद्रजी! प्रारब्धको मानकरके थोडे अन्न पानको पाइकरके और आयुषा वृथा भस्म नहीं करने योग्यहै और उद्यमकरके रहित जो पुरुष हैं सो नरकके कीडे होतेहैं ॥ ४७ ॥ हे रामजी! शुभपौरुषकरके शुभफल प्राप्त होताहै और अशुभ पौरुषकरके अशुभ फल प्राप्त होताहै प्रारब्ध कछु नहीं करताहै ॥ ४८ ॥ हे रामजी! जौंनसे पुरुष कहतेहैं कि प्रारब्ध मेरेको प्रेरण करताहै ऐसे कहनेवालेका मुख देखकरके लक्ष्मी फिर जाती है जौंन उद्यम नहीं करतेहैं तिनके मुख दग्ध होय गयेहैं और उन्हकी दृष्टि श्रेष्ट नहीं दीखतीहै ॥ ४९ ॥ हे रामजी! बालक अवस्थासें भले प्रकार अभ्यास किये जो शास्त्र सत्संगादिक उत्तम

गुण हैं तिन्हकरके यतनकरनेसें अपना इच्छित उत्तम अर्थ प्राप्त होताहै प्रारब्ध व्यर्थ है ॥ ५० ॥ हे रामचंद्रजी! यह जगतमें महाअनर्थकों करनेवाला आलस्य नहीं होवे तो बहुत धनवाला बहुत शास्त्र पठनेवाला कौन पुरुष नहीं होवे और आलस्यकरके समुद्रपर्यंत संपूर्ण पृथ्वीसेभी प्रारब्धको माननेवाले निर्धनहै ऐसे जो मनुष्यरूपी पशु हैं और उद्यमसे रहितहैं तिनकरके भरीहै ॥ ५१ ॥ हे रामचंद्रजी! पहिले दिनोंमें इष्ट कर्म अपराध कियाहै सो आजके शुभ कर्म करके शुभ होजाताहै और तैसेही पूर्वजन्मका अशुभ प्रारब्ध कर्म इस जन्मका शुभकर्मकरके शुभ होताहै जैसे रोग पहिले होताहै सो दुःख देताहै और औषधी पीछे करतेहैं उस औषधकरके रोग और दुःख दूर होतेहैं ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! जौंनसे पुरुष शुभकर्मकरके अशुभ प्रारब्धको नहीं दूर करताहै जो पुरुष अज्ञानी है वह सुखदुःखोंके अधीन है और पुरुषार्थवाला पुरुष स्वतंत्र होताहै ॥ ५३ ॥ हे रामजी! जौंनसा पुरुष ईश्वरकी प्रेरणाकरके स्वर्गको अथवा नरकको जावेगा तो वह सदैव पराधीन रहेगा और पशुरूपही रहेगा ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! जौंनसा पुरुष उद्यम करके उदारआचारवाला है सो पुरुष जगतके मोहसें मुक्त होताहै और जैसे सिंह अपने बलकरके पिंजरेसे निकलजाताहै ॥ ५५ ॥ जौंनसा पुरुष कहताहै कि मेरेको कोई प्रेरणा करताहै तो मैं कार्य करताहूं ऐसे अनर्थकी दुष्टकल्पनामें स्थित भयाहै और उद्यमको त्याग करताहै सो नीच पुरुष है तिसका दूरसे त्याग करना योग्यहै ॥ ५६ ॥ हे रामजी! संसारके हजारों कार्योंके व्यवहार आवतें जातेहैं तिसमें सुखदुःखों गुरु शास्त्रकी आज्ञासें हर्ष शोककों त्याग करके व्यवहार करने योग्यहै ॥ ५७ ॥ हे रामजी! यह जीव जन्ममरणरूपी रोगको जानकरके तिस शांतिके वास्ते ब्रह्मनिष्ठ

सद्गुरु सेवा करके अपना पौरुषरूपी उत्तम औषध करके मोक्षको प्राप्त होवे ॥ ५८ ॥ हे रामजी! यह पुरुष रोगादिकोंसे रहित मनुष्य देहको पाइ करके तैसे समाधान करे उद्यम करे जैसे फेर जन्मको नहीं प्राप्त होवे ॥ ५९ ॥ हे रामजी! जौनसा पुरुष पुरुषार्थकरके प्रारब्धको जीतने चाहताहै सो पुरुष यह लोकमें परलोकमें संपूर्ण वांछाकी सिद्धिको पावताहै ॥ ६० ॥ हे रामजी! जौंनसा अपने पुरुषार्थको त्यागकरके प्रारब्धके अधीन होई रहा है सो अपने धर्मको अर्थको कामको नाश करता है और आत्महत्याके दोषको प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ हे रामजी! पुरुषार्थके तीन रूप है सो कौन रूप है एक बुद्धिकी सावधानता और मनकी सावधानता तीसरी इंद्रियोंकी सावधानता इन्ह तीनोंकी सावधानतासे कर्म फलका उदय होताहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी! पुरुषार्थकी सिद्धि तीन प्रकार करके होती है एक शास्त्रके बचन करके और सद्गुरूके उपदेशते और अपने निश्चय करके ॥ ६३ ॥ हे रामचंद्रजी! अशुभ कर्मोंविषे प्रवृत्त भये अपने चित्तको शुभ कर्मोंविषें प्रवृत्त करे और शुभ कर्मोंको यत्न करके करे सर्व शास्त्रोंका यही निश्चय है ॥ ६४ ॥ हे रामजी! शुभबुद्धि करके शुभशास्त्रका अभ्यास आदिगुण प्राप्तहोतेहैं और शुभशास्त्र अभ्यास आदि गुणों करके शुभ बुद्धि उदय होतीहै यह दोनों आपसमें बढतेहैं वह कैसे जैसे बर्षाकालविषे कमल और जल आपसमें बढतेहैं ॥ ६५ ॥ हे रामजी! जौंनसा दृढ अहंकारकरके पूर्वजन्ममें जोकर्म कियेहै सोही दैव-नामकरके कहेहैं ॥ ६६ ॥ हे रामजी! जो पूर्वजन्मके कर्महैं सोही दैव कहेहैं और दैव किसको कहतेहैं कर्मकोही दैव कहतेहैं और कर्म किसको कहतेहैं जो मनकी चेष्टाहै तिसको कर्म कहतेहैं सो मन पुरुष स्वरूप है और प्रारब्ध इन्हसे भिन्न नहीं है यह हमारा निश्चयहै ॥ ६७ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न. हे गुरुजी ! जो पूर्वजन्मकी वासनाका समूहहै सो मेरेको मायाकरके जैसे प्रेरणा करताहै तैसेही मैं प्रवृत्त होता हूं मैं पराधीन हूं और जो तुम मेरेको उपदेशकरों तिसको मैं करुं ॥ ६८ ॥

श्रीवासिष्ठजी कहतेहैं. हे रामचंद्रजी ! मैं तेरेको इस कारणते कहताहूं तू वासनाको त्यागकर प्रारब्धको दूरकर अपने पौरुष करके यत्नकरके अखंड आनंदको प्राप्त होवेगा ॥६९॥ हे रामजी ! यह वासनारूपी नदी दोमार्ग करके वहतीहै और शुभ मार्ग करके और अशुभमार्ग करके तिसते अपने पौरुषके यत्न करके शुभ मार्गमें युक्त करनेयोग्य है ॥७०॥ हे रामजी ! इसका यही उपाय है अशुभ कर्मोंसे प्रवृत्त भये अपने मनको पौरुषरूपी यत्नके बल करके शुभ मार्गोंसे प्रवृत्तकर तेरेको वैराग्यका विचारका बल प्राप्त भया है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! जबलग तेरेको दृढ तत्त्वज्ञान नहीं भया हैं जबलग तैंने परमात्माका स्वरूप जानेआ नहीं है तबलग तू गुरोंके बचन करके और शास्त्रोंके प्रमाणकरके जो निर्णय किया है तिसको आचरण कर ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! शुभ कर्म करने करके तेरे अंतःकरणकी मलिनता शुद्ध होवेगी निश्चय करके आत्मतत्त्वको जब तू जानेगा तद तैंने शुभ कर्मोंकी वासना भी त्यागदेनी ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! यह शुभ कर्म करनेवाला मार्ग उत्तम पुरुषोंने सेविआहै उत्तम बुद्धि करके इसकों तूं सेवन कर जब तेरा अंतःकरण शुभ कर्मोंकरके वासनारहित होगा तो तू शुभ कर्मोंको त्याग करके शोकसे रहित आत्मस्वरूको प्राप्त होवेगा ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! सृष्टिके आदमें ब्रह्माकी इच्छासे मैं प्रकट होताभया तद मैं संसारके दुःखकी शांति वास्ते पिताको प्रश्न करता भया पिता मेरेको ज्ञान उपदेश करके बचन कहता भया ॥७५॥ हे पुत्र ! अब तूं पृथिवीलोकमें जंबूद्विप है तिसमें भार-

तखंडके लोकोंके अनुग्रहके कारण करके चला आता ॥ ७६ ॥ तहां जायकरके तुमने उत्तम बुद्धि करके कर्मकाण्ड करनेवाले पुरुषनको कर्मकांड उपदेश करना और आपभी कर्मकांडमें प्रवृत्ति करनी ॥ ७७ ॥ हे पुत्र ! जौनसे विरक्त चित्तवाले पुरुष हैं महा बुद्धि वाले विचारकरके उपदेशकरके विरक्तपुरुषोंको तुमने ज्ञानके आनंदकों प्राप्त करने ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! कमलसें प्रकट भये ऐसे पिता ब्र-ह्माजीके इतना उपदेश करके में पृथिवीलोकमें प्राप्त भया हूं जब लग यह भूतोंकी सृष्टि रहेगी तबलग पृथिवीलोकमें हमारी स्थिती है ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! पृथ्वीलोकमें मेरेको कार्य करना कोई न-हींहै पिताकी आज्ञा करके लोकोंके उपकारलिये मेने यहां रहना है इस कारण करके में स्थित भयाहूं निरंतर शांतवृत्ति करके अहंकाररहित बुद्धिकरके व्यवहारके कार्य करताभी हूं तदभी अंतः-करणकरके नहींकरताहूं ॥८०॥ हे रामजी ! जनकादिक राजा भयेहैं सोभी संपूर्ण विद्यामें राजाकी नाईं उत्तमहै और अत्यंत गोप्यउपदे-शोंमें राजाकी नाईं गुप्तहै ऐसा आत्मज्ञानकों जानकरके परम दुःख की शांतिकों प्राप्त होते भये ॥ ८१ ॥ हे रामजी ! यह तुमको उत्त-म वैराग्य प्रकट भया है कैसाहै सत्पुरुषों कों चमत्कार करनेहारा है और दुःखादि निमित्त विना भया है और अपने विवेक सें उत्पन्न है इसकारण ते यह सात्विक वैराग्य है ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! दुःखकों प्राप्त होइ करके और मलीनता देखकरके सभ कों वैराग्य होता है स-त्पुरुषों को विवेक करके उत्तम वैराग्य होताहै ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! विवेक करके संसार की रचना को अनित्य विचार करके जौंन से वै-राग्यकों प्राप्त होते हैं सो उत्तम पुरुष हैं ॥८४॥ हे रामजी ! परमात्मा परमेश्वर के प्रसादते तुह्मारे सरीखे पुरुषकी विरले की शुभबुद्धि विवे-क को प्राप्त होतीहै ॥८५॥ हे रामचंद्रजी ! ऐसी उत्तम बुद्धि जीवों को

होनी कठिन है और बहुत उत्तम कर्म करके बडे तपकरके बडे नियम करके महादान करके और चिरकाल तीर्थयात्रा तें और विवेकते दुष्ट कर्मका क्षय होत संते परमार्थ के विचार करनेमें जीवों कों अकस्मात् बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ ८६ ॥ हे रामचंद्रजी! शीत वात आदिक संसार के दुःख जो हैं सो संतजनोंविषे ज्ञानकी युक्ति विना कैसे सहिमें आवते हैं ॥ ८७ ॥ हे रामचंद्रजी! दुःख की आं चिंता क्षण में आयकरके अपने अपने समय में मूढ नर को दाह करती हैं जैसे अग्निकी ज्वाला तृण को दाह कर्ती है ॥ ८८ ॥ हे रामजी! उत्तम है बुद्धि जिसकी और जानिया है आत्मतत्त्व जिसने भले प्रकार करके ज्ञानदृष्टिवाले पुरुषको संसारकी चिंता दाह नहीं करतीहै जैसे वर्षा जिसके ऊपर अखंड होतीहै ऐसे बनको अग्निकी ज्वाला दाह नहीं करतीहै ॥ ८९ ॥ हे रामजी! इस कारण तें बुद्धिवान् पुरुषने तत्त्व जाननेकों प्रमाण करके कहनेवाला संशय रहित है और बुद्धिं जिसकी ऐसा जो तत्त्वज्ञानी सत पुरुष प्रीति करके पूछने योग्य है ॥ ९० ॥ हे रामजी! प्रमाण करके युक्त उत्तमहै और दया करके युक्त है चित्त जिसका ऐसे सत्य पुरुषको जौंनसा अर्थ पूछेआ है तिसके उपदेशका वचन करके ग्रहण करने योग्य है जैसे वस्त्र करके केसरका रंग ग्रहण कियाजाताहै ॥ ९१ ॥ हे रामजी! जौनसा प्रमाण करके कहनेवालेके कहनेमें जो पुरुष नहीं स्थित होताहै तिसते दूसरा नीच पुरुष कोई नहींहै ॥ ९२ ॥ हे रामजी! पूर्व वाक्यका पिछलेवाक्यका संबंध करनेमें समर्थ बुद्धिवाले प्रति प्रश्नका उत्तर तत्त्वज्ञानी पुरुषने कहने योग्यहै पशुसमान जड बुद्धि नीचपुरुषको नहीं कहने योग्य है ॥ ९३ ॥ हे रामजी! जो जो मैं तेरे प्रति कहता हूं सो सो तेरे ग्रहणकरने योग्य है और यत्न करके अपने हृदय में धारणे योग्य है और जो तेरेको धारणा करनेकी

इच्छा नहीं होवे तौ तैंने मेरेको वृथा नहीं पूछना ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! मन बहुत चंचल है संसाररूपी वनका वानर है इस मनको यत्न करके सावधान करके परमार्थकी वानी श्रवण करने योग्य है ॥ ९५ ॥ हे रामचंद्रजी ! निरंतर सत्पुरुषोंकी संगतिकरके विवेक प्रकट होता है और विवेक कल्पवृक्ष है भोग और मोक्ष यह दोनों विवेकवृक्षके फल हैं ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! मोक्षरूपी मंदिरके चार द्वारपाल हैं वह कौंन हैं शम और विचार और संतोष और सतसंग ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! यह चारों यत्न करके सेवने अथवा तीन सेवने अथवा दो सेवने अथवा एक सेवना यह द्वार मोक्षरूपी राजमंदिरके द्वारको उघाड देतेहैं ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! अथवा सर्व प्रकार यत्न करके प्राण त्यागको निश्चय करके एक द्वारपालको सेवना एक के वश भये संते चारोंही अपने वश होतेहैं ॥ ९९ ॥ हे रामजी ! जौंनसे संसारमें दुःखहैं जौंनसी तृष्णा है और जौंनसीयां असाध्य व्याधि है और चिंताहै शांत भये चित्तोंमें नाशको प्राप्त होतीहै जैसे सूर्योंके मध्यमें अंधकार नष्ट होताहै ॥ १०० ॥ हे रामजी ! जैसे उग्र प्राणी और सौम्य प्राणी अपनी माताके दर्शनमें शीतल स्वभाव होतेहैं और माता विश्वास करतेहैं तैसें सर्व भूत शांतवृत्ति पुरुषोंमें विश्वासकों प्राप्त होतेहै ॥१॥ हे रामजी ! ऐसा सुख अमृत पान करके नहीं होताहै और लक्ष्मीका आलिंगन करके भी ऐसा आनंद नहीं होता है जैसा आनंद अंतःकरण में शांति करके होता है ॥२॥ हे रामचंद्रजी ! शांतवृत्ति पुरुषकों पिशाच भी नहीं द्वेष करताहै और राक्षस और दैत्य और शत्रु और व्याघ्र और सर्प शांतिवाले पुरुष द्वेष नहीं करतेहैं ॥ ३ ॥ हे रामचंद्रजी ! जौंनसा पुरुष शुभ अशुभ शब्दको श्रवण करके और कोमल कठोरकों स्पर्श करके स्वादवाला स्वादरहित भोजन करके सुंदर और नहीं सुंदररूपको देख करके हर्षको नहीं प्राप्त होताहै सो

शांतवृत्ति कहियाहै ॥ ४ ॥ हे रामजी ! जिसका मन मरण समयमें युद्ध समयमें उत्सव समयमें चंद्र बिंबकी न्यांई शीतल है और व्याकुल नहीं है सो पुरुष शांत वृत्ति कहियाहै ॥ ५ हे रामचंद्रजी ! जिसकी दृष्टि अमृतके प्रवाहके न्यांई सर्व लोकके प्रति प्रीतियुक्त प्रवृत्त होतीहै सो पुरुष शांतवृत्ति कहिया है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! तपस्वी गणोंसे बहुत ज्ञानवाले विषें यज्ञ करनेवाले विषें राजों विषें और बलवानों विषें गुणवाले विषें शांतवृत्ति पुरुष महिमा करके विराजमान होताहै ॥ ७ ॥ हे रामचंद्रजी ! शमरूपी अमृत ऐसा है गुप्तभी नहीं रहिताहै यह बडा भारीबल है इसकों धारण करके सत्पुरुष लोक परम पदवीको प्राप्त होते भये तिस कारण ते तुमभी शांति क्रमको पालनकर तेरेको मोक्षकी प्राप्ति होवेगी ॥ ८ ॥ हे रामचंद्रजी ! विचारतें बुद्धि तीक्ष्ण होतीहै परमपदको देखती है संसाररूपी दीर्घ रोगकी शांतिवास्ते विचार उत्तम औषध है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! अज्ञानी पुरुषोंकों अपने मनके मोह करके संसाररूपी वेताल है सो प्राणोंको हरलेताहै जैसे रात्रिमें आकाशमें देखिआ वेताल प्राण हर लेता है यह संसाररूपी वेताल विचार करके लीनहोताहै ॥ ११० ॥ हे रामजी ! जगतके सबही भाव अविचार करके सुंदर हैं और असत्य हैं सो विचार करके नष्ट होताहै ॥ ११ ॥ हे रामचंद्रजी ! पुरुषके अपने मनके मोह करके कल्पित किया है संसाररूपी चिरकालका वेताल है बहुत दुःखको देनेहाराहै सो विचार करके लीन होताहै ॥१२॥ हे रामजी ! मन में ऐसा ज्ञान जो होवे में कौन हों यह संसार दोष कैसे प्राप्त भये है ऐसे ज्ञानको विचार कहते हैं ॥ १३ ॥ हे रामचंद्रजी ! ऐसा विचार करने योग्य है मैं कौन हूं यह संसार किसको है बुद्धिवान् पुरुष आपदामेंभी यत्न करके आपही उपायसहित चिंता न करने योग्य है ॥ १४ ॥ हे रामचंद्रजी ! विचाररूपी नेत्र बहु-

त अंधकारमें नष्ट नहीं होता है बहुत तेजों विषे बढता नहीं है अंतराल भये संते भी देखता है यह विचार उत्तम नेत्र है ॥१५॥ हे रामचंद्रजी ! कीचडमें मीडकहोना चंगाहै मलमें कीडा होना चंगाहै अंधेरी गुहामें सर्प होना चंगा है विचाररहित होना चंगा नहींहै ॥ १६ ॥ हे रामचंद्रजी ! यह विचार दृष्टि शांत वृत्ति वाले तुमको भी शोभित कर कैसीहै पृथिवी मे कर्मोंकी सफलताको करतीहै उत्तमताको निश्चय करके प्रकट करतीहै अखंड स्वरूप परमात्माका दर्शन करनेहारीहै ॥ १७ ॥ हे रामचंद्रजी ! संतोष परम कल्याण करताहै और संतोष परम सुख है संतोषवाला पुरुष परम विश्रामको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी ! जौंनसे संतोषरूपी अमृत पान करके तृप्त भयेहैं और शांतवृत्ति भयेहैं तिन्हको यह भोगों की संपदा विषरूपी भासतीहै ॥ १९ ॥ जौंनसा नहीं प्राप्त भयेमें वांछासे रहित है प्राप्त भयेमें प्रसन्न रहितहै खेदखेदभयेतें जिसको खेद नहीं देखेआहै सो यह लोक में संतुष्ट कहिया है ॥ २० ॥ हे रामचंद्रजी ! आशा की विवशता करके चित्त जिसका व्याकुल भया है संतोषसें रहित है ऐसे चित्तमें ज्ञानका प्रतिबिंब नहीं होता है जैसे मलीन शीशेमें मुखका प्रतिबिंब नहीं होताहै ॥ २१ ॥ हे रामजी ! संतोष करके तिन्हपुरुषों के मन पुष्ट भये हैं तिन्हको संपूर्ण संपदा आदही प्राप्त होती है जैसे चाकर राजाकों आपही सेवा करते हैं ॥२२॥ हे रामजी ! सुखदुःखमें संतोष करके समदृष्टि करके शोभायमान हैं सो पुरुषों में राजा है तिसको आकाश में चलनेवाले देवता और मुनि प्रणाम करते हैं ॥२३॥ हे रामजी ! हे महाबुद्धे ! ! सतसंग जो है सो संसार के तरने में पुरुषों को विशेष करके सर्वत्र उपकार करता है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! सत्संग होनेसें शून्यता गुणों करके पूर्णता होती है और मृत्यु महा उत्सवरूप होता है और आपदा संपदारूप होतीहै ॥ २५ ॥ हे राम-

जी! जौंनसा पुरुष सत्संग रूपी गंगा करके स्नान करता है कैसीहै गंगाजी शीतल है और आनंद के करने हारीहै और निर्मल है और पवित्र करने हारी है तिस पुरुषकों दान करके और तीर्थों करके तप करने करके और यज्ञकरने करके क्या अर्थ है ॥ २६ ॥ हे रामचंद्रजी! यह जगतमें सबतें साधुजनका समागम भले प्रकार करके उत्तम है और कैसा है आपदारूप कमलनी शुकावने कों बर्फरूप है मोहरूपी धूर को उडावनेको पवनरूपी है तिसते सत्संग साधु जनोंका सबते अधिक ही उत्तम है ॥ २७ ॥ हे रामजी! साधुजन कैसे होते हैं जिन्ह की संशयरूपी ग्रंथि सब छिन्न भई है वह आत्माके स्वरूपको जानने हारे हैं और सर्व जनों करके मान्य है और प्रकार करके सेवने योग्य हैं संसार समुद्र के तरणेको उपाय भूत हैं ॥ २८ ॥ हे रामचंद्रजी! सो पुरुष नरक रूपी अग्नी की सूकी समिधा बने हैं जिन्ह पुरुषों ने नरकरूपी अग्नी को शांत करने को बादल रूपी संत जनका आदर कर सेवा नहीं करीहै ॥२९॥ हे रामजी! संतोष और सज्जनोंका समागम और विचार और शम यह चार संसार समुद्र तरनेके लिये उपायहैं ॥ ३० ॥ हे रामजी! संतोष परम लाभ है और सत्संग परम गतीहै और विचार परम ज्ञानहै और शम परम सुखहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी! यह चार संसारके भेदनेके लिये उपायहैं जिन्ह पुरुषोंने यह चारों सेवेहैं सो पुरुष मोहजालके संसारसमुद्रसे तरंगेहै ॥ ३२ ॥ हे रामजी! यह चारोंमें निर्मल उदय वाले एकका अभ्यास किये संते चारोंही बुद्धिवान् पुरुषको सबही अभ्यास होजातेहैं ॥३३॥ हे रामजी! तुम यह चार उपायकी अखंड संपदायुक्त हो तिस कारणतें मनके मोहको हरने हारा मेरे कहे हुए इस वचनका श्रवण करो ॥ ३४ ॥ हे रामजी! जिसका पुण्यरूपी कल्पवृक्ष फल देनेको तैयार भया होय तो तिस जीवको मुक्तिलिये ऐसा वचन श्रवण करने-

को उद्यम होताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! पवित्र वचनोंका पात्र उत्तम पुरुष होताहै कैसेहैं वचन उदारहैं श्रवण करने हारेको ज्ञान देने हारहैं और नीच पुरुष उत्तम वचन श्रवण करनेका पात्र नहीं होताहै॥३६॥ हे रामजी! यह मोक्षोपाय नाम संहिता सार रूपी अर्थ की मैने रचना करीहै और ३२००० श्लोक इसका परिमाणहै जाननें हारे को निर्वाण सुख को देतीहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी! जैसे जिस पुरुषकी निद्रा दूर भईहै तिस पुरुषको प्रकाशकी इच्छा नहींहै तौभी दीपक प्रज्वलित भये संते स्वभाव करके प्रकाश होताहै तैसेही इस संहिताके अभ्यास करने हारा पुरुष निर्वाण सुखकी इच्छा नहींभी करे तोभी इस संहिता करके निर्वाण सुख स्वभावतें होताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी! इस संहितामें युक्ति करके युक्त दृष्टांतों करके सार अर्थ करके युक्त वाक्य भिन्न भिन्न रचना कियेहैं और इसमें प्रकरण ६ छः कियेहैं॥३९॥ हे रामजी इसमें प्रथम वैराग्य प्रकरणहै जिस करके वैराग्य बढताहै कैसे जैसे जलका सिंचन करके निर्जल देशके वृक्षकों भी पत्रादिक होतेहैं ॥ ४० ॥ हे रामजी! वैराग्य प्रकरणका एकहजारपंचशत १५०० श्लोक परिमाणहै जिसके विचार करने करके हृदयमों ज्ञान प्रकाशमान होताहै जैसे शाणमें घसीभई मणी प्रकाशमान होतीहै ॥ ४१ ॥ हे रामजी! दूसरा मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणहै जिसका एक सहस्र १००० श्लोक परिमाणहै युक्तिवाले ग्रंथ करके सुंदरहै जिसमें मोक्ष चाहनेवाले मनुष्योंका स्वभाव वर्णन कियाहै॥ ४२॥ हे रामजी ! इसतें उपरांत उत्पत्तिप्रकरण तीसरा कियाहै जिसका प्रमाण सातहजार ७००० श्लोक कियाहै विज्ञानको करनेहाराहै जिसमें जगत में देखने से पुरुष देखने योग्य है पदार्थों की संपदा वर्णन करी है जिसमें हम और तुम और इतर पुरुष यह नामरूपका भेद बनाहै ॥ ४३ ॥ हे रामजी! यह जगतकी संपदा कैसी है और उत्पन्न नहीं भई जैसो उदय का प्राप्त भई कहता-

है ॥४४॥ हे रामजी! उत्पत्ति प्रकरण कों श्रवण किये श्रवण संते करने हारा है संपूर्ण जगत कों अपने हृदय में जान लेता है ॥ ४५ ॥ हे रामजी! जगत कैसा है हम तुम ऐसे भेद करके सहितही विस्तारको प्राप्त भया है अनेक लोक आकाश पर्वतों करके युक्त है सामग्रीका समूहके पिंडसे रहित है जैसे घडा मृत्तिका के पिंडका प्रत्यक्ष बनता है तैसें नहीं उत्पन्न भया है तैसे पृथिवी आदि में पर्वतादिमर्यादा होताहै तैसे इसमें पर्वतादि मर्यादा नहीं है यह निर्मर्याद है ॥४६॥ पृथिवी आदि भूतों की रचना सें रहित है और पृथिवी आदिकोंका नाश भयेभी नष्ट नहीं होता है जैसे मनके संकल्पमें नगर मिथ्या फुरण होता है ॥ ४७ ॥ हे रामजी! फेर कैसाहै जगत स्वप्नमें देखे पदार्थों कीन्यांई भासता है मनोरथोंकी न्यांई विस्तार कों प्राप्त होता है ॥४८॥ हे रामजी! फेर कैसा है सत्य पदार्थों की शून्यता देखने सें गंधर्व नगर की न्यांई भासताहै एक चंद्रमामें दोचंद्रमां की भ्रांति की न्यांई भासता है रेती में सूर्यकी किरणोंकी चमकतें भई जल की भ्रांति जैसाहै ॥४९॥ हे रामजी ! फेर कैसा है बेडी के चलनेतें पर्वतके चलने की भ्रांति जैसा है सत्य लाभसें रहित है चित्तकी भ्रांतिसें पिशाच दर्शनकी भ्रांति जैसी है और बीज सें रहित है तौ भी भासता है ॥ ५० ॥ हे रामजी! फेर कैसा है जगत् कथां के अर्थ के आभास की न्यांई है और आकाश में मुक्तामणि के आभास सरीखा है जैसे सुवर्ण में भूषण की कलपना होती है तिसके तुल्य है और जलमें तरंगों की कलपना जैसा है ॥ ५१ ॥ हे रामजी! जैसे आकाश में नीलरंग की कलपना असत्य होती है तैसे कलपना मात्र है जैसे स्वप्न में अथवा आकाश में चित्त की कलपना का फुरणा है और कैसा है चित्र आश्रय रहित है फुरणे मात्र सुंदर है फेर कैसा है कर्त्ता से रहित है और चिरकाल तक भासता है ॥ ५२ फेर वह कै-

सा है जगत चित्र में लिखे आखेआ जो अग्नि है सो दाह से और प्रकाशते रहित है तोभी अग्निका नामरूपको धारताहै तैसे यह असत्य रूप है तोभी जगत के नाम शब्दको रूपको और अर्थ को धारता है ॥५३॥ हे रामजी ! फेर कैसा है जगत तरंगों में नील कमलोंकी आभा जैसा देखिया है जैसे नृत्यशाला में नृत्य विलास दृश्यमान होता है और तिसके समान क्षणमात्र पुराणा रूप है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! शांत भया है अज्ञानरूपी अंधकार जिससें ऐसा विज्ञानरूपी शरदका आकाश है फेर कैसा है स्तंभमें पुतली सरीखा चित्रित किया है चित्तरूपी दिवालमें उदयभया है मानों कीचडतें रचना किया है और चैतन्यता युक्तभी है और अचेतन भी है ऐसा जगत उत्पत्ति प्रकरण में वर्णित किया है ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत चौथा स्थिति प्रकरण कल्पित किया है और उस ग्रंथके श्लोकोंका तीनहजार ३००० परिमाणहै और उसमें अनेक दृष्टांत कथा संयुक्त है ॥५६॥ हे रामचंद्रजी ! यह जगत इस प्रकारकरके अहंभावकी स्थितीकों प्राप्त भया है और देखने हारा पुरुष देखने योग्य पदार्थोंका क्रम करके वृद्ध भया है यह इसमें वर्णित किया है ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! और यहजगतरूपी महावृक्ष दशादिशाका मंडलमें प्रकाशमान है इसप्रकार करके वृद्धिकों प्राप्तभयाहै और यह स्थितिप्रकरणमें वर्णित कियाहै ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत पंचम उपशांति प्रकरण कहिआ है उसके श्लोकोंका परिमाण पांचह० ५००० है ओर युक्ति विस्तारकरके सुंदरहै यह जगतहै और यह हमहैं यह तुम हो सो पुरुष है ऐसी जो जगतकी भ्रांति उदयभई है सो इस प्रकार करके शांत होती है और उपशांतीप्रकरणमें श्लोकोंका संग्रह करके कहता है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्ति क्रम करके भ्रांति क्षीण भई है तोभी सत्ताके लेश करके शेष रहती है जैसे चित्रमें लिखने मात्र स्वरूपकरके शेष

रहती है ॥ ६० ॥ हेरामजी! सो भ्रांति विरोधवाले अंशकरके शांत होती है परंतु तोभी विरोध रहित शांत अंश करके शेष रहती है तिसमें तुम्हारे को नव दृष्टांत कहते हैं ॥६१॥ हे रामजी! उपशम होने संते ज्ञानी पुरुषको अज्ञानकी सप्त भूमिका का जय करते जैसे जैसे भूमिका का क्रम करके जय होता जाताहै तैसे तैसे भ्रांति शांत होतीहै अंशकरके शेषरहतीहै सोभी शांतिहोती जातीहै पहिले संस्कारमात्र लक्षितहोतीहै फेरअलक्षित रूप संस्कारमात्र शेषरहतीहै सप्तमी भूमिकामें निःशेष नष्ट होतीहै तो जीवन्मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति होतीहै इस में दृष्टांतहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी! किसी पुरुषको संकल्प में नगरी फुरीहै और तिसके पास दूसरे पुरुषको स्वप्न में नगरी दृश्यमान भईहै फेर नगरीमें युद्धका कोलाहल शब्द भया फेर धन संपदा प्राप्त भई तिस नगरीकी शोभा स्वप्न देखनेवालेको प्रत्यक्ष दृश्यहै संकल्प वालेको किंचिन्मात्र दृश्यहै और संकल्प शांत भये संते स्वप्न नष्टभये संते जैसे सो नगरीकी शोभा शांत होतीहै तैसेही जगतकी भ्रांति शांत होती है ॥ ६३ ॥ हे रामजी! जैसे संकल्पकरके मत वाले हाथीकी न्यांई भारी बादल कल्पना किया है उसका गर्जनाभी कल्पना करी है और संकल्पशांत भये संते बादलभी गर्जना शब्द भी शांत होता है तैसे उपशांति करके भ्रांति शांत होती है जैसे स्वप्न करके नगर कल्पना कियाहै संकल्प शांत भयें संते नगरकी कल्पना शांत होतीहै तैसे भ्रांति शांत होतीहै ॥ ६४ ॥ हे रामजी! आगे होना जो नगर तिस में जो बगीचा और तिस में प्रकट भई वंध्यास्त्री तिसके अंगसे उत्पत भई कन्या तिसकी जिह्वा करके कहिआ आगे होने वाली कथा का अर्थ तिसके अनुभवके तुल्य ऐसी जो जगतकी भ्रांति सो शांत होतीहै ॥ ६५ ॥ हे रामजी! नहीं लिखिया ऐसा जो चित्र तिसका चित्र करनेका विस्तार दिवाल विना स्थान होइ यह

सब असंभावित है और तैसे भ्रांति शांत होतीहै जिसकी रचना विस्मृत होय गईहै ऐसा जो नगर जैसे संभावनामें नहीं होय तैसे भ्रांति शांत होतीहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी! सर्व ऋतु करके सर्व कालमें होनेसें पुष्प फलों वाले वृक्षों करके संयुक्त और जिसकी उत्पन्न नहींहै और ऐसाजो बनाहै तिसका स्वरूप जैसे देखने में संभावनामें नहीं आवे तैसे भ्रांति शांत होतीहै और आगे होना जो पुष्प वाले वृक्षों का बन तिसका स्वरूप करके बनी जो बसंत ऋतु की रचना सो जैसे मिथ्या होतीहै तैसे भ्रांति शांत होतीहै ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! अंदर में लीन होय गयाहै और तरंगोंका समूह जिसका ऐसी शांत भई जो नदी तिसके समान जगतकी भ्रांति शांत होतीहै सो उपशम प्रकरण में कहींहै ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत निर्वाण प्रकरण छठा कहिआ है और शेषग्रंथ १४५०० हजार पंचशत प्रमाण श्लोकहैं और जिसके ज्ञानका महा अर्थ जो मोक्ष है तिसको देने वाला है ॥६९॥ तिसको जाने संते महा कल्याण होताहै और निर्वाण शांतिका आनंद प्राप्त होताहै जिसते यह पुरुष पूर्णात्माही होताहै जिस निर्वाण प्रकरणको जान करके यह पुरुष और करके चेतया नहीं जाता है ऐसा चैतन्य स्वरूप होताहै और स्वयं प्रकाश होताहै ज्ञानस्वरूप होताहै और निर्विकार होताहै और आकाशकी न्यांई निर्मल होता जिस पुरुषकों संपूर्ण जगतके भ्रम शांत होतेहैं ॥ ७० ॥ हे रामजी ! तिस पुरुषका जगतमें आवना जाना शांत होताहै और कृत्य होय कर स्थित होताहै और संपूर्ण जगतकी रचना को चूरण करनेको वज्रके स्तंभकी न्यांई लय करनेवाला होताहै और आकाशकी न्यांई असंग होताहै ॥७१॥ हे रामजी ! तिस पुरुषके अंतःकरणमें संपूर्ण जगतकी रचना का जाल अनेक प्रकारकी संख्याके प्रमाण सहित लीन होता है सो पुरुष अपने स्वरूपमेंही अत्यंत तृप्त होताहै॥७२॥ हे रामजी ! तिस

पुरुषको कार्य कारणका भेदज्ञान नहीं होता है और कर्त्ताकी कर्मकी ज्ञानदृष्टि नहीं होती है और ग्रहणका करना और त्यागना यह दृष्टिभी नहीं होतीहै ॥ ७३ ॥ हे रामजी! सो पुरुष फेर कैसाहोताहै और देह करके युक्त है तोभी देहके अभिमानसे रहित होताहै और संसारमों वर्त्तमानहै तौभी संसारके बंधनसे रहित होताहै और चैतन्य स्वरूपहै तोभी तिस पुरुषके उदरमें बहुत पत्थर भरे होये और अत्यंत स्थूल होय अपने देहके चलनेकी सामर्थ्य जिसको नहीं होवे तिस पुरुषकी न्यांई संसार कर्मोंकी चेष्टासे रहित होताहै ॥ ७४ ॥ हे रामजी! तिस पुरुषकों संसारकी दुष्ट लीला प्रतिबंध होजातीहै और आशारूपी विषूचिका रोग क्षीण होताहै और अहंकार रूपी वेताल नष्ट होताहै और देहधारी है तोभी देहके धर्मसे रहित होताहै ॥ ७५ ॥ हे रामजी! तिस पुरुषके एक रोमके अग्रभागमें यह संपूर्ण जगतकी संपदा सूक्ष्मरूप स्थित होतीहै और जैसे सुमेरु पर्वत लक्ष योजन है तिसमें भ्रमरी सूक्ष्मरूप करके दृष्ट होती है ॥ ७६ ॥ हे रामजी! सोपुरुष स्वरूप करके परमाणू के भी परमाणू से सूक्ष्मरूप होताहै और जिसके चैतन्य स्वरूप आकाशमें हजारों जगत कियां लक्ष्मियां दृष्ट होती हैं और अपने स्वरूप में धारण करके अपने स्वरूप में देखता है ॥ ७७ ॥ हे रामजी! यह हमारा कहिया वेदांतशास्त्र सुखवाला बोध करनेवाला है और अलंकारों करके शोभायुक्त हैं और उत्तम काव्य है शांतिरस शृंगार आदि रसोंकरके युक्त है अत्यंत सुंदर दृष्टांतों करके हमनें सिद्ध किया है ॥ ७८ ॥ हे रामजी! यह शास्त्र कैसा है थोडे पद पदार्थों के ज्ञान करकेभी आपही सुखसे बोधको प्राप्त करदेताहै जो पुरुष इसके अर्थकों आप नहीं जाने तिस पुरुषने इसका श्रवण वेदांत शास्त्रोंको जानने हारे पंडितसे श्रवण करने योग्यहै॥७९॥ हे रामजी! यह शास्त्र कैसा है तिसको श्रवण किये संते माने संते

और जाने संते मोक्षकी प्राप्ति निमित्त तप और ध्यान और जपादिक कोईभी योग्यताको प्राप्त नहीं होता है केवल इसके श्रवण मनन किये संते मोक्षकी प्राप्ति निश्चय करके होती है ॥ ८० ॥ हे रामजी ! इस शास्त्र के दृढ अभ्यास करनेसें बार बार विचार करनेसें अपूर्व पंडिताई होती है और चित्तमें संस्कार सहित ज्ञान होता है ॥ ८१ ॥ हे रामजी ! इस शास्त्र करके दीनता और दरिद्रतासे लेकर दोष दृष्टि जो हैं विघ्नोंके करनेवाली है तोभी मुमुक्षु पुरुष के मरनेको वेध नहीं करती है जैसे कवचधारण करनेवाले पुरुषको बाण वेध नहीं करतेहै ॥८२॥ हे रामजी ! संसारकीयां भयकरने वालीयां भीतीजो हैं सोआपने सन्मुख आयेप्राप्त भयेकों भी हृदयमें खेदनहीं करतीहै जैसे आभागे स्थित भयेपर्वत को बाण जलधारा भेद नहीं करसकतीहैं ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! इसशास्त्रका श्रवणकरनेसें पुरुषको समुद्रकी न्यांई गंभीरता होतीहै और सुमेरु पर्वतकी न्यांई स्थित होतीहै और चंद्रमाकी न्यांई अंतःकरणमें शीतलता होतीहै ॥८४॥ हे रामजी ! जैसे चित्रमें लिखिया सर्प देखने वालेको भयनहीं देताहै तैसे शास्त्रविचार करनेवाले पुरुषको प्रत्यक्षदेखा संसाररूपी सर्पभी भयको नहींदेताहै ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! पुष्पके सूंघनेमें देरहोतीहै इसशास्त्रके विचारकरनेवालेको आत्माकी प्राप्तिमें देरनहीं होतीहै ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! पुष्पके पत्रकों तोडनेमें कुछ अंगों करके खेद करने बनताहै इसशास्त्रके विचार करनेवालेको परमात्माकी प्राप्तिमें खेद नहीं करने बनताहै ॥ ८७ ॥ हे रामजी ! इसशास्त्रका विचारकरने वाला पुरुष सुखकरके आसनमें बैठे पद्मासनादि आसनका नियमका बंधनसे रहितहोताहै और अपनी इच्छाकरने बिना दैवयोगकरके जो मिले तिसको भोजन करे तिस पुरुषको तप और व्रतादिकों का नियम कोई नहीं होताहै और भोगभी आचारसे सेवेतो विरुद्धकर्मोंका त्याग आ-

पही होजाताहै ॥ ८८ ॥ हे रामजी ! जोपुरुष जैसा मिले तैसा सत्संगकरे इसशास्त्रकों अथवा और वेदांतशास्त्रको श्रवणकरे विचार नकरे तिसपुरुषको ज्ञानकरके महाबोध होताहै जिसकरके संसारकी शांती होतीहै जिसकरके माताके गर्भके यंत्रकी पीडाको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ ८९ ॥ हे रामजी ! जौंनसे पुरुष ऐसे सुखवाले मोक्षको उपायमें भी भयको प्राप्तहोतेंहै और पापकरके भोगरसोंमें आसक्तभये हैं सो पुरुष माताके मलमें कीडा होतेहैं जिन्हका नाम मुखसे उच्चारण नहीं करना सो पुरुष नीचहैं ॥ ९० ॥ हे रामजी! यह पुरुष अपने कल्याणके वास्ते पहिले सत्संग करके युक्ति करके अपनी बुद्धिको सुधारे तिसते उपरांत महात्मा पुरुषों के लक्षणों करके महात्मा पुरुषोंकी वृत्तिको धारण करे ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! शम और दम इत्यादि महा पुरुषोंके लक्षणहै सो भले प्रकार कर ज्ञान विना सिद्ध नहीं होतेहैं ॥ ९२ ॥ हे रामजी! ज्ञानमें शमादि गुण होतेंहै शमादि गुणोंसे ज्ञान होताहै और ज्ञान और शमादि गुण आपस में शोभाको प्राप्त होतेंहै जैसे कमल और सरोवर आपसमें शोभित होतेंहै ॥ ९३ ॥ हे रामजी! सत्पुरुषोंके आचार से ज्ञान बढताहै और ज्ञान करके सत्पुरुषोंका आचार बढताहै ज्ञान और सत्पुरुषोंका आचार दोनों मिलकरके आपसमें बढतेंहै ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! मैने यह दोनों ही समान सेवेंहै इन्ह दोनोंमें एक विना दूसरा सिद्ध नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! जैसे कोई स्त्री अपने खेतसें पशु और पक्षीयोंको दूर निकालतीहै और गीत गायन करतीहै और गीतके आनंदमें प्रीतिवाली है और पशुओंको दूर करने साथही गीतका आनंद करतीहै तैसे चतुर पुरुषने ज्ञान करके सत्पुरुषों के आचारकरके आत्मपदकी प्राप्तिसिद्धि किया है ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! जिसने आत्मस्वरूप जानिया है सो आपही अवश्य होयकर परमपदको प्राप्त होता है जो इस

पुरुषने मनकी सावधानता करके उत्तम अखंड वस्तु जानियाहै सो वस्तु ज्ञानके वशतें दूर नहीं होताहै ॥ ८४ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार

॥ अथ उत्पत्तिप्रकरणम् ॥

तृतीय प्रकरणमें–

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति जगतकी उत्पत्ति कहतेभये जगत और जीव उत्पत्ती और प्रलय यह सब अज्ञानसे कल्पना मात्र भासता है स्वप्नकी नाईं मिथ्याही प्रतीतहोताहै और ज्ञान भये संते सबही एक अद्वितीय आत्मस्वरूप ब्रह्मही भासताहै इस अर्थको श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको पहिले संक्षेपकरके श्रवण करावते हैं ॥ १ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मही तत्वमसि इत्यादि महावाक्योंका विचारसे भई एक अखंडाकारवृत्तिकरके वृद्धभये आत्मप्रकाशों करके अपने तत्वकों साक्षात्कारकरके आपही वास्तव नित्यमुक्त पूर्णस्वरूपकरके भासता है आपनी मुक्तिमें महावाक्यविचारसे भई एकाग्रवृत्ति विना और उपायकी इच्छा नहीं करता है सो कैसे जिसकारणतें यह देह इंद्रियआदि कार्यरूपकरके आकाशादि कारणरूपकरके दृश्यमान बंधरूप जो विश्वहै सो जीवरूपी ब्रह्मविषेही स्वप्नकी नाईं प्रकट भयाभासताहै स्वप्नका बंधनकी निवृत्ति जाग्रत होनेसे अन्य उपायको नहीं चाहती है तैसेही आत्मस्वरूपका अज्ञानकरके ब्रह्मही स्वप्नकी नाईं जीवरूपकरके संसारबंध-

को प्राप्त भयाहै सो महावाक्यविचारते आत्मस्वरूपका ज्ञान विना अपना बंध दूर करनेको और उपायको नहीं चाहताहै जो कोई हमारे जैसे अधिकारीहै सोभी ब्रह्मरूपहै ब्रह्मसेही प्रकटभये और वेदांतवाक्योंका श्रवण मनन निदिध्यासनकरके ब्रह्मको जानता है सो अहंब्रह्म इसप्रकारसे जीवताही नित्य शुद्ध बुद्धिपरिपूर्ण अद्वितीय नित्यमुक्त परब्रह्म होताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणसे उपरांत अब तेरे प्रति उत्पत्तिप्रकरण हम कहते हैं और तिसको तुम सावधान होयकर श्रवण करो ॥ ३ ॥ हे रामजी! यह संसारबंध दृश्यपदार्थकी सत्यभावनोंसें होताहै और दृश्यपदार्थका असत्यभावनाते नहीं होताहै जिसप्रकारकरके दृश्यपदार्थकी सत्यभावना नहीं होवे तिसको तुम क्रमसे श्रवण करो ॥ ४ ॥ हे रामजी ! जौनसा यह स्थावर जंगम संपूर्ण जगत दृश्यमान है सो जैसे सुषुप्ति अवस्थामें स्वप्नालीन होताहै तैसे कल्पके अंतकालमें प्रलयको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ हे रामजी! प्रलयते उपरांत किंचित् सत्तामात्र वस्तु वोंकी शेष रहता है कैसा है निश्चल है और गंभीर है ना तो वह तेजहै और ना वह अंधकार है सर्वत्र एकरूपहो व्याप्तहै जिसका रूप नहींहै सो केवल सत्तामात्र ब्रह्महै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! सो अविनाशी है आत्मा है और परंब्रह्म है और सत्यहै इत्यादि नाम तिसके पंडितोंने व्यवहारवास्ते कल्पना किये हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! सो अद्वितीय सत्तामात्र परमात्मामें एकहों ऐसे फुरनेको प्राप्त होताहै तो तुच्छरूप जीवभावको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे रामजी! तिसते सो जीवशब्दके अर्थकी कल्पना करके व्याकुलभावको प्राप्त होताहै तो मनकी कल्पना करके युक्तरूप होताहै तो मननव्यापारको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ हे रामजी ! तिस मननव्यापारके फुरनेसे तिस परमात्मासे मन प्रकट होताहै कैसा है परमात्मा निश्चल है और मन कैसा है चं-

चलरूप है परमात्मासे मन कैसे प्रकट होताहै जैसे समुद्रसें तरंग प्रकट होताहै और समुद्र अचल है तरंग उसके चंचल हैं ॥ १० ॥ हे रामजी! सो मन स्वतंत्र होयकरके शीघ्रही संकल्प करता है तो संकल्पकरकेही इसप्रकारकी जगतरूप इंद्रजालकी संपदा विस्तार करके विस्तारण करादिया है ॥ ११ ॥ हे रामजी! जैसे भूषण शब्दका अर्थ सुवर्णसे भिन्न नहींहोताहै और सुवर्ण शब्द भूषणसे भिन्न नहीं दृष्ट होताहै तैसेंही जगतशब्दका अर्थ परमात्माविषें भिन्न दृष्ट नहीं होता है ॥ १२ ॥ हे रामचंद्रजी! जगतरूपी इंद्रजालकी लक्ष्मी मनकरकेही विस्तारको प्राप्त करादिया है वह कैसी है सत्य नहीं है और असत्यभी नहीं है प्रत्यक्षदेखनेसे सत्यहै और नाश होनेकरके असत्य है जैसे नदीकरके लहरी चलती है ॥ १३ ॥ हे रामजी! सो मनसे विस्तारको प्राप्तभई जगत नाम इंद्रजालकी लक्ष्मी है तिसका नाम अविद्या है संसार नाम है और बंधनभी नाम है और मायाभी नाम है और मोहभी नाम है महाअंधकार इत्यादि नाम तिसके सर्वशास्त्रवेत्ता पंडितोंने कल्पना किये हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी! द्रष्टा आत्मा है और दृश्य जगत है इन्हका आपसमें संबंध जो है सो बंधन कहिया है सो आत्मा दृश्यकी सत्ता होनेसे बद्धभया है दृश्य पदार्थका अभाव भये संते मुक्त होता है ॥ १५ ॥ हे रामजी! जगत् है तुमहो सम इत्यादि कथनमात्र दृश्य है और मिथ्याही कियाहै जबलग यह सत्य भासताहै तबलग मोक्ष नहीं होताहै ॥ १६ ॥ हे रामजी! यह जगत् दृश्यरूपकरके सत्य होवे तो किसीकोंभी शांत नहींहोवे जिसकारणसे असत्यपदार्थकी सत्ता नहींहोतीहै और सत्य पदार्थका अभाव नहींहोताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! तिससें यह जगत् दृश्य है असत्य है जो कोई कहे मैंनें जानियाहै और तपकरके और ध्यानकरके और जपकरके त्यागियाहै. ऐसे जो कहिना है सो कीजां-

करके तृप्त होनेंकी न्याईं मिथ्या है और जैसे कांजीकरके तृप्तिबल नहीं होतीहै तैसे तपादिकोंकरके दृश्यका त्याग नहीं होताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी! जबलग दृश्य भासताहै तबलग परमाणुकेभी अंदर चैतन्यरूपी दर्पणमें प्रतिबिंबित होताहै जो कोई समाधि चढावताहै वह कहताहै मैनें दृश्य दूर कियाहै और मैं अब समाधिमें स्थित हौं. हे रामचंद्रजी! इसका यही बीज है जो समाधिमें संसारकी स्मृति होनी तिसते समाधिमेंभी दृश्य दूर नहीं होताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी! तिस दृश्यका फुरणा होतसंते निर्विकल्पसमाधिकरकेभी अखंड दृश्यपदार्थका सुषुप्ति जैसा लय नहींहोताहै और तुरीयपदभी नहींप्राप्तहोताहै ॥ २० ॥ हे रामजी! यो दृश्यपदार्थ मनसें शांत होवे तो समाधिकरके क्या है और समाधिसे उपरांत फेर दृश्यपदार्थका दुःख होवे तो क्षणमात्र समाधिमें शांत भयेतें क्या सुख है? ॥ २१ ॥ हे रामजी! देखनेवाले जो समाधिकरके अपने आप जडहोयकरके बलकरके दृश्यकी शांतिको देखताहै तौभी क्या सुख है? और समाधिउपरांत दृश्याकर उदय होताहै ॥ २२ ॥ हे रामजी! तिससे यह दृश्यमनको शांत विना शांत नहींहोताहै और तपकरके ध्यानकरके जपकरके शांत होवेगा कह अज्ञानीपुरुषोंकी कल्पना है ॥ २३ ॥ हे रामजी! यह आकाशज विप्रका कथानक में तुमारे प्रति कहताहूं वह कैसा है श्रवणकरनेमें भूषण है जिसकरके उत्पत्तिप्रकरणका भलीतरहसे बोध होताहै ॥ २४ ॥ हे रामजी! एक आकाशज नामा ब्राह्मण होताभया. चिरंजिवी होताभया और ध्यानमें निष्ठा करताभया. तिसके मारनेंको मृत्यु अग्निमंडलको भेद करके जाताभया परंतु तिस ब्राह्मणके मारनेको असमर्थ होताभया. तब मृत्यु अपनी असमर्थताका यमको पूंछताभया ॥ २५ ॥ तब यम मृत्युको कहताहै. हे मृत्यो! तू अकेला इस आकाशज ब्राह्मणके

मारनेंको समर्थ नहींहै जौनसा तैने मारनाहै इसके किये कर्महीं इसको मारनेहारे हैं और तैने अवश्य मारनावाले तो यत्नकरके इसके कर्मोंको ढूंड कर्मोंकी सहायताकरके तू इसको मारेंगा ॥ २६॥ तिससे उपरांत मृत्यु आकाशजविप्रके कर्म ढूंडता भया. तिसके कर्मोंको नहीं प्राप्त होताभया. तद आइकरके धर्मराजको पूंछताभया ॥ २७॥ हे धर्मराज! आकाशजविप्रके कर्म कहां स्थितहै? मृत्युका प्रश्न सुनकरके धर्मराजा चिंतनकरके वचन कहताभया ॥ २८ ॥ हे मृत्यो! आकाशजविप्रके कर्म कोई नहींहै यह आकाशजविप्रके बल अद्वितीय आकाशसे प्रकट भया है ॥ २९ ॥ तिसते जौनसा केवल आकाशसे भयाहै तो केवल निर्मल आकाशरूप है इसके सहचारी कर्मभी कोई नहींहै ॥ ३० ॥ इसके पीछेके कर्मभी नहींहै. अबभी कर्म नहीं करताहै यह क्या है कौन है? केवल ज्ञानरूपहै ॥ ३१ ॥ जौंनसी इसकी प्राणक्रिया हमसरीखेकरके लक्षित होतीहै सो केवल सत्तामात्र है इसको कर्मकी बुद्धिमात्रभी नहींहै ॥ ३२ ॥ जिसते यह केवल आकाशसे भयाहै ज्ञानस्वरूप है सत्तामात्र है तिससें पृथिवी आदिकोंते इसका संभव कहां होताहै तिससे हे मृत्यो! तूं इसके मारनेमें यत्न मतकर ॥ ३३ ॥ आकाशग्रहणकरनेको कदापि युक्त नहीं होताहै तिससें तू यत्नको त्यागकर इतना सुनकर मृत्यु विस्मयको प्राप्त भया. तब अपने स्थानको जाताभया ॥ ३४ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न. हे गुरुजी! सो आकाशजविप्र तुमने मेरे प्रति आदिदेव ब्रह्मही कह्याहै यह कैसा है? सर्वलोकको रचन करनेवाला है और स्वयंप्रकाश है और जन्मसे रहित है और एकस्वरूप है बुद्धिको प्रेरणाकरनेवाला है यह मेरी बुद्धि कहतीहै ॥ ३५ ॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन. हे रामजी! जो तुमको निश्चय भयाहै सो तैसेही है मैनें तेरे प्रति ब्रह्मही कह्याहै इसको ग्रह-

णकरनेवास्ते मृत्यु यमके साथ वाद करताभया ॥ ३६ ॥ हे रामजी! सो चैतन्यरूपता करके आकाशकी न्यांई असंग है केवल एकरूप है अंतसे आदसे मध्यसे रहित है सो ब्रह्महो अपने चित्तके वशते स्वयंप्रकाश है तोभी स्वरूपवाला देहधारी जैसा भासताहै पुरुषदेह जैसाभी भासताहै वास्तव विचारसे जैसे वंध्यास्त्रीको पुत्र नहीं होताहै तैसेही आत्माको देह नहींहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी! यह स्वयंप्रकाश आत्माका देह संकल्पमात्र है पांच भूतोंका बनिआ देह जन्मकरके रहित जो आत्मा तिसको कदाचित् नहींहोताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी! सर्वप्राणियोंके दो शरीर बनेहैं यह कैसे है? प्राणी पांच भूत जिन्हके कारण हैं तिनका एक संकल्पमात्र देह है एक पांच भूतोंका है यह आत्मा जन्मसे रहित है. इसका कारण कोई नहींहै. तिसते इसका एक संकलपमात्र शरीर है ॥ ३९ ॥ हे रामजी! यह आत्माका शरीर केवल मनका संकलपमात्र है और पृथिवीआदिकोंका नहींबनाहै तिसते यह संसार मनोमात्र है जैसा जानिआहै तैसाही है ॥ ४० ॥ हे रामजी! जन्मरहित यह आत्माके सहायकरनेवाला कर्मादिक नहींहै तिससें आत्माते संकलपमात्रते प्रकटभये विश्वकेभी कर्मादिक सहाय करनेवाला नहींहै ॥ ४१ ॥ हे रामजी! ब्रह्ममें कार्यकारणका भाव कोई नहींबनताहै जैसा परब्रह्म है तैसाही त्रैलोक्य है ॥ ४२ ॥ हे रामजी! मनुनाम करके एक मनुष्य है सो संकलपकरके ब्रह्मका स्वरूप धारण करताहै तिसके मनका संकलपमात्र जगत् है तिसते जगत् सत्यरूप भासताहै ॥ ४३ ॥ हे रामजी! जैसे अपने चित्तसंकलपसे उठिआ जो पिशाच है सो बालकको मरणपर्यंत दुःखको देताहै तैसेही यह दृश्यरूपी पिशाचिनी अपने संकलपसे बनीहै सो देखनेवालेको अंतःकरणमें दाह करतीहै ॥ ४४ ॥ हे रामजी! जैसे अंकुर बीजके अंदर रहताहै सो देशकालके स्वभावते अपने स्वरू-

पको प्रकट (प्रकाश) करतीहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी! जबलग यह दृश्य फुरणेमें विद्यमान है तबलग देखनेवालेको इसका दुःख शांत नहीं होताहै सो दुःख जब बनियाहै. तबलग जाननेवालेको अपना अद्वैतरूप नहीं भासताहै जब दृश्य मनतें शांत होजावे तब दृश्यका जानना और जाननेवालेका भाव स्थित है तोभी शांति होतीहै दृश्यका देखनेके भावकी शांतिको पंडित मोक्ष कहतेहैं ॥ ४६ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न. हे भगवन्! मनका स्वरूप कैसा है? तिसको तुम मेरेको प्रकटकरके कहो जिसकारणसें तिस मनकरके यह संपूर्ण लोकरचना विस्तार करीहै ॥ ४७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहतेहैं. हे रामजी! इस मनका रूप नाममात्रते अवर दृष्ट नहींहोताहै जैसे आकाशका रूप शून्य है और जड है तैसे मनभी रूपरहित है और शून्य है और जड है ॥ ४८ ॥ हे रामजी! मनबाहिरभी सत्यरूप नहींहै और हृदयके अंदरभी सत्यरूप नहींहै और सर्वत्र मन स्थिर है जैसे आकाश जगत्में सर्वत्र है ॥४९॥ हे रामजी! ना तो अंदर है ना तो बाहिर है मध्यमें सत्यका अथवा असत्यका फुरना जो प्रकट भयाहै तिसको तुम मनकरके जानों अवर मनका रूप नहींहै ॥ ५० ॥ हे रामजी! संकल्प करनेको तुम मन जानों सो मन संकल्पसे भिन्न नहींहै जैसे चलनेसें जल भिन्न नहींहै और स्पंदसें पवन भिन्न नहींहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी! सत्य अथवा असत्य पदार्थोंका जो फुरना है एतन्मात्रही तुम मनको जानों सोही ब्रह्मा है सोही सृष्टिकर्ता है ॥ ५२ ॥ हे रामजी! संकल्पशरीरही मन कहियाहै सोही संकल्पमात्र शरीर चिरकालतक दृढ होताहै तो पांचभौतिक बुद्धिको धारण करताहै ॥ ५३ ॥ हे रामजी! त्रैलोक्य है और हम हैं तुम हो इसप्रकारकर दृश्यको असत्यभावको प्राप्त भये संते

देखनेवाले निर्मलरूप आत्माका केवल अद्वैतभाव प्रकट होताहै॥५४ हे रामजी! पर्वतादिकोंके नामरूपसे रहित ऐसे जो निर्मलदर्पणमें जैसे संपूर्ण पर्वतादिकोंके प्रतिबिंब होतेहैं तैसे केवल अद्वितीय आत्मामें जगत्का प्रतिबिंब होताहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी! हम है तुम हो और जगत् है इत्यादि जगत्का भ्रम शांत भये संते देखनेवालेको मैं देखताहूं इसप्रकार देखनेके व्यवहारकी स्थिति नहींहोतीहै. यथायोग्य आत्माकी अद्वैतभावनाही सिद्ध होतीहै ॥ ५६ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न. हे गुरुजी! यह परमात्मा देवतोंकाभी देवता है सो कौन तपकरके और केते क्लेशकरके शिताबी समीप प्राप्त होताहै तिसको तुम मेरेको कहो ॥ ५७ ॥

श्रीवासिष्ठजीका वचन. हे रामजी! अपने पौरुषके यत्नकरके प्रकाशमान विवेककरके सो आत्मा प्राप्त होताहै तपकरके स्नानादिक कर्मोंकरके नहीं प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥ हे रामजी! राग द्वेष और मोह और क्रोध मद, ईर्षा इन्हके परित्यागविना जो कुछ तप, दान, क्लेश कराजाताहै सो अपने फलको नहींकरताहै ॥ ५९ ॥ हे रामजी! रागद्वेषादिकरके चित्तयुक्त होवे जो कोई परधनका वचनकरके और यज्ञ, दान, तप करताहै सो पुरुष यज्ञ, दान, तपके फलोंको नहींप्राप्त होताहै और जिसका धन होवे तिसको फल प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥ हे रामजी ! रागद्वेषयुक्त चित्तकरके जौंनसा व्रत, नियम, दान, यज्ञ करताहै सो दंभ कहियाहै तिसका तुच्छमात्रभी फल नहीं प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ तिसते हे रामजी! अपने पौरुषके यत्नकरके संसाररोगनिवृत्तिकेलिये उत्तम शास्त्र और सत्संगरूपी औषधको उपार्जन करै शास्त्र और सत्संग संसाररोगका नाश करतेहैं ॥ ६२ ॥ हे रामजी! सच्छास्त्र और सतसंगकरके भये विवेकोंके बलते संपूर्ण अविद्या तैसे नष्ट होतीहैं जैसे जलकी मलीन-

ता खादे चूर्णके प्रसंगकरके दूर होतीहै तैसें पुरुषोंकियां मलीनबुद्धि योगाभ्यासते शुद्ध होतीहैं ॥ ६३ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न. हे गुरुजी! आत्मज्ञानके जाननेवास्ते जौंनसा शास्त्र प्रधान है तिसको तुम मेरे प्रति कहो और जिसको जाननेसे फिर शोक नहीं करनेबने और तुम शास्त्रवेत्तापुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ ६४ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहतेहैं. हे रामजी! आत्माके जाननेवास्ते वेदांतशास्त्र साधन है तिन्ह वेदांतशास्त्रोंमें यह महारामायणशास्त्र उत्तम है और प्रधान है ॥ ६५ ॥ हे रामजी! आत्माको जाननेका उपाय जो महारामायणमें कहाहै सो और शास्त्रमेंभी है और जो इसमें नहींहै सो और शास्त्रमेंभी नहींहै इस महारामायणशास्त्रको सर्व शास्त्रज्ञानका भंडार कहतेहैं और संपूर्ण पंडितलोग इस शास्त्रको मानतेहैं ॥ ६६ ॥ हे रामजी! जो पुरुष इसको नित्य प्रति श्रवण करे तिसको उदार चमत्कार होताहै और तिसकी बुद्धि बोधकाभी परम बोधको प्राप्त होतीहै इसमें संशय कोई नहींहै ॥ ६७ ॥ हे रामजी! जिसको अपने पापके दुष्ट फल प्रकट होवें और तिसको इसमें रुचि नहींहोवे तब सो पुरुष आत्मज्ञानके वास्ते और शास्त्रको विचारण करे ॥ ६८ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न. हे गुरुजी! विदेहमुक्तके लक्षणको और जीवन्मुक्तके लक्षणको मेरे प्रति कहो जिसको श्रवणकरके और तिस प्रकारकी ज्ञानदृष्टिकरके मैंभी मुक्तिवास्ते यत्न करूं ॥ ६९ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहतेहैं. हे रामचंद्रजी! जौंनसा पुरुष जगत्के व्यवहारको करताभी है तोभी जिसको जैसा है तैसाही मनसें जगत्का व्यवहार आकाशकी न्याईं शून्य होगयाहै और जगत्भ्रम अस्त

होगयाहै सो जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७० ॥ हे रामचंद्रजी ! जौंनसा पुरुष आत्मज्ञानकी मुख्यनिष्ठाकों प्राप्त भयाहै जिसकों जाग्रतअवस्थामें सुषुप्तिअवस्थाके बरोबर जगत्का भ्रम नहींहोताहै और लोकोंको जगत्का व्यवहार करता और जैसा दृष्ट होताहै सो तिसको जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! जिसके मुखकी शोभा सुखप्राप्तिमें प्रकाश नहीं होतीहै और दुःखप्राप्तिमें मलिन नहींहोती. और जैसा प्राप्त होय तैसाही संतोषकरके स्थित भयाहै सो जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७२ ॥ जौंनसा पुरुष जाग्रतअवस्थामें सुषुप्तिअवस्था जैसा जगत्की चेष्टासें रहित भया और जिस पुरुषकों लोकव्यवहारकी जाग्रतअवस्था नहींहै और जिसकों वासनारहित आत्मबोध है सो जीवन्मुक्त होताहै ॥ ७३॥ हे रामजी ! जौंनसा रागद्वेषभयादिकोंके अनुसार वर्तमान है तोभी अंतःकरणमें आकाशकी न्याईं निर्मल है सो जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! जिसकों कर्म करतेको अथवा नहीं करतेको देहका अहंकार नहींहै और जिसकी बुद्धि फल वांछाको लिप्त नहीं होतीहै. सो जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! जिसकों मनके संकल्प विकल्पकरके त्रिलोकीकी उत्पत्तिप्रलयका ज्ञान होताहै जो आकाशकी न्याईं निर्लेप है सो जीवन्मुक्तकहियाहै ॥ ७६ ॥ हे रामजी ! जिससें लोक दुःखी न होवे और जो लोकसें दुःखी नहींहोवे और हर्ष और क्रोध और भयसे जो रहित होवे सोही जीवन्मुक्त कहियाहै ॥७७॥ हे रामजी ! जिसकी संसार कल्पना शांत भईहै और गुणवान् है तोभी निर्गुण है और चित्तयुक्त है तोभी चित्तके धर्मते संसारके चिंतनसें रहित है सोही जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! जौंनसा संपूर्ण पदार्थसमूहमें व्यवहारवाला है तोभी शुभ शीलयुक्त है और संपूर्ण पदार्थोंकी हानिवृद्धिमें संतोषकरके पूर्ण भयाहै सोही जीवन्मुक्त कहियाहै ॥ ७९ ॥ हे राम-

जी! जब जीवन्मुक्तका देह कालके वश होताहै तो जीवन्मुक्तनामको त्यागकरके मुक्त होताहै जैसे पवन स्पंदते रहताहै तो आकाशमें लीन होताहै तैसें आत्मसत्तामें स्थित होताहै तो विदेहमुक्त होताहै ॥ ८० ॥ हे रामजी ! जब मुक्त होताहै तो न उदय होताहै और न अस्त होताहै और शांत होताहै और न सत्य होताहै ना असत्य होताहै और ना दूर और समीप ना अहंपद होताहै और न त्वंपद होताहै और न कुछ नामवाला होताहै ॥ ८१ ॥ हे रामजी! विदेह मुक्त करके अपना जीवभावको नाशकरके मनकी वृत्तिका क्षय भये संतें सत्तामात्ररूप होताहै जो कहिनेमें नहींहै वही रूप परमात्माका होताहै ॥८२॥हे रामजी! तब जो सत्तामात्र शेष रहतीहै तुम तिसको सुनों जिसमें स्वप्नभी नहींहै और जिसका अंत नहींहै और मनकी स्थितिसे जडभी नहींहै ऐसी दीर्घनिद्राका जो रूप है सो विदेहमुक्तिमें शेष रहताहै ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! यह जगत्कीयां रचना अनुभव करीयां होइयां आकाशके न्याईं निर्मलरूप आत्माविषैं नहींहै जैसे स्वप्नसंकल्पके फुरणे पृथिवी अद्भुत नहींहै ॥८४॥ हे रामजी! आत्माका चिंतन करना कथन करना आपसमें तिसका बोध न करना इसप्रकारका एक आत्मा चिंतनविषैं तत्पर होताहै और तिसको पंडित ब्रह्माभ्यास जानते हैं ॥ ८५ ॥ हे रामजी! जौंनसे पुरुष विरक्त हैं सोही महात्मा हैं और भोगोंकी भावना सूक्ष्म करतेहैं तिसके अंतमें भोगोंका अभावही मानतेहैं सोही कल्याणरूप है और पृथिवीमें संसार जीतनेको समर्थ हैं ॥ ८६ ॥ हे रामजी! जौंनसे पुरुषोंको उदारता उदय भईहै और सुंदर वैराग्यरसकरके रंगको प्राप्त भयेहैं और तिससे सर्व त्याग करनेवाले हैं और जिह्नकी बुद्धि आनंदप्रवाहमें मग्न भईहै और ते पुरुष [illegible] संन्यासी कहेहैं ॥ ८७ ॥ हे रामजी! ज्ञेय वस्तु जो ब्रह्म है तिस[illegible] [illegible]क जानने को संसारके अत्यंतअभावको मानतेहैं तत्त्वविचारकी सं[illegible] [illegible]दामें शा-

त्रकी युक्तिकरके यत्न करतेहैं सो ब्रह्माभ्यासी कहेहैं ॥ ८८ ॥ हे रामजी! यह जगत है और यह हम तुम हैं और ऐसा जगत् सृष्टिके आदमें उत्पन्न नहीं भयाहै तिसतें यह अबभी दृश्य सत्य नहींहै और इसप्रकारका दृढ बोधके अभ्यासको बोधाभ्यास पंडित कहतेहैं ॥ ८९ ॥ हे रामजी! दृश्यका जो असंभव है और अभाव तिसके बोध होनेकरके रागद्वेषादिकोंके तद्भावकरनेको सूक्ष्मता करनेंको निरंतर आत्मविचार केवल करके प्रीति जो उदय होतीहै सो ब्रह्मविचारका अभ्यास कहियाहै ॥ ९० ॥ हे रामजी! दृश्यके अभावके बोधविना रागद्वेषादिकोंके जीतनेका अभ्यास जो करनाहै सो तप कहियाहै और तिससें आत्मज्ञान नहींहोताहै वह कैसा है? सो तप दृश्यपदार्थोंकी वासना फुरनेहैं और महादुःखको करताहै ॥ ९१ ॥ हे रामजी! दृश्यके फुरनेको अभावमेंही ज्ञानकी सिद्धि होतीहै और ज्ञेयवस्तु जो परमात्मा तिसको स्वरूपका उपदेशभी होताहै और तिसके अभ्यासमें निर्वाणपदभी प्राप्त होताहै और इसप्रकारके बोधका अभ्यास होवे तो परमानंदका उदय होताहै ॥ ९२ ॥ हे रामजी! यह संसाररूपी महारात्री है इसमें मोक्षरूपी महानिद्रा उदय भईहै सो निरंतर आत्मविचारसें भया जो बोधरूपी जल तिसके सिंचनकरके संपूर्ण निवृत्त हो जातीहै और जैसे शरत्कालमें वर्षाके जलकरके वर्फ गल जातीहै यह हमारे मनमें निश्चय भयाहै ॥ ९३ ॥ हे रामजी! एक चित्तका आकाश है जिसमें संकलपका फुरना होताहै और एक चिदाकाश है जिसमें दृश्यपदार्थका फुरना भासताहै और एक स्वरूपकरके आकाश है और जिसमें जगत् वर्त्तमान है इन्ह तीनोंको तुम एकही जानों कितें भावनाका त्याग करनेते ॥ ९४ ॥ हे रामजी! यह संकलपरूपी चित्त शरीरकों सर्वत्र प्राप्त भयेको जानों जैसी इसकों संवेदनकी इच्छा होतीहै और तैसीही संवेदना उदय होतीहै ॥ ९५ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न. हे गुरुजी! तुम जो कहा सूक्ष्म चित्तही सर्व सर्वजगत्के सृष्टि करनेको शक्तिवाला है सोही स्थूल जैसा बनकरके स्थूलदेहके आधीन होताहै और सर्वदेहोंविषें तत्त्वको जानताहै और सर्वत्र व्याप्त है और स्वतंत्र है. हे गुरुजी ! उसमें मेरे दो प्रश्न हैं ऐसा चित्त हम जैसोंकाभी होताहै अथवा नहींहोताहै और जो ऐसा चित्त हमारा होताहै तो एक एक चित्त प्रति अनेकप्रकारकी सृष्टिका भेद होवेगा जैसा जैसा चित्त तैसी तैसी सृष्टि सबोंको सत्यही भासे और जो ऐसा चित्त हम लोकोंका नहींहोताहै तो चित्तभी असत्यरूप है और सृष्टिभी असत्यरूप है तो दोनों एक जैसे सबको हैं तो ज्ञान भये संते चित्तका नाश होताहै और तब जगतभी नाशको प्राप्त होजावेगा ॥ ९६ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहतेहैं. हे रामजी ! किसी चैतन्यके क्षणमात्र संकल्पका लय भये संते लीन होतेहैं और चैतन्यके संकल्पके उदयसे कल्पमात्र रहतेहैं और संकल्पलय भये संते कल्पके अंतमें लीन होतेहैं और कल्प किसको कहतेहैं ? सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग, कलियुग यह चारों हजार होजावे तो एक कल्प होताहै और यह ईश्वरका संकल्प है अब जीव संकल्पकी वार्ता कहतेहैं ॥ ९७ हे रामजी! मरणसे आद मूर्छा सब जीवोंने अनुभव करदियाहै और सोही जीवोंके महाप्रलयकी रात्रिको तुम जानों ॥ ९८ ॥ मरणसमयमें जीवसंकल्पकी सृष्टि लय होतीहै और मरणसे उपरांत सबही जीव अपने साथ संकल्पसृष्टि लय भईको फेर भिन्न भिन्न संकलपसे अपने अपने अनुभवकी सृष्टिको भिन्न भिन्न रचना करतेहैं और जैसे भ्रमकरके जेवडीमें सर्पकी माऌाकार फुरणा होतीहै जैसे सभामें नृत्य होताहै ॥ ९९ ॥ हे रामजी! जिसकी बुद्धि ज्ञानकरके युक्त नहींहै और मूढ है और निर्मल विशाल परमपदके विचारको नहीं प्राप्त भयी ऐसे

अज्ञानीपुरुषको जगत् वज्रकी न्याईं दृढ सारवाला है और असत्य है तोभी सत्य भासताहै ॥१००॥ हे रामचंद्रजी! जैसे बालकको वेताल मरणपर्यंत दुःख देताहै तैसे मूढबुद्धिपुरुषको जगत् असत्यभी सत्य भासताहै दुःख देताहै ॥ १०१ ॥ हे रामचंद्रजी! अमृतकी भावनाकरके विषभी सदैव अमृत होताहै मित्रभावनासें शत्रुभी मित्रभावको प्राप्त होताहै ॥ १०२ ॥ हे रामजी! इन्ह पदार्थोंका स्वरूप अपनी भावनाके अनुसार होताहै और तैसेही दैवकी नियतके वश प्राप्त भया. और जगत् चिरकालका अभ्याससें सत्य भासताहै ॥ ३ ॥ हे रामजी! एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होतेहैं और जौनसा ब्रह्माका एक मूहूर्त होताहै और सो एक मनुका राज्य होताहै चार युग इक्कीस (२१) वार होवे तो एक मनुका राज्य होताहै और चौदा मनुका राज्य होवे तो ब्रह्माका एक दिन होताहै और इस प्रकारके ३० दिन ब्रह्माका १ मास होताहै और १२ मासकरके ब्रह्माका एक वर्ष होताहै और ब्रह्माजीकी आयुष्य इसप्रकारकरके एक १०० शतवर्ष प्रमाण है सो आयुष्य ब्रह्माकी विष्णुजीका १ दिन होताहै ॥ ४ ॥ इसप्रकारकी १००० वर्ष श्रीविष्णु भगवानजीकी आयुष्य और जो विष्णुभगवान्जीकी आयुष्य है वोही शिवजी महाराजका १ दिन होताहै सो शिवजी स्वामी ध्यानमें चित्त लगाय कर स्थित है और तिसको दिनरात्रिका भेदज्ञान नहींहै ॥ ५ ॥ हे रामजी! सो सदाशिव सदा ध्यानमें मगन हैं और तिसको जगत् और जगत्के भाव कोई नहींभासतेहैं और तिसके विचारमें जगत् सत्यरूप है अथवा असत्यरूप है तोभी ना लय होताहै और ना उदय होताहै और कदाचित् कहींभी सदाशिवजीको जगत्का भ्रम नहींहोताहै ॥ ६ ॥ हे रामचंद्रजी! सो शिवजी परब्रह्म है और वोह कैसा है सर्वरूप है और शांतरूप है और जन्मसे रहित है और चैतन्यताकरके पूर्ण है और जैसे पत्थर जडताकरके

पूर्ण होताहै और तिस परब्रह्मके अणु अणु प्रति अनेक सृष्टिके समूह हजारों वर्त्तमान हैं और जैसे चित्तसे अनेक भ्रांति उदय होतीहैं तिन अणुके अणु अंदर अनेक ब्रह्मांड हैं जैसे चित्तकी भ्रांतिमें अनेक भ्रांति होतीहैं ॥ ७॥ हे रामजी ! तिससें पुरुषकी वासना क्या वस्तु है और इस पुरुषको वासना बंध करतीहै और जब पुरुषको विषयभोगमें अणुमात्रभी विराग होवे तबही यह पुरुष अणुमात्र विरागतेभी सबते उच्च परमपदको प्राप्त होताहै यह वेदकी श्रुतिका प्रमाण है ॥८॥ हे रामजी ! यह पुरुष जिस जिस पदार्थसे विरक्त होताहै और तिसी तिसी पदार्थसें मुक्त होताहै और यत्न करना, रक्षा करनी, हानि, वृद्धि और हर्ष शोकसें रहित होताहै सो सर्वज्ञ पुरुष है निवृत्त होनेसें अणुमात्रभी दुःखको नहीं जानताहै ॥ ९ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न. हे ज्ञानिपुरुषोंमें श्रेष्ठ गुरुजी ! भलेप्रकार विचारते अल्पमात्र आत्मा और परमात्मा एकरूप ज्ञान भये संते विकल्परहित आत्मज्ञान भये संते ज्ञानि पुरुषोंकेभी देह किसनिमित्त करके रहित है ॥१०॥ तुम कहो जो ज्ञानिओंके देह दैव कर्मके आश्रय करके रहतेहैं सो दैव क्या वस्तु है ? अब इसमें दैव नाम क्या कहतेहैं ॥ ११ ॥

श्रीवासिष्ठजी कहतेहैं. हे रामजी ! परब्रह्मकी एक नियति नामकरके एक शक्ति है सो चैतन्यशक्तिकरके युक्त है और वह कैसी है अवश्य जो भवितव्यता है तिसकी एक सत्ता है सो अनेक कल्पादिकमें सत्तामात्ररूप है और अनेक कल्पोंमें व्याप्त है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! आदिसृष्टिमें यह नियति अनेकभावोंकी और अनेकप्रकारकी अक्षयरचनाको धारणा करतीहै इस पदार्थनें इसप्रकारकरके होनेयोग्य है और इसप्रकारकी परमात्माकी इच्छा सो नियति कहीहै ॥ १३ ॥ हे रामजी ! सो नियति महासत्ता कहीहै और महाचिति

कहीहै महाशक्ति कहीहै और महाक्रियाभी कहीहै महादृष्टि कहीहै और महाउत्पत्ति कहीहै महाफुरणाभी कहीहै और महाआत्मारूप करके स्थितहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! अवश्य भवितव्यरूप है यह ईश्वरकी इच्छा शक्ति है और रुद्रादिदेवताकी बुद्धिकरकेभी उल्लंघन करी नहीं आतीहै ॥ १५ ॥ हे रामजी ! पुरुषने ऐसी नियतिको बलवती जानकरके अपना पौरुष नहीं त्यागना यह नियति पौरुषरूपकरके सबको प्रेरण करतीहै ॥ १६ ॥ हे रामजी ! नामरूपसे रहित ईश्वरका निश्चित संकल्प नियति कहीहै सो ईश्वरका पौरुष है और यह सर्व व्यवहारोंमें वर्तमान है और पौरुषरहित पुरुषोंमें नित्यफलरूप है और पौरुषवालोंमें सफलरूप है ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ईश्वरकी नियत मानकरके और मौन धारकर पौरुषकी क्रिया त्यागकरके रहताहै उसके प्राण पवन कौन अर्थके निमित्त जातेहैं और उसके श्वास वृथा जातेहैं ॥१८॥ हे रामजी ! जो कोई दैवको मानकरके पौरुषको त्याग करताहै और खानपानादिक देहके व्यवहारकोभी त्याग देवे जो दैव देवेगा सो खावेंगे जो उस पुरुषको खानपान मिले तोभी मुखमें ग्रास देना चर्वण करके निगलना पौरुषविना नहीं होताहै ॥१९॥ हे रामजी ! जो कोई पौरुषको त्यागकरके प्राण क्रियाको रोककरके और निर्विकल्प समाधिकरके मोक्षको प्राप्त होताहै सोभी प्राण रोकनेके पौरुष विना नहीं सिद्ध होताहै ॥२०॥ हे रामजी ! जैसे चैतन्यरूप आत्माका जीवका भेद नहीं है तैसेही चित्तका जीवका भेद नहीं है और जैसे चित्तका जीवका भेद नहीहै तैसे कर्मका देहका भेद नहींहै ॥ २१ ॥ हे रामजी ! कर्मही देह है यह मांस रक्तवाला देह नहीं है और कर्मही चीत्त है चित्तही जीव है सो जीव ही ईश्वरही आत्मा है सो आत्मा सर्वरूप है सो सर्वव्यापी शिव है और यह मैनें एकवारही निश्चयकरके कहियाहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! कर्कटीराजा प्रति

मंत्रीका वचन हे कर्कटी! तेरेसरीखे लघुचित्तवाले अनेक हजार हमारे आगे पर्वतमें मच्छरकी नाईं संख्यामें नहींहै और हमारे धीरतारूपी पवनकी अंधेरीमें तृणपत्रकी नाईं उडजातेहैं ॥ २३ ॥ प्राज्ञपुरुषनें क्रोधवेगकी चंचलताको आत्मपातके द्वारको जानकरके त्यागकरके और समदृष्टिकरके शुद्धबुद्धिकरके व्यवहारवाली युक्तिकरके स्वार्थ सिद्ध करदियाहै ॥ २४ ॥ अपने पौरुषके व्यवहारकरके कार्यसिद्ध होवे भावें न होवे और नियत महाबलवान है ऐसे कहनेकाभी समय कहां है तिसते पौरुषही धारणकरने योग्य है ॥ २५ ॥ बुद्धिवान्पुरुषोंके भाव जो है सो वचनोंकरके और मुखकी चेष्टाकरके नेत्रोंकी चतुरताके द्वारोंकरके और एकरूप होयकर प्रवृत्त होतेहैं जैसे नदीजल अपने प्रवाहकरके एकत्र होतेहैं ॥ २६ ॥ तिसकारणसें मैं इन दोनोंको पूछता हो उनको संदेह क्या प्रगट भयाहै जो कोई चतुरपुरुषको प्राप्त होयकर अपना संदेह दूर करनेको नहीं पूछते है सो पुरुषोंमें नीच है ॥ २७ ॥ संपूर्णगुणोंके समूहोंका अभ्याससें उत्तम ज्ञान होताहै और तिसके जाननेवाला राजा होता है और मंत्रीभी होताहै ॥ २८ ॥ प्रभुता और समदृष्टि यह राजविद्याकरके होतेहैं और जो समदृष्टिको नहीं जानताहै सो न तो राजा है और मंत्रीभी नहींहै ॥ २९ ॥ जो वचन युक्तिकरके मधुरवाणीकरके कहीदाहै सो वचन श्रवण करनेवालेके हृदयको प्रवेश करताहै और जलविषैं तैलकीनाईं विस्तारकरके व्याप्त होताहै और युक्ति कैसी है हृदयको प्राप्त होनेवाली है और उपमाकरके और दृष्टांतकरके युक्त है वाणी कैसी है योग्यअर्थवाले पदोंकरके युक्त है ॥ ३० ॥ हे रामजी! चित्त बालक है और जगत् क्षय है अज्ञानकरके मिथ्याही देखताहै जो इसका सद्गुरु

उपदेशकरके बोध करतेहैं तो अपने निर्विकार स्वरूपको देखता-है ॥ ३१ ॥ हे रामजी! ऐसी कोई क्रिया नहीं वर और शापादिकभी दृढ भये मनको चलावनेको समर्थ होवे दृढसंस्कारके बोधको प्राप्त भया मन किसीकरकेभी अपने बोधको नहीं त्याग करताहै ॥ ३२ ॥ हे रामजी! यह मन अपने चाहे अर्थको चिरकालसें प्राप्त भयाहै और दृढताकरके उसी अर्थको धारताहै और तिसमेंही प्राप्त भयाहै इसको शरीरके भाव और अभाव बाधा करनेको नहीं समर्थ होतेहैं ॥ ३३ ॥ हे रामजी! तिसको अर्धविवेक भयाहै और निर्मल आत्मपदको नहीं प्राप्त भयाहै और भोग्यपदार्थोंका त्याग करताहै और ऐसे मनको अत्यंत संताप होताहै ॥३४॥ हे रामजी! और जिसको विवेक प्राप्त भयाहै संसारमर्यादाको त्याग करनेवाला ऐसे मनको भोग्यपदार्थ त्याग करनेंसे आनंद वृद्ध होताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी! बोधयुक्त पुरुषोंका मन ब्रह्मही है और भिन्न नहींहै जैसे समुद्रको जलरूप जाननेहारेको तरंग समुद्रके जलसे भिन्न दृष्ट नहीं होतेहैं ॥ ३६ ॥ हे रामजी! मनके संयमसे संसारका भ्रम शांत होताहै जैसे समुद्रमंथनसे अनंतर मंदरपर्वत स्थिर भये संते क्षीरसमुद्र स्थिर होताभया ॥ ३७ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको चित्तकी चिकित्सा कहतेहैं.

हे रामजी! अब हम चित्तरूप महारोगकी महाऔषध कहतेहैं वह कैसी है अपने आधीन है और सुंदर स्वादवाली है और निश्चित है ॥ ३८ ॥ हे रामजी! अपना संकल्पफुरण त्यागनेसे पौरुषयत्नकरके चित्तरूपी वेताल शीघ्र जीताजाताहै और किस उपायकरके मनके चाहे पदार्थके त्यागकरके चित्तका जय होताहै ॥३९॥ हे रामजी! जो पुरुष इष्ट वस्तुको त्यागकरके वासनारहित होवे तिसपुरुषने मन जीत्याहै जैसे हाथी चलेभये दांतको दूर करके सुखी होताहै ॥ ४० ॥ हे

रामजी! आत्मज्ञानका यत्न करके चित्तरूपी बालककी रक्षा करदीहै और असत्यवस्तुसें फिरायकरके सत्यवस्तुमें युक्त कियाजाताहै और बोधन कियाजाताहै ॥४१॥ हे रामजी! शास्त्रकरके और सतसंगकरके धीर भयाहै ऐसा मनकरके चिंतासे रहित भयाहै चिंताकरके तपेहुए अपने मनको तुम छेदन करो और जैसे शीतललोहेकरके तपा लोहा छेदिया जाताहै ॥४२॥ हे रामजी! जैसे बालक यत्न विनाही इहां उहां फिरायाजाताहै तैसे चित्तभी अशुभसें फिरायकरके शुभमें युक्त किया जाताहै और इसमें क्या काठिनता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी! जौंनसा सत्कर्ममें लगाहै वह सत्कर्म कैसा है अंतमें शुभ फल देनेवाला ऐसे मनको चैतन्यविचारमें युक्त करे ॥ ४४ ॥ हे रामजी! इष्टवस्तुका त्याग अपने अधीन है और एकांतकरके हित करनेवाला है जिसमें जो कठिनताको प्राप्त भयाहै सो पुरुषोंमें कीट है और तिसको धिक्कार है ॥ ४५ ॥ हे रामजी! अशुभ वस्तुकों शुभकरके भाव न करें और आत्मविचारकरके चित्त यत्नकरके जीतीदाहै जैसे बालक यत्न विनाही वश करताहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी! अपने पौरुषके यत्नकरके चित्त शितावी जीताजाताहै और चित्तरहित पुरुषने परब्रह्मविषैं यत्नविनाही स्थिति प्राप्त होतीहै ॥ ४७ ॥ हे रामजी! अपने पौरुषकरके साधन करने योग्य ऐसी इष्टवस्तुका त्यागकरके मनका शम करनेविना शुभगति नहीं होतीहै ॥ ४८ ॥ हे रामजी! आत्मविचार करके साध्य है और ऐसे मनके मारणे करके निर्विघ्न अखंड आनंदको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ हे रामजी! दैवगतिकों त्यागकरके कैसी है वह दैवगति मूढपूरुषोंके ज्ञानमें दृढ भईहै और तिसको त्यागकरके पौरुष और ज्ञानकरके चित्तकों चंचलतासे रहित करना ॥ ५० ॥ हे रामजी! अपने अधीन और सुखसे साधने योग्य ऐसें अपने

चित्तका जीतनेको जो पुरुष समर्थ नहीं होतेहैं सो पुरुषरूपी शृगाल हैं तिन्होंको धिक्कार है ॥ ५१ ॥ हे रामजी! जो कोई उत्तमपदवीकों प्राप्त होने चाहताहै तो चित्तको चैतन्यभावनाकों प्राप्तकरके तद चित्तसेंभी परे परमपदमें स्थिर होताहै ॥ ५२ ॥ हे रामजी! मुमुक्षुपुरुष आत्मभावनाकरके युक्त होवे और उत्तमबुद्धिकरके युक्त होवे और ग्रसागयाहै चित्त जिसका ऐसे आत्माके भावको यत्नकरके धारण करे ॥ ५३ ॥ हे रामजी! अपने परमउत्तम पौरुषको आश्रयकरके चित्तको चित्त बनेते रहितकरके महापदवीको प्राप्त होवे और जहां जायकरके शोच करने नहीं बनताहै ॥ ५४ ॥ हे रामजी! चित्तके वेगको जीतना कल्याणका मूल है तिससें मनका जीतना सिद्ध होताहै और मनके जीतनेसें त्रैलोक्यका जीतना तृणसमान है ॥ ५५ ॥ हे रामजी! जिसमें शास्त्रका घात नहीं होताहै और ऐसा मनका स्वभाव बदलनेमें क्या कायरता है ॥ ५६ ॥ हे रामजी! जौंनसे पुरुष अपने मनके संकल्पको फिरावनेमें समर्थ नहीं होतेहैं सो पुरुष संसारके व्यवहारमें कैसे प्रवृत्त होवेंगे ॥ ५७ ॥ हे रामजी! मैं पुरुष हों और मैं मृत भयाहूं और मैं जन्मिया हूं और मैं जीवताहूं यह कुदृष्टि भासतीहै और किससें मनकी चंचलतासें ॥ ५८ ॥ हे रामजी! यह मन अपने फुरणेकरके इहांसे और लोकको जाताहै और तहां और रूपके फुरणेको करताहै तिससें मनके फुरणेका त्याग करनेसें मोक्ष होताहै और इसकारणसें मनका भय कहांते है ॥ ५९ ॥ हे रामजी! नातो कोई मृत होताहै और न कोई कहीं जन्म लेताहै और आपही अपने मरणेको जानताहै और परलोककोंभी आपही जाताहै और मनका क्या रूप है ॥ ६० ॥ हे रामजी! यह लोकमें इस देहमें और परलोकमें दूसरे देहमें रहताहै मोक्षपर्यंत चिंताको

वारताहै और इसका और रूप नहींहै ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! भ्राता मृतभये संते चाकरआदि संबंधी मृत झूठा शोक क्लेश होताहै सो कैसे होताहै चित्त अपना चैतन्यता व्यवहारते फिर गयाहै यही शोक मूल है यह हमारी बुद्धि निश्चित भईहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! चित्तका उपशम भयेविना संसारभ्रम शांत नहीं होताहै वह चित्तका उपशम कैसा है पथ्यरूप है और शुद्ध है और तिरछाभी ऊंचाभी नीचाभी वारंवार विचारण कियाहै तिसते चित्तका उपशम जबलग नहीं भया और तबलग विश्रांति नहीं होतीहै ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी जो आकाश है तिसको चैतन्यरूपी चक्रकी धाराकरके विशालभये संते मनको तुम मारो नहीं तो तेरेको संसाररूपी व्याधि पीडा करतीहै ॥६४॥ हे रामजी ! जो तेरे मनकी प्रियवासनाको दुःखरूप जानेआ होवे तो चित्तके सर्व अंग कटेगयेहै यह हमारी बुद्धि निश्चित भईहै ॥६५॥ हे रामजी ! यह पुरुष है यह हम हैं और यह वस्तु हमारी है और मनका यही रूप है और इस भावनाका त्यागमात्रकरके मनरूपी तृण विचाररूप दातृकरके मूलसें छिन्न होताहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! जैसे शरदऋतुमें छिन्नभया बादलोंका मंडल पवनकी अंधेरीकरके छिन्नभिन्न होताहै और तैसेही विचारकरके मनभी छिन्नभिन्न होताहै ॥६७॥ हे रामजी ! जहां शस्त्र होवे और जहां अग्नि होवे तहां भय होताहै यह मनका संकल्प त्याग अपने अधीन है इस भये संते कोई भय नहींहै ॥६८॥ हे रामजी ! यह भला है और यह भला नहींहै इसप्रकारकरके जैसे बालकको शिक्षा करतेहैं तैसेही मनरूपी बालकको विचारकरके शुभमार्गमें प्रवृत्त करै ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी सिंह है और संसारवासना इसकी गर्जना है और जो विचाररूपी शस्त्रकरके इसको जीतलेतेहैं सो निर्वाणपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ७० ॥ हे रामजी ! यह मनकी कल्पनासें संसार कियां आपदां

प्रकट होतियांहैं वह कैसीहैं भयानक हैं और भ्रमके करनेवाली हैं जैसे निर्जल मारवाडदेशमें रेतीके चमकनेंसे मृगोंको जलकी भ्रांति- करके तृष्णा होतीहै ॥७१॥ हे रामजी ! भावें प्रलय करनेवाले पवन चले और भावें द्वादशसूर्य इकट्ठे होयकरके तपें भावें सातों समुद्र सबही एकरूप होकर चलें तोभी जिसका मन लय भयाहै तिसकी हा- नि नहीं होतीहै ॥७२॥ हे रामजी ! मनरूपी बीजसे संसारके सुखदुः- ख शुभअशुभ अंकुर होतेहैं सप्तलोकरूपी नये दलभी प्रकट होतेहैं ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! क्षीण भया मन उत्तमआनंदको देताहै जैसे अं- गारको चाहते पुरुषको दग्धभया काष्ठ अक्षयअंगारेंको देताहै॥७४॥ हे रामजी ! जिसका चित्त आत्मविचारकरके नष्ट भयाहै तिसके सं- कल्पमें कोटी ब्रह्मलोकभी तुच्छ हैं सो किससें जिससे आत्मसत्ताके अणुमात्रमें यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड कोटी प्रत्यक्ष दृष्ट होतीहै ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! यह मन कैसा है केवल संकल्पउदयकरके अनेक अनर्थको करताहै और संकल्पमात्रकरके अपने अर्थको सिद्ध करताहै और ऐसे मनको संतोषमात्रसें जीतकरके विचारकरके त्रैलोक्य जयको सिद्ध करताहै ॥ ७६ ॥ हे रामजी ! समता कैसी है परमपवित्र है औ- र आत्मवेत्ता पुरुषोंनेभी मानीहै और तिसकरके मनकी शांति हो- तीहै और संसारकी रचना संकल्पसहित नाश भये संते जो सत चित्त आनंद परमात्मा शेष रहताहै सो तुमको सिद्ध होवे ॥ ७७ ॥

इति चित्तचिकित्सा.

हे रामजी ! तुम्हारा वासनारहित मनही वासनासहित मनको जी- तनेको समर्थ है और जैसे राजाविना राजाको जीतनेको कोई समर्थ नहीं होताहै ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! यह जीवोंके समूह संसाररूप समु- द्रके प्रवाहमें मग्न तृष्णारूपी ग्राहने पकडेहैं और संकल्प विकल्परूप जलके चक्र फेरमें मग्न भयेहैं इन्ह जीवोंको दूर पार पहुँचनेको अपना

शांत भया मनही बेडी बनाहै ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! शांत भया मनरूपी शस्त्रकरके दुष्टमनके पाशबंधनको छेद करके जो अपनेको नहीं मुक्त करे सो और किसीकरकेभी मुक्त नहीं होताहै ॥ ८० ॥ हे रामजी ! जिन्हका मन चैतन्यात्मस्वभावकों लंघ गयाहै और अपनी इच्छाके संकल्पोंमें दौडताहै फिर तिस चित्तकरके आत्मा मलीन होताहै सो मन जीतने योग्य है ॥ ८१ ॥ हे रामजी ! यह मन जो है सो मैं ब्रह्म नहीं इस संकल्पकरके दृढकर बद्ध होताहै और सर्व जगत् ब्रह्म है इस दृढसंकल्पसें मुक्त होताहै ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! संकल्पही परमबंधन है संकल्प त्यागही मुक्ति है और तिससे संकल्पको अंतःकरणमें जीतकरके जो तुह्मारी इच्छा होवे सो तुम करो ॥८३॥ हे रामजी ! तुम मूढ मत बनो ज्ञानी बनों और संसारवासनाको दूर करो और आत्माको आत्मभावनाकरके जानो और मूढोंकी नाईं क्यों रोदन करतेहो ! ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! यह हमको बडा खेद है और बडा आश्चर्य है जो सत्यवस्तु ब्रह्म है सो विस्मरण भयाहै और जो असत्य अविद्याबंधन है सो जीवोंकी स्मृतिमें आय प्राप्त भयाहै ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! जो राजा अनीतियुक्त होवे तिसके राज्यमें स्थितभई प्रजा जिस जिस दुःखी और दशाको उह प्राप्त होतीहै सो सो दुःखरूपी दशा पापकर्म करनेवाले चंडालकोभी योग्य नहीहै ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! तुम राज्यव्यवहारमें वर्तमान भये हो तो भोगपदार्थोंमें तुह्मारी प्रीति मत होवे जैसे फटिक सबके प्रतिबिंबको धारण कर्ताहै और आप अपने स्वभावकरके निर्मल होताहै ॥ ८७ ॥ हे रामजी ! श्रेष्ठगुणोंकेही विलास जाननेतें वर्धीहै और सदैव सुशील और ऐसी उत्तमबुद्धिकरके असंग होयकर संसारकार्य करेगा और आत्मविचारमें तत्पर होवैगा और तब तेरी उपमा किसीकरके नहीं होवैगा ॥ ॥ ८८ ॥ हे रामजी ! ऐसे उत्तम विवेकवाले पुरुषमें देहाभिमान लग

जाताहै और निर्मल शुद्ध सतोगुणवाली वृत्ति करके आत्मस्वरूपकी समाधिमें स्थित भये और पुरुषमें योगकी सप्तभूमिका चित्तको शुद्ध करतींहैं और शिवरूपमें प्राप्त करतींहैं ॥ ८९ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति—हेभगवन्! योगकी सिद्धि करनेवाली सप्त भूमिका कैसी हैं और तिन्हका स्वरूपकरके मेरे प्रति कहो क्योंकि तुम आप तत्त्वज्ञानीमें श्रेष्ठ हो ॥९०॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहतेहैं.—हेरामचंद्रजी! अज्ञानकी सप्त भूमिका हैं और तैसेही ज्ञानकीभी सप्त भूमिका इन्हमें और भूमिका असंख्य हैं सो इन्ह विषैंही अंतर्भूत है ॥ ९१ ॥ हे रामजी! स्वभावकरके कर्मकी प्रवृत्तिकर्म करनेमें पुरुषार्थ होना और भोगवासनाकी दृढताकरके भोगके आनंदमें आसक्त होना यह अज्ञानभूमिकाका लक्षण है और स्वरूपभी है यही अज्ञानका मूल है ॥ ९२ ॥ हे रामजी! नित्य अनित्य वस्तुका विवेक और यह लोकके और परलोकके भोगोंसे वैराग्य और शम, दम, श्रद्धा, क्षमा, समाधान और मुक्त होनेकी इच्छा यह चार साधनयुक्त श्रवणमननमें यत्न और मुक्त होनेकी इच्छाकी दृढता और अखंडानंदमें प्रीति और सबका आधार ब्रह्मको सबसें अधिक मानना यह सब आत्मरूपकी प्राप्तिके कारण है और आत्मसत्ताका लाभ यह ज्ञानभूमिकाका लक्षण है और स्वरूपभी है यही मूलभी है इन्हलक्षणोंकरके और कारणोंकरके ज्ञानकी भूमिका और अज्ञानभूमिका बद्धमूल हैं और संसारदुःखकों और संसारमुक्ति ब्रह्मानंदकी प्राप्तिरूपी फलको देतींहैं और सप्त अज्ञानभूमिका नीचे नीचे प्राप्त करतींहैं सो रजोगुण और तमोगुण करके युक्त हैं और दुःखकरके पूर्ण हैं और जन्ममरणनरकको देनेवाली हैं और ज्ञानभूमिका सप्त ऊपर ऊपर लोकमें प्राप्त करतीहैं. सतोगुणकरके युक्त हैं ज्ञान वैराग्य प्रधान हैं और क्रमकरके जीवन्मुक्तिको विदेहमुक्तिकों

देतोहैं ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! प्रथम अज्ञानकी सप्त प्रकार भूमिकाको तुम सुनो इससे उपरांत ज्ञानकी सप्त भूमिकाको श्रवण करोगे ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! आत्मस्वरूपमें स्थिति और देहाभिमानका त्याग यह ज्ञान भूमिकाका संक्षेप लक्षण है और आत्मस्वरूपका विस्मरण और देहाभिमानकी दृढता यह अज्ञानभूमिका संक्षेप लक्षण है ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! शुद्धसत्तामात्र आत्मज्ञानसे और आत्मस्वरूपसे जौनसे पुरुष नहीं भूलतेहैं तिनके रागद्वेषादिक अज्ञानके लक्षण कदाचित् भी प्रसंग नहीं करतेहैं ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! अपने आत्मस्वरूपका भूलना और चित्तका चितवनेमें मगन होना इससें परे अज्ञानका मोह न भयाहै ना होनाहै ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! एक अर्थको त्यागकर और दूसरे अर्थको चित्तके यानेमें मध्यमें जौनसी स्थिति हैं सो ना तो जाग्रत हैं और ना निद्रा हैं सो स्वरूपकी स्थिति कहीहैं ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! अहंकार अंश क्षीण भये संते चित्त शांत भये संते और द्वैतभाव लय होतसंते जडतारहित जो स्थिति है सो आत्मस्वरूप कहतेहैं ॥ ९९ ॥ हे रामजी ! तिस आत्मस्वरूपमें अज्ञान आरोपण कियाहै और तिसकी भूमिका तुम सुनों १ एक बीज जाग्रत है २ एक जाग्रत है ३ एक महाजाग्रत है ४ एक जाग्रत स्वप्न है ५ एक स्वप्नजाग्रत है ६ एक सुषुप्ति है ७ ॥ १०० ॥ हे रामजी ! सब मिलकरके अनेकप्रकार होतीहै अब इनके लक्षण तुम श्रवण करो यह सप्त प्रकारका मोह है वारंवार आपसमें नित्य संबंधकरके अनेक रूप होताहै ॥ १ ॥ हे रामजी ! प्रथम सृष्टिके आदिमें अथवा जाग्रतअवस्थाके आदिमें चैतन्यके आभासयुक्त प्राण धारणक्रियाकी उपाधि करके अज्ञानका जो फुरणा है जिसकरके आगे प्राप्त होनेके समयमें यह आत्मा जीवादि नामरूप अर्थोंका पात्र होताहै और बीजरूपकरके जाग्रतअवस्था जिसमें स्थित है सो बीज जाग्रत कहियाहै ॥ २ ॥ हे रामजी !

सो बीजरूप जाग्रत हो अज्ञानसृष्टिमें वृक्षकी नाईं प्रत्यक्ष देहरूप बनिआ तो यह देहमें हो यह भोग मेरे हैं सो जाग्रत कहियाहै ॥ ३ ॥ हे रामजी! यह मैं हूं और यह वस्तु मेरी है इसप्रकारका जन्मजन्मांतरके अभ्याससें दृढ प्रतीत भया प्रत्यक्ष भासताहै और व्यवहार करनेमें सिद्ध भया जो अज्ञान है सो महाजाग्रत कहियाहै ॥ ४ ॥ हे रामजी! जाग्रतअवस्थाका संकल्प संस्कार अंतःकरणमें दृढ भयाहै अथवा नहीं दृढ भयाहै और ऐसा मनोरथका फुरणा है और जाग्रतमें स्वप्न जैसा वर्तमान भया जो अज्ञान है सो मैं जाग्रत स्वप्न कहियाहै ॥ ५ ॥ हे रामजी! जो जाग्रत स्वप्न अनेक भेदोंका है जैसा एक चंद्रमामें दो चंद्रमाकी भ्रांति और शुक्तिमें रजतकी भ्रांति और जेवडीमें सर्पकी भ्रांति रेतीकी चमकमें जलकी भ्रांति अज्ञानसें होतीहै और अभ्याससें जाग्रतअवस्थाके भावको प्राप्त होतीहै सो जाग्रतस्वप्नका रूप है ॥ ६ ॥ हे रामजी! निद्रा प्राप्त भई संते जो कुछ जाग्रतमें देखिया है अनुभव कियाहै और निद्राके अंतमें ऐसा प्रतीत होताहै मैंने क्षणमात्रमें गज, तुरंग, राज्य, धन, संपदा देखीहैं सो सत्य नहींहै मिथ्याही है ऐसा जो निश्चय है सो सुपना कहियाहै सो सुप्ना कैसे होताहै महाजाग्रतका अज्ञान अंतःकरणमें वासनारूप दृढ होताहै और निद्रासमयमें दृश्य होताहै और चिरकाल देखनेमें नहीं स्थित होताहै और विशालरूपकरके दृश्य नहींहोता है ॥ ७ ॥ हे रामजी! सो स्वप्नहीं प्रबल अपने संस्कार करके अंतःकरणमें आरूढ होताहै और जाग्रतअवस्थाके समान प्रत्यक्ष होताहै महाजाग्रत जैसा दृढ होताहै देहपात भये संते और नहीं भये संतेभी चिरकाल वर्तमान होताहै तो स्वप्न जाग्रत कहीदाहै और जैसे राजा हरिश्चंद्रको १२वर्षतक चंडालभावका स्वप्न भयाहै और जैसे जडभरतको हरिणजन्मका स्वप्न भयाहै ॥ ८ ॥ हे रामजी! पहिलीआं षट् अज्ञानभू-

मिका कर्मफलके भोगकरके और त्यागकरके केवल अज्ञानबलतें जीवकी कर्म और ज्ञानसे रहित जडरूप जो स्थित है सो सुषुप्तिभूमिका कहीहै ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! तिस अवस्थामें जितने तृण, काष्ठ, पर्वत, पाषाणादिक पदार्थ हैं सो परमाणुरूप करके स्थित होतेहैं ॥ १० ॥ हे रामजी ! पहिली षट् अज्ञानभूमिका अज्ञानकरके किये पाप पुण्य कर्मका संस्कार करके होतेहैं और जब संपूर्ण कर्मफल भोगे जातेहैं और आगे कर्म नहीं होतेहैं और ज्ञानभी नहीं होताहै तो जीव केवल अज्ञानमें स्थित होताहै सो सुषुप्तिभूमिका होतीहै ॥११॥ हे रामजी! जौंनसी अज्ञानकी भूमिका स्वप्नावस्था कहीहै इसमेंभी अनेक शतप्रमाण अवस्था है फिर एक एकके जाग्रत महाजाग्रत आदि अवस्था अनेक होतीहैं और कोई आज्ञानभूमिकाकी अवस्था स्वप्न जाग्रतकी नाईं चिरकालतक संसारमें जन्ममरणादिककों करतीहै और कितनी जाग्रतस्वप्नकी तुच्छ काल अज्ञान क्लेशकों देतीहै ॥१२॥ हे रामजी ! अज्ञानभूमिका सप्त ७ प्रकार मैंने कहीहै सो कैसी है अनेक विकारों करके जगत्में आज्ञानक्लेशकरके निद्रा करने योग्य है शास्त्रविचार करके और सतसंग करके विचारसे निर्मल आत्मस्वरूप प्राप्त होय करके इन्ह सबकों तुम तरोगे इसमें संशय नहीं करना ॥ १३ ॥

इति अज्ञानभूमिकावर्णनम्.

अथ ज्ञानभूमिकासप्तप्रकारवर्णनम्.

हे रामजी ! निर्मलबुद्धे ! अब तुम ज्ञानकी सप्तभूमिका सुनो ज्ञानभूमिका ज्ञानकरके मोहरूपो कीचडमें पुरुष फेर मग्न नहीं होताहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! योगशास्त्रवेत्ता वादी लोग बहुत योगभूमिका कहतेहै सो योगभूमिका इन्ह ज्ञानभूमिकोंके समान नहींहै सो योगभूमिका ममता अहंकार युक्त है वह मुक्ति नहीं करतीहै और ममता

अहंकार अज्ञानकों दूर करनेवाली यह ज्ञानभूमिका मुक्ति देनेकों श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ हे रामजी! आत्मबोधकों ज्ञान कहतेहैं और मुक्तिकों ज्ञेय कहतेहैं सो मुक्ति ज्ञानकी सप्तभूमिकासें परे है ॥ १६ ॥ हे रामजी! आत्मबोध और मुक्ति इह्नका नाम भेद है और आत्मबोधको जीव पाइकरके फेर संसारमें नहीं प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! प्रथम ज्ञानभूमिका शुभ इच्छा है १ दूसरी विचारणा है २ तीसरी तनुमानसा है ३ और चतुर्थी सत्त्वापत्ति है ४ पंचमी असंसक्तमानसा है ५ षष्ठी पदार्थाभावनी है ६ सप्तमी तुरीया है ७ और मुक्ति इन्हसें परे है जिसमें फेर संसाररूपी शोकसमुद्रका उदय नहीं होताहै अब इन्ह ज्ञानभूमिकोंके लक्षणकों तुम श्रवण करो ॥ १८ ॥ हे रामजी! मैं मूढ होयकर क्यौं स्थित भयाहूं और शास्त्रकरके और वैराग्य धारण करके आत्माको देखो ऐसी जो इच्छा सो शुभेच्छा ज्ञानभूमिका कहीहै ॥१९॥ हे रामजी! शास्त्रविचार और सतसंगकरके वैराग्यको प्राप्त होयकरके और श्रवणमननादि विचार करना सो विचारना ज्ञानभूमिका कहीहै ॥२०॥ हे रामजी! विचारना और शुभेच्छा करके इंद्रियोंके भोगोंसे चित्तकों असंग करना और सूक्ष्मताको प्राप्त करना सो तनुमानसा ज्ञानभूमिका कहीहै ॥२१॥ हे रामजी! यह तीन भूमिकोंके अभ्याससें चित्तमें भोगपदार्थोंके वैराग्यकरके अंतःकरण शुद्ध होताहै और सत्त्वमूर्ति आत्मविषैं स्थित होतीहै सो सत्त्वापत्ति ज्ञानभूमिका कहीहै ॥ २२ ॥ हे रामचंद्रजी! यह चार भूमिकोंके अभ्याससें मनकी असंगताके बलकरके ब्रह्म-साक्षात्कारका चमत्कार जिसमें होताहै सो असंसक्त मानसा ज्ञानभूमिका कहीहै ॥ २३ ॥ हे रामचंद्रजी! इन्ह पांच भूमिकाओंके अभ्याससें आत्मारामता करके स्थित होना बाहिरके पदार्थोंकी भावना नष्ट होनी सो पदार्थभावनी ज्ञानभूमिका कहीहै ॥ २४ ॥ हे रामजी! इन्ह षट् भूमिकोंके अभ्याससें द्वैत

भेदका लय होनेसें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिका भेद लय भये संते केवल स्वरूपानंदमें स्थिति होवे सो तुर्यगा ज्ञानभूमिका कहीहै ॥ २५ ॥ हे रामजी! जौंनसे महाभाग्यवान् पुरुष हैं सो सप्तमी ज्ञानकी भूमिका तुरीयावस्थाको प्राप्त होतेहैं सो पुरुष आत्माराम हैं और महात्मा हैं सो उत्तमपदको प्राप्त भये हैं ॥ २६ ॥ हे रामजी! सो जीवन्मुक्त हैं और सुखदुःखसें रहित हैं और देहके वर्णाश्रम प्रसंगकरके कर्म करतेहैं अथवा नहीं करतेहैं उन्हको कर्म करनेका विधिनिषेध कोई नहींहै ॥ २७ ॥ हे रामजी! उन्हको पास रहनेवाले लोक कर्म करनेको बोधन करतेहैं तो आचारका कर्म सर्वप्रकारका करतेहैं जैसे सोवतेहुए पुरुषको जगायकरके मित्रादिक शुभकर्म करावतेहैं और उन्हको कर्म करनेका दृढ नहीं रहताहै और स्वरूपानंदमें मगन रहतेहैं ॥२८॥ हे रामजी! आत्मारामता करके जौंनसे स्थित है और तिन्हको जगत्की क्रिया नहीं सुखावतीहै जैसे सप्त पुरुषको सुंदर स्त्रियां अपने रूपकरके आनंद नहीं करतीहैं ॥२९॥ हे रामजी! यह ज्ञानकी सप्तभूमिका ज्ञानी पुरुषोंके गोचर होतीहै विषयभोगमें आसक्त भयेको जडबुद्धिमें और पापबुद्धि पुरुषोंके गोचर नहीं होतीहै ॥३०॥ हे रामजी! जौंनसे यह ज्ञानकी सप्तभूमिकाकों प्राप्त भये हैं सो पुरुष पशुयोनिभी है और हनुमानसे आदि और मलेंछयोनि है और धर्मव्याधसे आदि आसुरयोनि और प्रह्लाद बलीसे आदसोभी ज्ञानभूमिकाके प्रभावसें जीवन्मुक्त भयेहैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी! ज्ञानभूमिका अज्ञानबंधनको छेदन करतीहै और तिस भये संते मुक्त होतीहै जैसे मृगतृष्णाकी भ्रांति और शुक्तिमें रजतकी भ्रांति वास्तव ज्ञान भये संते दूर होतीहै ॥ ३२ ॥ हे रामजी! जौंनसे दूसरी और तीसरी और चतुर्थी ज्ञान भूमिकाकों प्राप्त भये है तिन्हका ज्ञानउदय भयाहै और अज्ञान दूर भयाहै मोहसें पार भयेहैं और प्रारब्धवशसें मनोनाश और नित्यानं-

द पदप्राप्ति विदेहमुक्तिकों नहीं प्राप्त होताहै तदभी आत्मलाभको प्राप्त भयेहैं ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! कोइ ज्ञानकी सप्त भूमिकाको प्राप्त-भयेहैं कोइ दूसरी और तीसरीको प्राप्त भये और कोइ छठी भूमिका-को प्राप्त भयेहैं और कोईं सर्वभूमिकाकों प्राप्त भयेहैं सो सबही क्रम-करके मुक्त होतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! कोइ सनकादिक जैसे एक-जन्ममेंही सप्त भूमिकाकों प्राप्त भयेहैं और जन्मांतरोंमेंभी क्रमकर-के सबही सप्त भूमिकाको प्राप्त होइकरके मुक्त होतेहैं ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! कोईं चार भूमिकामें स्थित है और कोइ सार्द्धचार भूमि-कामें स्थित है और कोईं षट् भूमिकामें है और कोईं सार्द्ध छः भूमि-कामें है ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! जौंनसे विवेकी पुरुष हैं सो यह ज्ञानभू-मिकामें विचरतेहैं और देहगेहके संताप दूर करनेंको उद्यम करतेहैं ॥ ३७ ॥ हे रामचंद्रजी ! जौंनसे ज्ञान और बलकरके इंद्रियांसहित मनको जीतलेतेंहैं सो पुरुष महाधीर हैं और ज्ञानभूमिकामें स्थित हैं सो पुरुष आत्मलाभपदवीके राजाहैं और दिग्दंतिसहित सर्वजगत्के जयको तृणके समान जानते हैं ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जौंनसे पुरुष यह ज्ञानभूमिकामें सावधान होइकरके मनसहित इंद्रियरूप शत्रुगणको जीत लेतेंहैं सो त्रैलोक्यमें वंदनीय हैं और महापुरुष जिसमें राजसूय करनेवाले चक्रवर्ती राजाकी पदवी और जगत्को सृष्टि करने-वाले ब्रह्माकी पदवी तृणसमान तुच्छ होतीहै ऐसे परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ३९ ॥

इति ज्ञानभूमिकोपदेशः.

हे रामजी ! जैसे नटलोक अन्यपृथिवीके लोकोंको मोहित करने-वास्ते औषधियोंके चूर्णको आकाशमें उडावते हैं और तिसकरके-लोकोंको आकाशमें नगरका भ्रम होताहै सो सत्य और असत्य कह-नेमें नहीं होताहै तैसे अपने अज्ञानके फुरणेमें संसार भासताहै सो अ-

सत्यरूप कहा नहीं जाताहै ॥ ४० ॥ हे रामजी! जबलग वासनास-हित अविद्या आत्मविचार करके ज्ञानभूमिकाओंके बलसें नहीं नाश भई जैसे मूलसहित पुरानी लता नष्ट नहीं भई है सो जैसे फेर अंकुर पत्रपुष्पोंको प्रकट करती है तैसे यह अविद्या अनेकप्रकारके सुख-दुःखोंके बनोंको प्रकट करतीहै तिस कारणसें जीवन्मुक्त पुरुषोंने अ-विद्याके मूल वासनाजालको क्षय करने वास्ते ज्ञानभूमिकाका अभ्या-स सदैव करना ॥ ४१ ॥ हे रामजी! जैसे शिलामें जल नहींहै और तैसेही जलमें अग्नि नहींहै और तैसे आत्मामें जगत्‌रूपी चित्र नहींहै परमात्मामें कहांते है॥४२॥हे रामजी ! यह जगत्‌रूपी चित्र दृष्ट होताही कछु सत्य नहींहै इसमें जो कुछ कियाहै सो सत्य कहाहै और ऐसा मानकरके चिंताको लय करके सुखी रहो ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! यह-चित्त अत्यंत अत्मभावसे रहित है और नीच है जो इसके अनुसार वर्त्तें सो पुरुष चंडालके अनुसार क्यों नहीं वर्त्तें जैसे चंडालकेसमान होना योग्य नहीं तैसे चित्तके अनुसार होना योग्य नहींहै ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! तुम चित्तरूपी चंडालको निरंतर दूर करके आत्मस्वरू-पमें निःशंक सुखी रहो और तुमको चित्तरूपी चंडालने कीचड जैसा जड कियाहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! यह असत्यरूप चित्तयक्षने जौंनसे मूढ पुरुष वश कियेहैं और तिन्ह जडबुद्धिपुरुषोंको चंद्रमंडलते उ-ल्कापात और वज्रपात प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ जौनसे असत्यरूप और असत्यसंकल्पवाले चित्तके अनुसार वर्तमान हैं सो पुरुष आ-काशके अनुसार वर्त्तमान हैं सो पुरुष आकाशके छेद करनेकी वार्त्ता करके कालक्षेप करतेहैं तिन्हको धिग है जैसे आकाशके खंडनकी कथा वृथा है तैसे चित्तके संकल्प अनुसार होना वृथा है ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! दृश्य पदार्थके दृष्टिके मध्यमें जौंनसा देखनेवाले साक्षि-चैतन्यका ज्ञानमात्र स्वरूप है सो दृश्यपदार्थसें दर्शन इंद्रियसें भिन्न

है सोही तेरा परमस्वरूप है ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! जब चित्त एकदेश-सें अन्यदेशको जाताहै तिन्ह दोनोंमें जौनसा जडतारहित केवल फु-रणामात्र है और सत्तामात्र है तद्रूपही तुम हो ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! न तो जाग्रतसों उदय भयाहै और न स्वप्नमें लय भयाहै और न जड है और न चैतन्य है ऐसा सत्तामात्र जो रूप है सो तुम तिसमें साव-धान हो ॥ ५० ॥ हे रामजी ! यह जीव नष्ट देहसें अपने स्थानसें चिरकालसें धारण करी देहकी वासनाको त्यागकरके अन्यदेहकी वासनाको साथ लेकर चलजाताहै और जैसे भ्रमर पुष्पोंकी वासना लेकरके और पहिले पुष्पोंको त्यागकरके और दूसरे पुष्पोंपर चला जाताहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! जो तुम ऐसा कहो जो जीव प्रातिबिंब है अपने आधारदेहके नाश भये संते नष्ट होवेगा तोभी तुमने शोक नहींकरना जौंनसा इस देहमें नष्ट होवेगा सो नये देहमें नहीं होवेगा और जो देहके साथ नष्ट होवेगा सो अगले देहमें क्यौं नष्ट होवेगा ऐ-सा जानकरके क्यौं शोक करताहै ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! तुम सत्यभावना करो आत्मा सत्य है और मोहकी भावना मत करो मोह असत्य है और उपाधिरूप है और आत्मा इच्छारूप उपाधिसें रहित है और शुद्ध सत्तामात्ररूप है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! आत्मा साक्षिरूप है और सबमें समान है विकल्परहित है और चैतन्यरूप है इच्छारहित है और शुद्ध है तिसमें अनेक जगत् दर्पणकी नाईं प्रतिबिंब होतेहै ॥ ५४ ॥ हे रामचंद्रजी ! सो आत्माकी चैतन्यसत्ता मनकी कल्पनासें परे है और संकल्पविकल्पोंसे अन्य है हे रामचंद्रजी ! सो चित्तके सु-खदुःखोंकरके कैसे नष्ट होवेगी ॥ ५५ ॥ हे रामचंद्रजी ! संकल्पलय भयेसें चित्त गलित भये संते संसारकी मोहरूपी घंटा गल जातीहै और एक अद्वितीय चैतन्यमात्र आत्मा निर्मल भासताहै वह आत्मा कैसा है जन्मसे रहित है और अंतसे रहित है कैसे जैसे शरदऋतु प्रा-

प्त भई संते और वर्षाऋतुके बादल दूर भये संते आकाश निर्मल होताहै ॥ ९६ ॥ हे रामजी! यह चित्तसहित जगत् असत्यरूप है तोभी आगे दृश्यमान होताहै पुनः लयभी होताहै और वारंवार चैतन्यसत्तामें मनद्वारसें चित्तरूप करके उदय होतेहैं और लीनभी होताहै जैसे समुद्रमें जलके तरंग वारंवार उदय होतेहैं और लीनभी होतेहैं ॥ २९७ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये उत्पत्ति-
प्रकरणं तृतीयं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार

॥ अथ स्थितिप्रकरणम् ॥

श्रीवासिष्ठ उवाच—हे रामजी! यह जगत्‌रूप चित्र जिसप्रकार स्थित है सो तुम श्रवण करो वह कैसा है कर्तारहित है और निष्प्रयोजन है और साधनक्रियाते विना है लिखनेवाले चितेरेसे विनाही है और श्वेतपीत रंग करनेंसे रहित है मूलसे विना है पत्र कागदके आधार विनाही है और आकाशमें प्रतीत भये हुये गंधर्वनगर जैसा है और देखनेवालेके दृष्टिगोचर है तोभी चिरकाल दृष्ट नहीं होताहै और मोहनिद्राकरके प्रमाण करनेवाले चैतन्यको तिरस्कार करताहै तोभी साक्षी चैतन्यको तिरस्कार नहीं करताहै और अपने लय होनेमें साक्षी चैतन्यको लय नहीं करताहै ॥ १ ॥ हे रामजी! फेर कैसे स्थित है जैसे मर्कट शीतकालमें शीतनिवारणके वास्ते काष्ठसमूह इकट्ठाकरके अंगारस्थानमें गेरिको धर लेतेहैं और फिर

मुखके पवनकरके प्रज्वलित करतेहैं उन्हसे अग्नि प्रज्वलित नहीं होताहै और शीतभी निवृत्त नहीं होताहै और प्रकाशभी नहीं होताहै तैसेही यह जगत् प्रयोजनरहित है इह लोकमें और परलोकमें किसी अर्थकोभी सिद्ध नहीं करताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! तुम सर्व अर्थोंकी कलारूपी कलंकको शांत करो और सर्व विकल्पजालरूपी शय्याका परित्याग करो चिरकालकी मोहरूपी दीर्घ निद्राको दूर करो भयसे रहित होजाओ और आत्मज्ञानकरके अंतःकरणको शोभित करो और स्वरूपानंदमें सावधान रहो ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह मनरूपी पिशाच है सो दृश्य पदार्थकी भावनाके त्यागविना और उपायोंकरके सैकडों कल्पोंकरकेभी शांत नहीं होताहै ॥ ४ ॥ हे रामजी ! मनही सर्व जगत् है और तैसे जगत्ही मन है यह दोनो आपसमें सदा मिलेहैं तिन्ह दोनोंमें मनका क्षय होनेसे जगत्का क्षय होताहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! जैसे लवणराजाको मनसे चंडालका स्मरण करनेसे चंडालता भईहै तैसे यह जगत् मनमें स्थित है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जैसे भार्गव मुनिको तप करतेको भोगकी तृष्णा मनमें रहीते भोग भोगनेका स्वामिभाव भया है और संसारीभावभी भयाहै तैसे यह जगत् मनमें स्थित है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जैसे भृगुमुनिका पुत्र बालकभावमें मृग भया तिसको देखकरके भृगु यमके ऊपर क्रोधकरके शाप देनेलगा तो यम भृगुमुनिको कहता भया हे मुने ! तुम जैसे विवेकी पुरुष लोकास्थितिको असत्य जानतेहैं और उत्पत्ति प्रलयको देखतेहैं सो मोहके निमित्तभी मोहित नहीं होतेहैं और मोहके निमित्त विना कैसे मोहित होतेहैं ॥ ८ ॥ हे भृगुजी ! तुम विवेककरके अनंत भयेहो हम देवकी आज्ञा पालनेवाले हैं और तुम विवेककरके हमारे पूज्य हो और क्रोधादिकोंकरके पूज्य नहीं हो ॥ ९ ॥ हे मुने ! तुम बुद्धिकरके रहित हो और क्रोधकरके तपका क्षय मतकरो कल्पांतसमय हमने

तुह्मारेकोभी दग्ध करना है और श्राप देकरके हमारा क्या करलोगे ॥ १० ॥ हे मुने ! मैंने अनेक संसाररचनाग्रस्त करीहै और कोटि रुद्रभी ग्रस्त कियेहैं और कोटि विष्णुभी ग्रस्त कियेहैं और हम ग्रस्त करनेको कहां समर्थ नहींहैं ॥ ११ ॥ हे मुने ! हम तुह्मारे भोक्ता है और तुम जैसे हमारे भोजन है यह सब दैवकी इच्छाका विलास है हेऋषिजी ! हमारी तुह्मारी चेष्टा क्या वस्तु है ॥ १२ ॥ हे मुने ! यह संसारका व्यवहार ईश्वरकी इच्छाकरके वर्त्तमान है और विवेकी पुरुष इसके आधीन वर्त्तमान होतेहैं तोभी महात्मा पुरुष अभिमान नहीं करतेहैं ॥ १३ ॥ हे मुने ! तुह्मारी ज्ञानदृष्टि कहां है और महत्त्व कहां है और धीरता कहां है और संसारका मार्ग सबको प्रसिद्ध है और अंधपुरुषकी नाई क्रोध और मोहके आधीन क्यों भयेहो ॥ १४ ॥ हे मुने ! यह मरणावस्था अपने कर्मके फलके परिपाकसे होतीहै इसके विचारविना सर्वज्ञ तुम मूढ पुरुषोंकी नाई मेरेको वृथा शापं देनेको इच्छा करतेहो ॥ १५ ॥ हे मुने ! संसारव्यवहारमें जैसे मूढ हैं हमको तैसेही ज्ञानी पंडित हैं और मूढ वासनाकरके बद्ध है और ज्ञानी वासना त्यागकरके मुक्त होताहै और मृत्युको सबही समान है ॥ १६ ॥ हे मुने ! ज्ञानी पुरुष सुखी पुरुषोंमें नित्य सुखी होतेहैं और दुःखी पुरुषोंमें दुःखी होतेहैं और महात्मा पुरुष, अज्ञानी पुरुष जैसे दृश्यमें वर्त्तमान दृष्ट होतेहैं पर अंतःकरणमें असंग हैं ॥ १७ ॥ हे रामजी ! भृगुमुनि यमका यह वचन सुनकर यमको प्रसन्न होकर विदा करते भये और आत्मविचारकरके पुत्रशोकको त्याग करतेभये ॥ १८ ॥ हे रामजी ! तिस कारणसे जो पुरुष ज्ञानेंद्रियोंको वासनासे मुक्त करे तो कर्मेंद्रियोंकरके और कर्मबंधसे मुक्त होताहै और कर्मेंद्रियोंकरके कर्मत्याग करके और ज्ञानेंद्रियोंकरके वासना होवे तो संसारमें बंधनको प्राप्त होताहै ताते संसार वासनामें स्थित है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! जब तुम ममता अहंकारके अंध-

कारसे रहित होओ तो सर्व वासनारहित बनो और चित्तकी इह-लोक और परलोककी भोगइच्छासे रहित बनों तब चित्तसे परे महा-पदवीको प्राप्त होओगे तुमको सबही प्रजा नमस्कार करेगी ॥ २० ॥ हे रामजी! वासनारहित चित्तही अमृत है और तिससे परे अमृत नहीं है वासनासहित चित्तही अग्नि है और तिससे परे अग्नि नहीं है जो चित्त स्त्रीकी भावनावाला होवे तो बाहिर स्त्री नहीं होवे तोभी दुःख-के अंतःकरणमें विवेक नहीं होवे तो वाणीसे कहाहुआ विवेक क्या करेगा ॥ २१ ॥ हे रामजी! जैसे स्फटिकमें प्रतिबिंब होतेहैं परंतु अं-दर प्रवेश नहीं करतेहैं और तैसे लोकव्यवहारकरके भोगकी इच्छा तुह्मारेमें दृढ होतीहै तोभी अंतःकरणमें तुमको नहीं है ॥ २२ ॥ हे रामजी! जो पुरुष विचारकरके उदय भयाहै और चित्तके स्वभावको जाने आत्माके तत्त्वको जाने तिस पुरुषके ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, शिवजी सबही शिष्य होतेहैं ॥ २३ ॥ हे रामजी! यह शरीर मिथ्या वासनाके भारसे प्रकट भयाहै आपदाका निवास है जो पुरुष इसको आत्मभा-वनाकरके नहीं देखतेहैं सोही आत्माको देखताहै ॥ २४ ॥ हे रामजी! शरीरमें देशकालके वशसे सुखदुःख प्राप्त होतेहैं और तिन्होंको जो अपनेमें नहीं देखताहै सो पुरुष आत्माको देखताहै ॥ २५ ॥ हे रामजी! पारमर्यादासे रहित देश-काल-क्रियासे रहित ऐसा आकाश जैसा मैं हूं इस प्रकारकरके सर्वत्र आत्माको व्याप्त भयेको देखताहै सोही देखताहै ॥ २६ ॥ हे रामजी! बालकके रोमका अग्रभागका जो लक्ष भाग है तिसकी कोटि अंशकीनाई मैं सूक्ष्मरूपकरके सर्वत्र व्याप्त भयाहूं इसप्रकार आत्माको जो देखताहै सोही देखताहै ॥२७॥ हे रामजी! अपनेको अथवा इतर पुरुषको भेददृष्टिविना नित्यही सर्वव्यापी चैतन्यरूप स्वयंप्रकाश आत्मरूप जो देखताहै सोही देख-ताहै ॥ २८ ॥ हे रामजी! जो पुरुष सर्वशक्तियुक्त अनंतरूप सर्व भा-

वमें स्थित ऐसे अद्वितीय आत्माको अंतःकरणमें देखताहै सोही देखताहै ॥ २९ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष आधि-व्याधि-भयकरके व्याकुल है और जन्म-मरणादि धर्मसहित ऐसे देहको जो आत्मरूप नहीं देखताहै और अपनेको देहसे भिन्न देखताहै सोही देखताहै ॥ ३० ॥ हे रामजी ! तिरछी और ऊर्ध्व और नीचे आत्माकी महिमाको व्याप्त भई देखताहै मेरे सरिखा दूसरा कोई नहींहै और ऐसे प्रकार जो आत्माको देखताहै सोही देखताहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जो कोई ऐसा देखताहै सर्व जगत् मेरेमेंही है वह कैसे जैसे सूत्रमें मालाके मनके लगे होतेहैं और चित्तमेंभी सर्व जगत् है परंतु चित्त जड है तिससे मैं चित्त नहीं हूं ऐसे जो देखताहै सोही देखताहै ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! ना तो हम हैं न तो कोई और है सर्वव्यापी सर्वत्र परब्रह्म है ऐसे प्रकार सत्य-असत्यमें जो देखताहै सोही देखताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! नामरूपकरके जो कछु त्रैलोक्य है सो मेराही अंश है जैसे समुद्रमें तरंग होताहै ऐसे जो देखताहै सोही देखताहै ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! जौनसा भोगप्रमाणका स्वभाव जानकरके भोगियां होवें सो भोग संतोषको करताहै और दुःखको नहीं देताहै जैसे चौर जानकरके चौरकी सेवा करे तो चौर मित्रभाव करताहै और शत्रुभाव नहीं करताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! जैसे मार्ग चलनेंवाले पुरुषोंको मार्गमें तीर्थयात्रा अकस्मात् प्राप्त होतीहै और तैसे ज्ञानी पुरुषको संसारके व्यवहार चिंतन किये विनाही अकस्मात् प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! जैसे नेत्रोंके आगे जो अकस्मात् दृष्ट होतेहैं, उसमें दृष्टि प्रीतिविनाही प्रवृत्त होतीहै तैसे धीर और बुद्धिवाले पुरुष जगत्के व्यवहारमें प्रीतिविनाही प्रवृत्त होतेहैं ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! उत्तम बुद्धिवाले पुरुषको, अप्राप्त पदार्थोंकी चिंता जो है और अप्राप्त पदार्थकी जो हानि है वह अपने निश्चयसे चलायमान करनेको नहीं समर्थ होतीहै

जैसे पंछियोंके परोंका प्रहार पर्वतको चलायमान नहीं करताहै ॥
॥ ३८ ॥ हे रामजी! ज्ञानी पुरुष पदार्थोंकी चित्तमें दृढभावनाको दुःखोंकी खान जानतेहैं और पदार्थोंकी दृढभावनाके त्यागको अनंत सुखोंकी खान मानतेहैं ॥ ३९ ॥ हे रामजी! संसारसमुद्र तरजानेको संतजनोंकी सेवा विना तप और तीर्थ और शास्त्र-विना समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ४० ॥ हे रामजी! जो पुरुष लोभ-मोह-क्रोधकरके अंध भयाहै सो पुरुष दिन दिनप्रति क्षीण होताहै और जो सत् पुरुष हैं वह पुरुष लोभ और मोह-क्रोधसे रहित होकरके और शास्त्रकी विधिकरके अपने धर्मकर्ममें विहार करतेहैं॥४१॥ हे रामजी! जो नीचपुरुष है तिसको अहंकाररूपी पिशाचने ग्रहण कियाहै तिसको शांत करनेवास्ते शास्त्र और मंत्रभी समर्थ नहीं होतेहैं ॥४२॥ हे रामजी! जो कोई ऐसा विचार करे कि यह जगत्की झूठी इंद्रजालकी माया है इसमें स्नेह करना और विराग करनेमें मेरेको क्या है ऐसा अंतःकरणमें विचारनेसे अहंकार उदय नहीं होताहै ॥४३॥ हे रामजी! जो ऐसा मनमें दृढ होय सो परम उत्तम अहंकार कहाहै और सर्व विश्वमें हूं और परमात्माभी मैं हूं और अविनाशी मैं हूं और मेरेसे परे और कछु नहीं है यह जो परम उत्तम अहंकार है सो मोक्षको देताहै और बंधको नहीं देताहै ॥ ४४ ॥ हे रामजी! मैं सबसे भिन्न हूं और वालकके रोमके अग्रभागके सैकडों अंशोंसे सूक्ष्म हूं ऐसी जो अहंकारकी कल्पना है सो दूसरा अहंकार कहाहै यहभी बंधनही करता है और जीवन्मुक्तोंको मुक्त करताहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी! हस्त पादादिककरके जो कर्म करताहै और तिसको मानताहै मैं करताहूं यह तीसरा लौकिक अहंकार है सो तुच्छ है त्यागनेयोग्य है और दुष्ट है और परम शत्रु है ॥४६॥ हे रामजी! पहिले शिष्यको शम-दम-आदिकरके मन इंद्रियोंसे शुद्ध करके और शुद्ध अंतःकरण जानकरके ब्रह्मज्ञा-

नका उपदेश करे. हे शिष्य ! तुम ब्रह्म हो ऐसे बोधन करे ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! जौनसा अज्ञानी है और शुद्ध अंतःकरण नहीं है तत्त्वज्ञानसे रहित है उसको जो ब्रह्मज्ञान उपदेश करताहै सो श्रवण करनेवालेको और अपने आपकोभी नरकमें गेरताहै ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! जौनसा गुरु शिष्यको परखे विना उपदेश करताहै सो गुरु और शिष्य दोनों नरकमें प्राप्त होतेहैं और जबलग पंचभूतसृष्टिप्रलय नहीं भई तबलग नरकमें दोनो होतेहैं ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! यह माया दृढ है और दूर नहीं, पीडित होतीहै ऐसी विचारणा तुमको मत होवे इस मायाको मैं कैसे मारों जैसे होवे तैसे मैं इसको मारों ऐसी दृढ विचारणा तुमको होवे ॥ ५० ॥ हे रामजी ! शुभ-अशुभकर्म करके जिसको अपना स्वरूप विदित नहीं होताहै और जन्ममरणका मनमें खेद जिसको नहीं होताहै और संसारके दुःखसुखोंमें वैराग्य नहीं होताहै मोक्षकी इच्छा जिसको नहीं होतीहै सो मनुष्य रूपकरके राक्षस है ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! यह जगत् मेरे देहाभिमानसहित असत्य है और ऐसा जानकरके तेरेको विषाद मनमें होवे कि यह मेरेही स्वरूपसहित सत्यरूप है और ऐसा विचारकरके तेरेको विषाद दूर होवे ॥५२॥ हे रामजी ! सुंदर धनमें स्त्रीपुत्रादिकमें ज्ञानी पुरुषको हर्ष-शोकका समय कहां है और जैसे रेतीकी चमकमें जलकी तृष्णा भई संते जल चाहतेको क्या आनंद होताहै ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! जिन्ह भोगोंके अधिक भये संते मूढ पुरुषको प्रीति होतीहै और विचारी पुरुषको तिन भोगोंकरके विराग होताहै ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! भोगोंके आगम भये विना वांछा जो नहीं होवे और भोगप्राप्तिमें भोगोंका स्वाभाविक भोगकरण यह पंडितोंका लक्षण है ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! भावें स्वर्गका नंदनवन शून्य होजावे तोभी महात्मापुरुष शोकमोहको नहीं करतेहैं और दैवगतिकरके यों प्राप्त होवे तिसको त्याग नहीं करतेहैं सूर्यको

नाईं मोहांधकारको दूर करतेहैं और असंग रहतेहैं ॥ ५६ ॥ हे रामजी! यह जगत्की स्थितिमें बहुत ब्रह्माके लक्ष चले गयेहैं और शिव-इंद्रोंके अनेक शत चलेगयेहैं और नारायणके अनेक सहस्र चलेगयेहैं ॥ ५७ ॥ हे रामजी! जगत्की स्थितिमें कदाचित् शिवसे सृष्टि भई है और कदाचित् ब्रह्मासे भईहै और कदाचित् विष्णुसे भईहै और कदाचित् मुनीश्वरोंसेभी भईहै ॥ ५८ ॥ हे रामजी! यह पुरुष अपनी चेष्टाकरके आपही रोदन करताहै और मर्कट दलित भये काष्ठऊपर बैठताहै उसके अंड काष्ठके अंदर पडजाताहै सो मर्कट काष्ठके मध्यके कीलेको निकाल लेताहै ओर काष्ठ मिलनेसे मर्कटके अंड काष्ठमें फसजातेहैं सो मर्कट अपने हाथकी चेष्टासे आप मृत होताहै ॥ ५९ ॥ हे रामजी! जो तुम हजार वर्ष उग्र तप करे अथवा अपने शरीर पर्वतशिखरसे गिराकरके शिलामें चूर्ण करो अथवा अग्निमें वडवाग्निमें प्रवेश करे अथवा वडे गर्तमें पडारहो अथवा तलवारकी धारा करके शरीरको तिलतिल प्रमाण छेदन करो तो तेरेको शिव उपदेश करके विष्णुभी उपदेश करे और ब्रह्माभी उपदेश करे अथवा त्रैलोक्यनाथ ईश्वरकी कृपाकरके तेरेको आप उपदेश करे और भावें आपही तुम त्रैलोक्यको सृष्टि, पालन, लयभी करे पातालमें रहो अथवा स्वर्गमें रहो अथवा पृथिवीमें रहो तोभी अपने मनके संकल्पका लयविना मोक्षका उपाय तेरेको कोई नहीं है ॥ ६० ॥ हे रामजी! यह मेरा गुरु है और मैं शिष्य हूं और यह मेरे विलास हैं ऐसा भ्रम तेरेको अंतःकरणमें मत होवे और मैं और तुम यह जगत् यह संपूर्ण एक आत्मतत्त्वही विलासको प्राप्त भयाहै ॥ ६१ ॥ हे रामजी! यह मैं हूं सो मैं हूं और यह मैं करताहूं यह मैं नहीं करताहूं और यह पदार्थ हमारा है ऐसे भाववाली दृष्टि संतोषको नहीं करतीहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी! यह देह मैं हूं ऐसी

जो स्थित है सोही असीपत्र नामा नरक है और सोही वैतरणी नदीके तरंग है और सोही कालसूत्र नाम नरक है ॥ ६३ ॥ हे रामजी! सर्व पदार्थके नाश भये संतेभी देहाभिमानकी स्थिति सर्व यत्नकरके त्यागनी जैसे उत्तम पुरुषने चांडालकी स्त्री कदाभी स्पर्श नहीं करनी ॥ ६४ ॥ हे रामजी! कर्त्ताभी कोई नहीं और मैंभी कोई नहीं सोभी कोई नहीं ऐसी प्रकट जानकरके कर्त्ता कौन है और मैं कौन हूं सो कौन है यह सब परब्रह्म है ऐसा निश्चय करके सबसे उत्तम पदमें स्थित हो जैसे निर्मल बुद्धिवाले उत्तम साधुजन स्थित होतेहैं॥६५॥हे रामजी! जो वासनाकरके बद्ध है सोई बद्ध है और जो वासनाका क्षय है सोही मोक्ष है वासनाको तुम त्यागकरके मोक्षकी आशाकोभी त्याग करो ॥६६॥ हे रामजी ! पहिले तामसी और मलीन वासनाको त्याग करो और शुद्ध मैं मैत्रीआदि वासनाको धारण करो तब मुक्ति होवेगी ॥ ६७ ॥ हे रामजी! मैत्रीवासनाकरके सर्वभूतोंमें प्रीति होतीहै सोभी मोहको करतीहै इसको व्यवहारकरके केवल चैतन्यकी वासनामें धारण करो सो चैतन्यमात्रकी वासनाको मन-बुद्धिसहित शुद्ध अहंकारकरके त्याग न करो और जिस शुद्ध अहंकारकरके सर्व वासना त्यागीहै और बाकी रहे अहंकारकोभी तुम त्यागकर देओ और अहंकारके त्यागने करके तुम शुद्ध चिन्मात्र परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होओगे ॥ ६८ ॥ हे रामजी! जो हृदयसे सर्व परित्याग करे और जो शेष चैतन्यसत्तामें रहे सोही मुक्त है और सोही परमेश्वर ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! सो पुरुष चाहे समाधि करो और चाहे कर्म करो और नहीं करो और जिसके हृदयमें सर्व वासना नहीं है सो पुरुष मुक्त भयाहै ॥ ७० ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषका मन वासनारहित भयाहै तिस पुरुषको कर्म त्यागकरके कछु पाप नहीं है और कर्म करनेंसे कछु पुण्य नहीं है और ध्यान-जप-करकेभी कछु सिद्धि नहीं है सो आत्मवि-

चारसे आपही सिद्ध भयाहै ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! शास्त्र भली तरासे विचारण कियाहै श्रवण करनेवालेको समझायाभी है और तोभी वासना त्यागकरके मनके मौन धारण विना उत्तम पदकी प्राप्ति नहींहै ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! दशदिशाभ्रमकरके जो देखना सो देखियाहै और जगत्में यथार्थ वस्तुको देखनेवाले कोई विरले जन हैं ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! सर्वत्र पंचभूत हैं छठा कछु नहीं देखियाहै और पातालमें स्वर्गमें और पृथिवीमें और कछु नहीं है ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! विचारवान् पुरुष युक्ति सुनायकरके उपदेश करे तो संसार गौके खुरस्थानके जल जैसा सुगम तराजाताहै और युक्तिको नहीं जाने तो संसार समुद्र जैसा दुस्तर होताहै ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! जगत्के कोईभी भाव तत्त्वज्ञानीको प्रीत नहीं करतेहैं अरु जैसे रत्नकलशको देखनेवालेको मृत्तिकाकलश देखनेमें प्रीति नहीं होतीहै जैसे पार्वतीके नृत्यको देखने चाहते शिवजीको मर्कट नृत्य करते प्रीति नहीं देतेहैं ॥ ७६ ॥ हे रामजी ! हम क्या करें और कहां जायें क्या ग्रहण करें और क्या त्याग करें और सर्व ब्रह्मांडसहित जगत् आत्माकरके पूर्ण है और जैसे प्रलयकालके समुद्रजलकरके ब्रह्मांड पूर्ण होताहै ॥ ७७ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणं
चतुर्थं समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार

॥ अथ उपशमप्रकरणम् ॥

राजा दशरथ श्रीवसिष्ठजीकी स्तुति करतेहैं.

हे मुने ! जिस सज्जन पुरुषरूप कल्पवृक्षसे युक्तिरूपी कल्पना प्रकट होतीहै सो सज्जन कल्पवृक्ष सदा सर्वदा वंदना करने योग्य है वह सज्जन है युक्तिरूपी कल्पलता और आत्मारूपी रत्न देखनेवास्ते मुख्य एक मशाल है और आनंदरसरूपी तैलसे प्रकाशवान् होतीहै ॥ १ ॥ हे मुने ! तुह्मारे वचन युक्तिकरके संसारबंधनके जंजीररूपी काम-क्रोधादिक सबही हमारे क्षीण होयगयेहैं और जैसे शरद्दतुमें श्वेत बादल क्षीण होजाते हैं ॥ २ ॥ हे मुने ! ऐसे आनंदको स्वर्गके मंदार वृक्षोंकी मंजरी नहीं करतीहै और अमृतरूपी समुद्रके तरंगभी ऐसा आनंदी नहीं करते और जैसे उदार बुद्धिवाले पुरुषोंकी वाणी अंतःकरणमें आनंद करतीहैं ॥ ३ ॥

राजा दशरथ श्रीरामचंद्रजीको कहतेभये.

हे रामजी! जो दिन महात्मा जनोंकी सेवा करनेमें जाताहै सोही दिन उत्तम है और उत्तम उज्ज्वल प्रकाशवाला है और जो दिन बाकीके हैं वह अंधेरेही चलेजातेहैं ॥ ४ ॥ हे रामजी ! हे कमलनेत्र ! ! जो प्रसंग वसिष्ठजी कहतेहैं और इसको तुम वसिष्ठजीको फिर पूछो वसिष्ठजी तुह्मारे ऊपर कृपा करनेमें स्थित हैं ॥ ५ ॥

रामचंद्रजी वसिष्ठजी प्रति प्रश्न करतेहैं—हे भगवन् ! तुम सर्वज्ञ हो, यह तुह्मारा प्रसाद भयाहै जिससे मैं परम उदारबुद्धि-

भयाहूं और तुह्मारा वचन जो मैंने समझा और यह तुह्मारा प्रसाद है ॥ ६ ॥ हे मुने! जो तुम उपदेश करतेहो सो तुह्मारा उपदेश मैंने हृदयमें धारण कियाहै और मैंने मोहरूपी निद्रा दूर करी है जैसे तुम कहतेहो तैसेही मैं मानता हूं और सो अन्यथा नहीं है सो तैसेही मैंने हृदयमें अर्थकरके चिंतन कियाहै ॥ ७ ॥ हे मुने! तुह्मारी आज्ञा हितको करनेवाली है और हृदयमें प्रीति करनेवाली और पवित्र है और आनंदको सिद्ध करनेवाली है और सिद्ध लोगोंनेभी शिरकरके धारण करीहै ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीप्रति कहतेहैं.

हे रामजी! हे सुंदरमूर्त्ते! यह उपशम प्रकरण उत्तम और सिद्धांत विचारकरके सुंदर है और इसको तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे रामजी! यह माया बडीविशाल है और राजस तामस वासनावाले जीवलोगोंनें धारण करदिया है जैसे सुंदरस्तंभोंकरके मंदिर धारण करदियाहै ॥ १० ॥ हे रामजी! यह माया तुह्मारे जैसे पुरुषोंनें तृणसमान त्यागीदियाहै और कैसे है तुम जैसे पुरुष अंतःकरणमें ज्ञानविचारवाले हैं और गुणोंकरके वृद्ध भयेहैं सो कैसे मायाको त्यागते हैं जैसे सर्प त्वचाको त्याग करताहै ॥ ११ ॥ हे रामजी! जो-नसे सतगुणकी वासनावाले पुरुष हैं और राजस-सात्विकवृत्तिवाले हैं सोभी जगत्‌के आदिअंतको विचारण करतेहैं ॥ १२ ॥ हे रामजी! जिन्ह पुरुषोंको शास्त्रज्ञान और सत्संग होताहै और सत्कर्म करके जिनकी पापवासना हत होतीहै और तिन पुरुषोंकी बुद्धि सारवस्तु विचार करनेको होतीहै और वह बुद्धि कैसी है मशालकी नाईं उज्ज्वल भईहै ॥ १३ ॥ हे रामजी! अपने विचारकरके आपही आत्माके अपनेमें जबलग नहीं विचारण कियाहै तबलग शास्त्रोंका तत्त्व प्राप्त नहीं होताहै ॥ १४ ॥ हे रामजी! जिसका मन आदि-अंतमें असत्य

जगतवस्तुविषें अत्यंत प्रीतिको प्राप्त होताहै और तिस मूढबुद्धि पुरुषरूपी पशुको विवेक किसकरके होनाहै ॥ १५ ॥ हे रामजी ! पहिले अपना मन शास्त्रकरके, वैराग्यकरके, सत्संगकरके पुण्यकर्ममें प्रवृत्त करना ॥ १६ ॥ हे रामजी! जब मन सुजनताको प्राप्त होवे और वैराग्यको धारण करे तब सत्पुरुष ज्ञानी पुरुषको प्रश्न करना. सेवाभी करनी ॥ १७ ॥ हे रामजी! तदनंतर सद्गुरु उपदेशकरके ध्यान, पूजा जप करनेकरके क्रमसे परमपवित्र पदकोभी प्राप्त होताहै ॥ १८॥ हे रामजी! शुद्ध विचारकरके यह पुरुष अपने निर्मल मनकरके आत्माको देखताहै और जैसे शीतल चंद्रमाकरके संपूर्ण आकाश देखियाहै ॥ १९ ॥ हे रामजी! यह लोग तबलग संसारसमुद्रमें तृणके समान वाहाजाताहै और जबलग चित्तकरके विचाररूपी तटमें विश्रांतिको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ हे रामजी! जब पुरुष विचारकरके आत्मवस्तुको जानताहै और तब संपूर्ण मानसी चिंताको दबालेताहै और जैसे निर्मल जल रेतिके नीचे करताहै ॥ २१ ॥ हे रामजी! मैं ऊर्ध्वबाहु होयकरके बोलताहूं और श्रवण कोई नहीं करताहै और जबलग मन जडताको प्राप्त भयाहै जैसे गर्तमें कछु पडाहोताहै और भोगमार्गमें मूढमन भयाहै और आत्मविचारको विसर गयाहै तबलग यह संसारका अंधकार चंद्रमाकरके अग्नि करके और बारां सूर्योंकरकेभी भेदको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ हे रामजी! तुम मनको जीतकरके रागद्वेषविना सुखसे रहित होओ और नित्यही आत्मविचारमें रहो और हानी और वृद्धिसे रहित होओ आत्मनिश्चयवाले होओ और अद्वैतभावनामें दृढ होओ और शोकसे रहित होओ चिंताज्वरसे रहित होओ ॥ २३ ॥ हे रामजी! विश्वसे परे परमपदको प्राप्त होओ और संपूर्ण प्राप्त होनेयोग्य पदार्थकरके पूर्ण होओ और पूर्ण समुद्र जैसे क्षोभसे रहित होओ और चिंताज्वरसे रहित होओ॥२४॥ हे

रामजी! तुम अनंत होओ और अपार होओ अप्रमेय होओ आत्मवेत्ता पुरुषोंमें श्रेष्ठ बनो और पर्वतकी नाईं धीर बनो और चिंताज्वरसे रहित बनो ॥ २५ ॥ हे रामजी! यथायोग्य ईश्वरकी इच्छाकरके प्राप्त भये पदार्थकरके संतोष करो और सर्वत्र वांछाका परित्याग करो और त्याग करना ग्रहण करनेंसे रहित बनो चिंताज्वरसे रहित होओ ॥ २६ ॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको राजा जनकका सिद्धोंका संवाद सुनावतेहैं.

हे रामजी! सिद्ध आकाशमें छिप करके कहतेहैं और द्रष्टा जो है अन्य पुरुष सो नेत्रादि इंद्रियद्वारा करके रूपादि विषयोंको प्रमाण करनेवाला है और तिसको रूपादि विषयोंके साथ संबंधकरके विषयोंकी प्रतीति और आनंद और निश्चय जिसको होतेहैं सो चैतन्य आत्मतत्त्वका विचारसे प्रतीत होताहै ऐसे निर्विकल्प चैतन्यको हम निरंतर उपासना करतेहैं ॥ २७ ॥ देखनेवाला पुरुष है और देखनेके साधन इंद्रियां हैं और दृश्यविषय है यह त्रिपुटीको वासनासहित त्यागकरके केवल प्रकाशरूपकरके जो प्रतीत होताहै और तिस स्वयंप्रकाश आत्माको हम निरंतर उपासना कहतेहैं ॥ ॥ २८ ॥ जिस आधारस्थानमें यह जगत् है और जिसका यह सर्व जगत् अंशरूप है कारण जिसरूपसे प्रवृत्त भयाहै और जिस प्रयोजनके वास्ते और जिस साधनकरके जिस क्रियाको करताहै और जो इसका रूप है सो संपूर्ण आत्माही है और तिसका हम निरंतर उपासना करते हैं ॥ २९ ॥ अकार है शिरस्थानरूपी आदि जिसका और हकार है अंत जिसके ऐसा सर्व शास्त्रोंमें सर्व जगत्में अक्षर वर्णमात्रा रूपकरके पंचभूतोंसे लेकर नाम-रूपकरके सर्व व्यापी होयक-

रके स्थित भयाहै और जिसको कर्मकांडवाले, उपासना कांडवाले और ज्ञानकांडवाले वेदवाक्यकरके और मंत्रशास्त्रकरके, वेदांत शास्त्रकरके नित्यप्रति उच्चारण करतेहैं सोहं मंत्रकरके अजपा मंत्र जपनेवाले अपने चाहे हुए जिस तत्त्वको जानतेहैं तिसही आत्माकी हम निरंतर उपासना करतेहैं ॥३०॥ जो पुरुष अपने हृदय मंदिरमें स्थितभये और ईश्वरको त्यागकरके और देवताको उपासनेवास्ते प्राप्त होतेहैं सो क्या करतेहैं और अपने हाथसे कौस्तुभमणिको त्यागकरके और रत्न ढूंढनेको देश देशांतरमें वृथा भ्रमण करतेहैं ॥ ३१ ॥ वैराग्यकरके हृदयमें स्थित भई सर्व वासनाको त्यागकरके जिसके स्वरूप जाननेकरके संसारका मूल जाल अविद्या छेदको प्राप्त होतीहै और तिसको हम निरंतर उपासना करतेहैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष पदार्थोंमें अत्यंत विरसता जानकरके दुर्बुद्धिकरके फेर भावनाको बांधताहै और सो मनुष्य नहींहै वह मनुष्यरूपकरके गधा है ॥ ३३ ॥ यह पुरुष इंद्रियरूपी शत्रुनको वारंवार उठतेको विवेकरूपी दंडकरके वारम्वार मारे जैसे इंद्र वज्रकरके पर्वतोंको भेदन करताहै ॥३४॥ यह मनरूपी कालकूट विष है सो खानेवालेको मारदेताहै जो इस विषको युक्त करके शोधन करे तो अमृतरूप होताहै तैसे मनभी शुद्ध होजावे तो मोक्षको प्राप्त करताहै ॥ ३५ ॥ उपशमरूपी सुख परम पवित्र है और तिसको यत्नकरके सिद्ध करे उपशमवालेका चित्त शिताबी शुद्ध होताहै और जिसका मन शुद्ध भयाहै तिसको आत्मस्वरूपके सुखमें स्थिति शीघ्र होतीहै ॥ ३६ ॥

इति सिद्धगीता.

राजा जनक ऐसे वचन श्रवण करके विलाप करताभया यह हमारा राज्य कितना प्रमाण है तुच्छ है और तिसमें हमारा जीवना क्या प्रमाण है सोभी तुच्छ है और मेरेको इसके बिना और क्या दुःख है

और मैं इसमें मोहित होय करके नष्टबुद्धि जैसा दुःखमें स्थित भया हूं ॥ ३७ ॥ मेरेको वर्ष-वर्षप्रति और मास-मासप्रति दिन-दिनप्रति क्षण-क्षणप्रति सुख जो है सो दुःखोंके पिंड प्राप्त होतेहैं और वारंवार मेरेको दुःखही प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ यह जगत्में ब्रह्माकी कोटी चली गईहै और अनेक सृष्टि चली गईहै राजे अनेक रेणुसरीखे चले गयेहैं और मेरेको इस जीवनेमें क्या धैर्य है॥३९॥ यह संसारकी रचना दुष्ट स्वप्नके सरीखी है और तिसमें देहकी स्थिति भ्रममात्र है इस देहकी जो मैं स्थिरता मानताहूं तो मेरेको धिक् धिक् है॥४०॥ इस संसारमें जडलोग दिन-दिनप्रति पापसेभी पापकी दशाको प्राप्त होतेहैं और दिन दिन क्रूर दशाको प्राप्त होतेहैं दिन-दिनप्रति खेदकी अवस्थाको प्राप्त होतेहैं ॥ ४१ ॥ यह लोग वालकावस्थामें अज्ञानकरके नष्ट होताहै और यौवनमें विषयभोगोंकरके नष्ट होताहै और वृद्धावस्थामें स्त्री-पुत्रादि चिंताकरके नष्ट होताहै और यह दुष्ट जीव किस समयमें अपना भला करेगा ॥४२॥ जिनके नेत्रोंके खोलनेमें और मिलावनेमें जगत्के उत्पत्ति, प्रलय होतेहैं और ऐसे पुरुष अनेक ब्रह्मा और विष्णुरुद्रादिक जगत्में चलेगयेहैं तो हमारी क्या गती है? ॥४३॥ इस शरीरको एकांत करके दाह करतेहैं और ऐसे रौरवादिक नरकोंकी अग्निमें लोटना चंगा है परंतु जिनमें जन्म-मरणादिक चक्र फिरतेहैं और ऐसी संसारकी स्थितिमें रहना चंगा नहींहै ॥ ४४ ॥ यह संसार-वृक्षके हजारों अंकुर हैं और हजारों इसकी शाखा हैं और हजारों पत्र हैं और हजारोंही इसमें फल हैं इसका मनही महादुःखके अंकुरका मूल है ॥ ४५ ॥ तिस मनको मैं संकल्पही रूप जानताहै इसको मैं संकल्पत्यागकरके सुकाय देताहूं जैसे यह मन फिर शेष नहीं रहे ॥ ४६ ॥ इससे पीछे मेरा मनरूपी मोती अनाविधा रहाहै और अब उपदेशकरके वेधा गयाहै अब विवेकादिक गुणरूपी सूत लगावनेको योग्य भया-

है ॥ ४७ ॥ मनरूपी तुषारकी कणका विवेकरूपी सूर्यके तापकरके चिरकालपर्यंत लग जावेगी ॥४८॥ मेरेको अनेक साधु पुरुषोंने सिद्ध पुरुषोंने बोध कराया है अब मैं परमानंदको देनेवाले आत्माको ग्रहण करताहूं ॥४९॥ यह मैं जनकराजा हूं और यह मेरा राज्य विस्तारको प्राप्त भया है और ऐसे फुरणेको अंतःकरनते दूर करके और मनरूपी शत्रुओंको मार करके हे विवेक! मैं तेरे प्रसादसे शांतिको धारताहूं तोको नमस्कार है ॥ ५० ॥ हे मन ! ऐसा यहां कछु उत्तम सबसे ऊंचा पदार्थ कोई नहीं है जिसकरके तू पूर्णताको प्राप्त होवेगा तिसते हे शठ! और हे मन! तू धीरताको धारण करके चंचलताको दूर कर॥५१॥

इति राजनवाक्यम्.

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीके प्राति कहतेहैं.

हे रामजी ! जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण है और आद–अंतको विचारण करतीहै और दीपशिखाकी नाईं प्रकाशमान है तिस पुरुषको जडताका अंधकार बाधा नहीं करताहै ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! जौनसा यत्न भोग्यपदार्थ सिद्ध करनेको करादियाहै सोही यत्न बुद्धिके बधावनेके करने योग्य हैं ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! बुद्धिकी जडता संपूर्ण दुःखोंकी अवधि है और संपूर्ण आपदाका भंडार है और संसारवृक्षोंका बीज है तिससे इसको नष्ट करें ॥ ५४ ॥ हे रामजी! यह निर्मलबुद्धि विवेकी पुरुषके हृदयरूपी भंडारमें स्थित भईहै और चिंतामाणिकी नाईं कल्पलताकी नाईं चिंतित किये उत्तम फलको देतीहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी! जो कोई परम श्रेष्ठ अत्यंत उच्च फलको चाहताहै तिसने प्रथम अपनी बुद्धि सुधारने योग्य है जैसे उत्तम फलवाली खेतीको चाहनेवाले कृशानने पहिले पृथिवी सुधारी है ॥ ५६ ॥ हे रामजी! विवेकी पुरुषको इतने गुणोंकी संपदा न चाही प्राप्त होतीहै और आशासे रहित होना, निर्भय होना, नित्य सुखोंमें प्रीति होनी और समदृ-

ष्टि होनी और ज्ञानी होना, इच्छारहित होना और क्रियासे रहित होना,सौम्यता होनी.विकल्परहित होना और धैर्य होना, सज्जनोंविषे मैत्री होनी, सबको मानना और संतुष्ट होना, कोमलचित्त होना, मधुर वचन कहना, ग्रहणत्यागसे रहित होना इतने उत्तम गुण वासनाविना स्थित होतेहैं ॥५७॥ हे रामजी! तृष्णारूपी चांडाली हृदयमें स्थित भई करके कैसी है और अमंगलरूप है इसकरके भगवान् विष्णुभी बलिको याचना करनेवास्ते वामनरूप भयाहै ॥ ५८ ॥ हे रामजी! जो तू रागसे रहित होवे पदार्थसंग्रहकी वासना रहित होवे तो तेरे चित्तकी तृष्णारूपी सत्ता गलजातीहै तो तू दुःखसे रहित उत्तम पदको प्राप्त होवेगा. तिसते हे रामजी! तुम अंतःकरणको शांतिको प्राप्त करो ॥ ५९ ॥ हे रामजी! यह अहंकारकी भावना पापयुक्त है इसको अहंकार त्यागकी भावनारूपी शस्त्रसे छेद करके आत्मतत्त्वको भावनाको धारण कियाहै कल्याणरूप संपूर्ण भूतोंकरके गाईहै गीति जिसकी इसप्रकारकी शांतिको तुम प्राप्त होवो ॥ ६० ॥ हे रामजी! हे कमलनेत्र!! वासनात्याग दो प्रकारका तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने कहाहै एक जानने योग्य है और दूसरा ध्यान करने योग्य ॥६१॥ हे रामजी! मैं पदार्थोंका नहीं, मेरे पदार्थ नहीं इस प्रकारकरके अंतःकरणमें शांतबुद्धि करके क्रियाभी करी जातीहै और अंतःकरणके निश्चयकरके जौनसा वासनात्याग करादियाहै, हे रामजी! सो ध्यान करनेयोग्य वासनात्याग कहाहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! अहंकारवाली वासनाको लीलाकरके जो त्यागकरके ध्येयवस्तुकाभी त्याग करताहै सो जीवन्मुक्त कहाहै ॥ ६३ ॥ हे रामजी! समबुद्धिकरके तत्त्वज्ञान करके वासनाका क्षय करके और ममतासे हीन होकर वासनात्याग जो किया है सो ज्ञेय वासनात्याग कहाहै ॥ ६४ ॥ हे रामजी! जौनसा वासनाको कल्पनासहित निर्मूल त्याग करके शां-

तिसको प्राप्त भयाहै ज्ञेयके त्याग करके जो युक्त भयाहै और तिसको तुम मुक्त भयेको जानो ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने सुषुप्तिकी नाईं शांतवृत्तिवाले चित्तकरके स्थिति करीहै और सो पुरुष संपूर्ण कलासहित चंद्रमाकी नाईं सर्व जीवोंकरके सेवने योग्य है सो मुक्त भयाहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! विचारवाले पुरुष के मन में चार प्रकार प्रकटरूपवाला निश्चय और होता है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! मैं माता-पिताने जन्म देने करके आपदाका शिरोमणि किया हूं और ऐसा जो निश्चय है सो एकही कहा है वह कैसा है असत्य दृष्टिवाला है और बंधन करनेवाला है ॥ ६८ ॥ मैं सर्व भावोंसे रहित हूं और बालक के रोम के अग्रभाग से भी सूक्ष्मरूप हूं ऐसा दूसरा निश्चय हुआ है सो मोक्षसिद्धि को करता है ॥ ६९ ॥ जितना यो जगत्का जाल है और जितने पदार्थ हैं सो संपूर्ण अक्षयरूप मैं हूं ऐसा तीसरा निश्चय कहा है सो मोक्षरूप है ॥७०॥ मैं जो हूँ अथवा यह संपूर्ण जगत् जो है सो सबही आकाश की नाईं शून्य है और असत्य है ऐसा जो दृढ निश्चय है सो चतुर्थ कहते हैं और यह भी मोक्षसिद्धि के निमित्त महा श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सबसे परे उत्तमपद को अवलंबन करता है सो पूर्णचंद्रमाकी नाईं शीतलरूप है और दुःख में उद्वेग भी नहीं करता है और सुखमें संतुष्ट नहीं होता है ॥ ७२॥ हे रामजी ! प्रश्न किया तो प्रसंग की वार्ता कहता है और नहीं तो तूष्णी रहता है इच्छा अनिच्छा से जो रहित भयाहै सो संसारमें पीडित नहीं होताहै ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! भाव विषय अद्वैत भावना को आश्रय कर सत्ताके अद्वैत के स्वरूप को प्राप्त हो और धर्मशास्त्र की मर्यादा के निमित्त कर्ममार्गमें यह शुभ कर्म है और यह अशुभ कर्म है यह करना और यह नहीं करना इस प्रकारकी द्वैतभावना को करो इसी से कर्म विषें अद्वैतभावना को दूर करके द्वैत-अद्वैत विचार

ष्टि होनी और ज्ञानी होना, इच्छारहित होना और क्रियासे रहित होना, सौम्यता होनी. विकल्परहित होना और धैर्य होना, सज्जनोंविषे मैत्री होनी, सबको मानना और संतुष्ट होना, कोमलचित्त होना, मधुर वचन कहना, ग्रहणत्यागसे रहित होना इतने उत्तम गुण वासनाविना स्थित होतेहैं ॥५७॥ हे रामजी! तृष्णारूपी चांडाली हृदयमें स्थित भई करके कैसी है और अमंगलरूप है इसकरके भगवान् विष्णुभी बलिको याचना करनेवास्ते वामनरूप भयाहै ॥ ५८ ॥ हे रामजी! जो तू रागसे रहित होवे पदार्थसंग्रहकी वासना रहित होवे तो तेरे चित्तकी तृष्णारूपी सत्ता गलजातीहै तो तू दुःखसे रहित उत्तम पदको प्राप्त होवेगा. तिसते हे रामजी! तुम अंतःकरणको शांतिको प्राप्त करो ॥ ५९ ॥ हे रामजी! यह अहंकारकी भावना पापयुक्त है इसको अहंकार त्यागकी भावनारूपी शस्त्रसे छेद करके आत्मतत्त्वको भावनाको धारण कियाहै कल्याणरूप संपूर्ण भूतोंकरके गाईहै गीति जिसकी इसप्रकारकी शांतिको तुम प्राप्त होवो ॥ ६० ॥ हे रामजी! हे कमलनेत्र!! वासनात्याग दो प्रकारका तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने कहाहै एक जानने योग्य है और दूसरा ध्यान करने योग्य ॥६१॥ हे रामजी! मैं पदार्थोंका नहीं, मेरे पदार्थ नहीं इस प्रकारकरके अंतःकरणमें शांतबुद्धि करके क्रियाभी करी जातीहै और अंतःकरणके निश्चयकरके जौनसा वासनात्याग करदियाहै, हे रामजी! सो ध्यान करनेयोग्य वासनात्याग कहाहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी! अहंकारवाली वासनाको लीलाकरके जो त्यागकरके ध्येयवस्तुकाभी त्याग करताहै सो जीवन्मुक्त कहाहै ॥ ६३ ॥ हे रामजी! समबुद्धिकरके तत्त्वज्ञान करके वासनाका क्षय करके और ममतासे हीन होकर वासनात्याग जो किया है सो ज्ञेय वासनात्याग कहाहै ॥ ६४ ॥ हे रामजी! जौनसा वासनाको कल्पनासहित निर्मूल त्याग करके शां-

तिसको प्राप्त भयाहै ज्ञेयके त्याग करके जो युक्त भयाहै और तिसको तुम मुक्त भयेको जानो ॥ ६५ ॥ हे रामजी! जिस पुरुषने सुषुप्तिकी नाईं शांतवृत्तिवाले चित्तकरके स्थिति करीहै और सो पुरुष संपूर्ण कलासहित चंद्रमाकी नाईं सर्व जीवोंकरके सेवने योग्य है सो मुक्त भयाहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी! विचारवाले पुरुष के मन में चार प्रकार प्रकटरूपवाला निश्चय और होता है ॥ ६७ ॥ हे रामजी! मैं माता-पिताने जन्म देने करके आपदाका शिरोमणि किया हूं और ऐसा जो निश्चय है सो एकही कहा है वह कैसा है असत्य दृष्टिवाला है और बंधन करनेवाला है ॥ ६८ ॥ मैं सर्व भावोंसे रहित हूं और बालक के रोम के अग्रभाग से भी सूक्ष्मरूप हूं ऐसा दूसरा निश्चय हुआ है सो मोक्षसिद्धि को करता है ॥ ६९ ॥ जितना यो जगत्का जाल है और जितने पदार्थ हैं सो संपूर्ण अक्षयरूप मैं हूं ऐसा तीसरा निश्चय कहा है सो मोक्षरूप है ॥७०॥ मैं जो हूँ अथवा यह संपूर्ण जगत् जो है सो सबही आकाश की नाईं शून्य है और असत्य है ऐसा जो दृढ निश्चय है सो चतुर्थ कहते हैं और यह भी मोक्षसिद्धि के निमित्त महा श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥ हे रामजी! जो पुरुष सबसे परे उत्तमपद को अवलंबन करता है सो पूर्णचंद्रमाकी नाईं शीतलरूप है और दुःख में उद्वेग भी नहीं करता है और सुखमें संतुष्ट नहीं होता है ॥ ७२॥ हे रामजी! प्रश्न किया तो प्रसंग की वार्ता कहता है और नहीं तो तूष्णी रहता है इच्छा अनिच्छा से जो रहित भयाहै सो संसारमें पीडित नहीं होताहै ॥ ७३ ॥ हे रामजी! भाव विषय अद्वैत भावना को आश्रय कर सत्ताके अद्वैत के स्वरूप को प्राप्त हो और धर्मशास्त्र की मर्यादा के निमित्त कर्ममार्गमें यह शुभ कर्म है और यह अशुभ कर्म है यह करना और यह नहीं करना इस प्रकारकी द्वैतभावना को करो इसी से कर्म विषें अद्वैतभावना को दूर करके द्वैत-अद्वैत विचार

में तत्पर रहो ॥७४॥ हे रामजी ! तुम ब्रह्म ही हो ब्रह्मवेत्ता हो अथवा परमार्थविचारसे सर्वलोक विषें देवताभाव को प्राप्त भये हो ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! यह बांधव हमारा है अथवा यह हम हैं यह हमारा शत्रु है ऐसी गिनती तुच्छबुद्धिवाले को होतीहै और उदार चित्तवाले को सर्वत्र मात्र आत्मबुद्धि होती है ॥७६॥ हे रामजी ! सो नहीं है जिसमें हम नहीं हैं सो नहीं है और जो हमारा नहीं है ऐसा निर्णय करके धीर पुरुषोंकी भेद से बुद्धि रहित होतीहै ॥ ७७ ॥ हे रामजी ! माता और पिताके मरणकरके संताप को प्राप्त भये हुये पावमानज ऋषि को पुण्यपुरुष कहता है और जौनसी मृत भई हुई माता है सोही तेरी माता नहीं है और जो मृत भया सोही पिता तेरा पिता नहीं है और तूही उन दोनोंका पुत्र नहीं है और उनके पुत्र असंख्य हैं और तेरे माता पिता अनेक सहस्र भये हैं जैसे जलप्रवाहके अनेक तरंग और अनेक तट और अनेक मार्ग होते हैं ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! नदीके तरंग की नाईं अनेक मातापिता तेरे भये हैं तिससे तैंने माता पिता और पुत्रादिक स्नेह करके शोचने योग्य नहीं हैं ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! अज्ञान करके मृगतृष्णाकी नदी विस्तारवाली भई है और सो अविद्या है शुभ अशुभ वासनारूपी तरंगयुक्त है और अपनी वासनारूपी जलकी तृष्णा अनंत फुरनेवाली भई है ॥ ८०॥ हे रामजी ! तू आत्माको भाव अभाव से रहित स्मरण कर जरामरण से रहित जान ऐसी आत्माको जान कर मूढमन मत हो ॥८१ ॥ हे रामजी ! पुण्यपुरुषने ऐसे समझाया तो पावमानज ऋषि आत्मबोध के प्रकाश को प्राप्त होता भया और जैसे प्रातसमयमें मनुष्यलोक प्रकाशयुक्त होताहै ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार पीछे तजे हुये अनेक शरीरोंकी अनेक धन और पुत्रादिकोंकी आशा और वासना होती है और उनसे क्या ग्रहण होता है त्याग किस का होताहै॥८३॥

हे रामजी ! तिस से अनंत वासना त्यागकरना ही मोक्ष का उपाय है और आकाश नामभी मला नहीं है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! चिंतन करने से चिंता बढती है और जैसे काष्ठसे अग्नि जलती है और जैसे काष्ठके विना अग्नि शांत होती है तैसे चिंतन विना चिंता शांत होतीहै ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! मन पूर्ण होनेसे जगत् अमृत करके पूर्ण होताहै और जोडा चरणों में लगा हो तो पृथ्वी सारो चर्ममय प्रतीत होतीहै ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! वासनारहित पुरुष को जगत एक कमल के बीज समान तुच्छ होता है और अनेक योजनों का मार्ग गौ के खुर के और ब्रह्माजी का दिन क्षण के बराबर होताहै ॥ ८७ ॥ हे रामजी! जैसी शीतलता आनंद वासनारहित पुरुष को होतीहै ऐसी चंद्रमा और हिमाचल की कंदरा और केलेके स्तंभ अथवा चंदन में नहीं होती ॥ ८८ ॥ हे रामजी ! पूर्णमासी का चंद्रमा क्षीर करके पूर्ण भया क्षीरसमुद्र और विष्णु का मुख भी ऐसा नहीं शोभता जैसा वासना रहित मन शोभता है ॥ ८९ ॥ हे रामजी ! जैसे बादल की रेखा पूर्ण चंद्रमा को कलंक युक्त करती है जैसे सुपेदी को सियाही की बूंद कलंक लगाती है और जैसे उत्तम पुरुष को आशा पिशाचिनि खराब करती है ॥ ९० ॥ हे रामचंद्रजी ! अथवा हे रघुवंशरूप आकाशके पूर्ण चंद्रमा हे रामजी ! राजा बलिकी नाई बुद्धि भेदकरके तुम निर्मल ज्ञान को सिद्ध करो ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! सो राजा बलीने लीला करके संपूर्ण जगत् को जीत दशकोटि वर्ष राज्य किया ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! निरंतर भोगे जो भोग हैं वह भोग कैसे हैं और त्रैलोक्य में अत्यंत उत्तम हैं तिनमें उदासीनता धारता और एक समय में आपही संसार की स्थितिको चिंतन करता भया ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! स्त्रियों को वारंवार आलिंगन करना वारंवार भोगना यह बालकों की क्रीडा है इसमें महात्मा पुरुषोंको लज्जा क्यों नहीं आती है ॥ ९४ ॥

हे रामजी! दिन होताहै और फिर रात्रि होतीहै वारंवार जगत्के कार्य प्राप्त होतेहैं और यह वारंवार ज्ञानी पुरुषको भूलनेका मूलहै॥९५॥ हे रामजी ! संसार कार्योंके समूहको वारंवार दिन प्रति दिन करने वाले लोगोंको लज्जा क्यौं नहीं आतीहै ॥ ९६ ॥ हे रामजी! पूर्वकालमें मैंने ज्ञानवान् और आत्मतत्त्वको जाननेवाला लोगोंके आद्यन्तको विचार करके देखनेवाला ऐसा पिता विरोचन पूछता है ॥९७॥ हे पिताजी! तुम महामति हो संपूर्ण सुख दुःखोंके भ्रम जिससे शांत होतेहैं ऐसे उपायको तुम कहो ॥९८॥ हे रामजी! मनका मोह कहां शांत होताहै और संपूर्ण वासना कहां शांत होतीहैं और आनंद सहित चिरकाल विश्राम कहां होताहै ॥ ९९ ॥ हे पिताजी ! जिससे तुमको आनंद निरन्तर है और यहां चिरकाल विश्रामका सुख है उस उपायके ज्ञानको तुम मुझसे कहो ॥ १०० ॥ इतना श्रवण करके स्वर्गलोक को जीतकरके कल्पवृक्ष न्याय करके अपने अंगन में लगाये कल्पवृक्षकेपास बैठ करके पिता विरोचनने कहा, हे पुत्र! एक देश है वह कैसा देश है महा विशाल है जहां हजारों त्रैलोक्य पूर्ण नहीं होतेहैं ॥ १०१ ॥ और जिसमें संपूर्ण समुद्र अनेक पर्वत और अनेक वन और अनेक तीर्थ हैं और अनेक नदियाँ अनेक सरोवर पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, पवन, सूर्य, चन्द्रमा और लोकपाल देवता असुर यह उसमें पूरे नहीं होतेहैं और एक किनारेमें स्थित है ऐसा महाविशाल है ॥२॥ हे पुत्र! एक उपदेशमें महाबली राजा है वह राजा कैसा है महातेजवाला है और सर्व कार्य करनेवाला है सर्वत्र व्याप्त है और सर्वत्र गतिवाला है सो राजा आप चुप रहताहै ॥ ३ ॥ और तिसने अपने संकल्पसे एक मंत्रीको कल्पना किया है वह कैसा है जो सर्व मंत्र करनेवाला है और जो कुछ संकल्प की घटना में नहीं हो तिस को भी जल्दकर लेताहै ॥ ४ ॥ बलीने पूछा हे पिताजी! चिंतासे और रोग-

से रहित सो देश कहां है और प्राप्त कैसे होता है और किस करके प्रकाशमान है और ऐसा मंत्री कहाँ है और ऐसा महाबली राजा कहां है हम ने लीला करके त्रैलोक्य जीता है परन्तु सो राजा हमने कैसे नहीं जीता है ॥५॥ विरोचन ने क.ा हे पुत्र! जिस देशमें मंत्री महबली है और देवता असुरों के लक्ष सेना करकेभी देखने को सामर्थ्य नहीं है उस का जीतना कहां बनता है ॥६॥ हे पुत्र! सो इंद्र और यम भी नहीं है कुबेर और देवताभी नहींहै असुर अथवा मनुष्यभी नहींहै जो तुम से जीता जावे ॥७॥ सो मंत्री अस्त्रशस्त्रों के पराक्रम करके किसी योद्धा से नहीं जीता जाता है तिस मंत्री ने संपूर्ण देवता और असुर अपने वश किये हैं ॥ ८ ॥ सो मंत्री विष्णु भी नहीं है और हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु आदि संपूर्ण दैत्य कालवश किये हैं जैसे प्रलयकाल के पवनसे सुमेरु पर्वत के कल्पवृक्ष गिराये जाते हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! सो मंत्री अपने राजा का दर्शन करके जीता जावे तो सुख करके जीता जाता है नहीं तो पर्वत से भी अचल है ॥१०॥ हे पुत्र! त्रैलोकी में जो बलवान् है तिन से भी भूल बलवान् है ऐसे मंत्री को तेरी शक्ति जीतने की होवे तो तू पराक्रमवान् होवे ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! सो मंत्री युक्ति करके ग्रहण करा जावे तो क्षणमात्र से वश होता है और युक्ति विना सर्प की नाईं दग्ध करता है ॥१२॥ हे पुत्र ! जबलग राजा को नहीं देखा तबलग जीता नहीं जाता है और जबलग मंत्री जीता नहीं गया तबलग राजा दृष्ट नहा होता ॥१३॥ हे पुत्र! पौरुष करके और यत्न करके अभ्यास करके क्रम. क्रम करके मंत्री का जय और राजा का दर्शन करके तिस देश को तू भी प्राप्त होवेगा ॥ १४ ॥ हे पुत्र! सो देश कौन है और राजा कौन है मंत्री कौन है मैं तुझे प्रकट करके सुनाता हूँ तू सावधानता करके श्रवण कर ॥१५॥ सो देश मोक्ष नामा है तिस में राजा आत्मा है वह सबसे परे है और जिस राजा ने मन मंत्री कि-

या है ॥ १६ ॥ तिस मनरूपी मंत्री के जीतने से सब अपने वश होते हैं सो मन मंत्री जीतना कठिन है और युक्ति करके जीता जाता है ॥ १७ ॥ हे पुत्र! सर्व विषयों के सर्व प्रकार की आशा जो नहीं होवे तौ यही मन जीतने की युक्ति है ॥१८॥ हे पुत्र! अभ्यास किये विना विषयों से विरक्ति नहीं होती यद्यापि देहधारी कैसा ही बलवान् होवे तौ भी चलने के उद्यम विना देशांतर में नहीं प्राप्त होता है ॥१९॥ हे पुत्र! आत्मतत्त्व देखने से विचार करके विषयों से विरक्ति हृदय में स्थित होती है जैसे कमल के मध्यमें लक्ष्मी रहती है ॥२०॥ तिस से बुद्धि का उदय कर के सुंदर विचारके आत्मा को देखे भोगों से विरक्ति करे ॥२१॥ हे पुत्र! चित्तके जीतने वास्ते चित्त के चार भाग किये दो भाग भोगोंसे और तीसरे भाग को शास्त्र विचार से और चौथा गुरुसेवा करके पूर्ण करे॥२२॥जिस समय में चित्त शास्त्र के अर्थको पावे तो दो भाग चित्त के ज्ञान वैराग्य करके पूर्ण करे दो भागों को ध्यान और गुरुपूजा करके पूर्ण करे ॥ २३ ॥ हे पुत्र! भोग त्याग करके धर्मार्थ विचार विना ब्रह्मपद में विश्रांतिसुख से नहीं होती ॥२४॥ हे पुत्र! पारुष को यत्न के आश्रय करके और प्रारब्ध दैव को दूर करके विचारवान् पुरुष भोगनको त्याग करे वह भोग कैसे हैं मोक्षद्वार को प्रतिबंध करते हैं ॥२५॥ भोगनिंदा से विचार होता है विचार से भोगनिंदा होती है यह दोनों आपसमें पूर्ण होते हैं जैसे समुद्र और बादल आपसमें पूर्ण होतेहैं ॥ २६ ॥ हे पुत्र! भोगनिंदा और विचार और आत्मदर्शन यह तीनों आपस में मिल करके मोक्ष अर्थ को सिद्ध करते हैं जैसे प्रीतिवाले मित्र मिल करके अपने अपने अर्थ को सिद्ध करते हैं ॥ २७ ॥ हे पुत्र! देशांतर गमन करके तुच्छ धन की निंदा करकें साधुजनों को मानपूर्वक पूजन करके और सत्संग करके भोग निंदा कर के भले प्रकार विचारको उदय करके तुझे आत्मस्वरूप

का लाभ होना है ॥ २८ ॥ बली कहता है पूर्वकाल में उत्तम विचारवाले पिता ने यह ज्ञान मुझे कहा था सो मुझे विसर गया था अब मुझ को फिर स्मरण हुआ है अब ज्ञान को मैं प्राप्त हुआ हूँ मुझ को आ हुआ है॥२९ अहो महानंद भया है शम की दशा महारमणीय है और शीतलता करके युक्त है और सुखदुःख की संपूर्ण दशा शम विषे शांत होती है ॥१३०॥ जो मैंने पहिले अपने देह के मांस करके स्त्री के देहके मांस को पीडित किया है और अंग करके अंग को पीडित करके प्रसन्न होता भया यही मोह का उदय है ॥ ३१ ॥ इतना काल में मूढ होकर जो तुच्छ जगत् के राज्य की इच्छा करके देवतागण के साथ वैर करता भया ॥ ३२ ॥ पहिले मैं कौन हूँ और यह कौन है और जगत् क्या है इस प्रकार करके अज्ञान की शांति वास्ते आत्मज्ञान वास्ते अपने गुरू शुक्रजी को प्रश्न करता हूँ और स्मरण करने से प्रकट हुये शुक्रजी को बली ने कहा ॥३३॥ हे गुरुजी! मैं भोगन के प्रति विरक्त हुआ हूँ और यह भोग कैसे हैं जो महामोह को देनेवाले हैं इस से मैं उस तत्त्व को जानना चाहता हूँ जो महामोह को दूर करनेवाला है ॥ ३४ ॥ यह भोगजाल कितना प्रमाण है स्वरूप करके क्या है और मैं कौन हूँ तू कौन है यह लोक कौन है यह तुम मुझ से कहो ॥३५॥ अब शुक्रजी कहते हैं- हे दैत्यराज! बहुत कहने से क्या है और आत्मरूप को प्राप्त होने को यत्न करे तू मेरे से ज्ञान के सार को संक्षेप से श्रवण कर ॥ ३६ ॥ यहां सर्वत्र चैतन्य है और चैतन्य मात्र ही दृष्ट होता है और चैतन्यरूप ही है तुम चैतन्यरूप हो हम भी चैतन्य हैं संपूर्ण लोक चैतन्यरूप हैं ॥ ३७ ॥ हे दैत्यराज! तू उत्तम बुद्धि है जो निश्चय करेगा तो सर्वसार ज्ञान को प्राप्त होवेगा जो निश्चय नहीं करेगा तो तुझ को बहुत कहना भी भस्म में होम जैसा वृथा होगा ॥ ॥ ३८ ॥ हे दैत्यराज! चैतन्य का चित्त के संकल्प से संबंध होना ही

बंधन है चित्त के संकल्प से मुक्त होना ही मुक्ति कही है चैतन्यता कर चित्त को भी चैतन्यमात्र जाने सभी आत्मा ही होता है यह मैंने संक्षेप से सिद्धान्त निश्चय से कहा है ॥ ३९ ॥ चिति कैसी है चित्त के धर्म से मुक्त है सो ही मैं हूँ चैतन्यतारूपी ज्योतियुक्त हूँ सब को प्रकाश करने का दीप हूँ ऐसे मुझ को नमस्कार होवे ॥ १४० ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—बली ने ऐसा चिंतन किया परम ज्ञान को प्राप्त हुआ और ओंकार के अर्थ को धारण करके और मौन को धारण करता भया ॥ ४१ ॥ सर्व संकल्पोंसे रहित हुआ निर्मल अंतःकरण होता भया और उस की संपूर्ण वासना शांत होती भई सर्व संकल्पना शांत होती भई और शंका से संदेह से रहित हुआ और चित्त को चैतन्य में एकरूप करता भया ध्याता ध्यान करना ध्यान करने योग्य इन तीनों से रहित होता भया और सर्व भोग इच्छा से रहित होता भया है और आनंद करके पूर्ण होता भया मन के दोषों से रहित होता भया ऐसा हो करके जैसे निर्मलता करके शरदऋतु का आकाश शोभता है तैसे शोभता भया दिव्य हजार वर्ष ध्यान में एकाग्रस्थित होता भया ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! बली दिव्य हजार वर्ष से उपरांत ध्यान से जाग्रत होता भया आत्मतत्त्व चिंतन करता भया मुझ को वंध नहीं है और मोक्ष नहीं है मूढता मेरी क्षीण हुई है ध्यान विलास करके मुझ को क्या है ध्यान करने करके क्या है ॥ ४३ ॥ मुझ को परम तत्त्व की वाञ्छा नहीं है और जगत् की स्थिति से मेरी वांछा नहीं है ज्ञानदृष्टि से मेरा कार्य नहीं है और राज्य करके मुझको कार्य नहीं है ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! बलि को जैसे ज्ञान प्राप्त हुआ सो तुम को कहा है ऐसी ज्ञानदृष्टि को धारण करके तुम भी मोक्ष का उद्यम करो ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! बली असुरों का राजा भी हुआ और दश हजार(१००००) वर्षकोटि त्रैलोक्य का रा-

ज्य किया अंतकाल भोगों से विरक्त हुआ ॥ ४६ ॥ इससे हे रामजी! तुम भी अवश्य भोगभाग को विरस जान त्याग करके सत्य परमानंद को जान करके विरसता से रहित सदा एक रस पद को प्राप्त होवो ॥ ४७ ॥ पहिले इष्ट वस्तु को अनिष्ट जान अनिष्ट को इष्ट जान ऐसा अभ्यास करके पश्चात् दोनों का त्याग कर ॥४८॥ इस दृश्य के पदार्थ में इष्ट अनिष्ट दृष्टि के त्यागने से निरंतर समदृष्टि हृदय में उदय होती है इस से फिर जन्म नहीं होता है ॥ ४९ ॥ हे रामजी! जिस शरीर को आत्मा मानते हैं झूठी ज्ञानदृष्टि से जिनकी बुद्धि हत भई है और जो संकल्प विकल्प के अधीन भये हैं धूर्त हैं ऐसे मूढनरों की बराबरीको तू मत धारण कर ॥ ५० ॥ हे रामजी! जो पुरुष स्वात्मनिर्णय में ज्ञान करके रहित हैं परायों के कहे में फस गये हैं ऐसे यह मूढ पुरुषों को अपनी मूर्खता से अधिक दुःख देनेवाला कोई नहीं है॥५१॥ हे रामजी! जबलग अपनी आत्मा ने अपने देखने में अनुग्रह यत्न करके नहीं किया तबलग आत्मविचार का उदय नहीं होता है ॥ ५२ ॥ हे रामजी! जब विष्णु भगवान्‌जी ने हिरण्यकशिपु मारा तब उस का पुत्र प्रल्हाद विष्णु को जीतना चाहता था और उसका उपाय चिंतन करने लगा विष्णु को जीतने का एक यही मुख्य प्रकट उपाय है और सर्व प्रकार करके सर्व बुद्धि को विचार का वेग करके सर्वत्र विष्णु विस्मरण नहीं करना विष्णुस्मरण विना विष्णु को प्राप्त होने का और उपाय कोई नहीं है ॥ ५३ ॥ अब से लेकर जन्मादिकों से रहित नारायण को सर्वत्र ध्यान करता है तब मैं नारायण की शरण प्राप्त हो करके नारायण को प्राप्त होवेगा ॥ ५४ ॥

ॐ नमो नारायणाय।

यह मंत्र सर्व अर्थको सिद्ध करनेवालाहै सो मेरे हृदय कमलसे दूर नहीं होताहै जैसे आकाशसे पवन दूर नहीं होताहै ॥५५॥ दिशा-

में सर्वत्र हरिहै और आकाशमें हरिहै पृथिवी में हरिहै और सर्वजगत् हरिहै मैं भी हरिहूं कैसा हरिहै जो जिस हरिका परिमाण नहींहै अब मैं विष्णुरूप भयाहूं ॥ ५६ ॥ जो आप विष्णुरूप नहीं भयाहै और विष्णुकी पूजा करताहै सो विष्णु की पूजाके फलको नहीं पाताहै जो कोई विष्णुरूप हो करके विष्णुको पूजता है सो विष्णुरूप होताहै तैसेही मंभो विष्णुरूप हुआहूं ॥ ५७ ॥ प्रल्हादकी भक्ति करके प्रसन्न भये विष्णु प्रल्हादको वर देनेको कहते भये तो प्रल्हादने कहा हे महाराज! तुम संपूर्ण संकल्पके फलको देनेवाले हो सर्व लोकके हृदय में अंतर्यामी रूप स्थित हो जो कुछ तुम अत्यंत उदार वस्तु जानते हो उसे मुझे कहो ॥ ५८ ॥

श्रीभगवानजी प्रल्हादकेप्रति कहतेहैं.

हे प्रल्हाद! संपूर्ण संकल्प की शांतिके निमित्त उत्तम फलके वास्ते ब्रह्म विश्रांति पर्यंत विचारही उत्तम कहाहै ॥५९॥ प्रल्हाद विचार करताहै श्रीभगवानजीने मुझ को विचार करना कहा है तिससेमैं आत्मविचार करताहूँ ॥६०॥ अब मुझ को पाँच भूतों से और भूतोंके विचार भूत देहोंसे भिन्न आत्माका विवेक करके अनुभव हुआ है चित्तसे परे सत्तामात्र स्वरूप सबको प्रकाश करनेवाला मैं हूँ सर्व विश्वके बाहिर और अंदर व्याप्त हूँ निष्कलंक निर्मल सत्ता रूप हूँ ॥ ६१ ॥ मैं विशाल चैतन्यता का दर्पण हूँ सो वस्तु नहीं है जो मेरे विषे प्रतिबिंब नहीं होती मुझसे भिन्न कुछ नहींहै ॥ ६२ ॥ जो कुछ यह स्थावर जंगम जगत् दृश्यमान है सो संपूर्ण संकल्प विकल्प रहित चैतन्य मात्र तत्त्व मैं हूँ ॥ ६३ ॥ तुम हम यह जगत् इस प्रकारका मिथ्या भ्रम है देहधारी कौन है देह रहित कौन है मृत कौन है जीता कौन है ॥ ६४ ॥ काष्ठके जलके पत्थरके किला बना करके पृथ्वीके राजा बनके देहाभिमान करते है ऐसे नीचबुद्धि दैत्यरूप

करके कीटक जैसे मुझ को धिक्कारहै काष्ठमें जलमें पत्थरमें कीडे वृश्चिकभी रहतेहैं सो उत्तम कहां होतेहैं, आत्मविचार के विना उत्तमता नहीं होतीहै ॥६५॥ हिरण्यकशिपु ने त्रैलोक्यका राज्य किया करता सो विचारविना क्या उत्तमताको प्राप्त हुआ जितने हमारे पितासे लेकर दैत्य भये हैं, सो सभीही नीचबुद्धि हुयेहैं; जिस कारणसे यह आत्म विचारकी उत्तम राज्यपदवीको त्याग करके जगत्की जन्म-मरणादि पदवीमें प्राप्त हुए अहंकारकरके नष्ट होते हुए तुच्छ पदार्थोंमें आनंद मानते भये ॥ ६६ ॥ यह आत्म विचारसे हुई चैतन्यदृष्टि समदृष्टिमें उत्तम है. कैसी है, अंतसे रहित है, अनंत अखंड आनंदके भोगवाली है, उत्तम उपशम शांतिकरके शोभायमान है, और संकल्पविकल्पकरके रहित होनेसे शुद्ध है ॥ ६७ ॥ मैं संपूर्ण भावोंके अंदर स्थित हूँ, चित्तके धर्मसे रहित चैतन्यरूप हूँ सर्वव्यापी चैतन्यरूपकरके वर्त्तमान हूँ, ऐसे मेरेकोही मेरी बारंबार नमस्कार है ॥ ६८ ॥ आत्मविचारके आनंदका स्वाद लिये विना जगत्के सैकडों राज्य सुखोंका स्वाद लेनेसेकछुभी स्वाद नहीं होताहै ॥ ६९ ॥ ऐसी आत्मविचारकी दृष्टिको त्याग करके दग्ध भये घर जैसा राज्यसुखमें कौन प्रीत करता है, जैसे स्वादिष्ट खंडमिसरीका शरबत छोड करके अत्यंत कडुए निंबके जलको कौन पीताहै ॥ ७० ॥ हे मेरे आत्मा ! तुमको मेरा नमस्कार है तू अखंड चैतन्यरूप है संपूर्ण लोगको देखनेका महामणि है. हे देव ! तू मुझको प्राप्तहुआ है ॥ ७१ ॥ हे देव ! तू मैंने विचारा है प्राप्तभी भया है बोधको प्राप्त भया है और विकल्पोंसे निकाला है जो रूप तुम हो सो रूपही हो तुमको मेरी नमस्कार है ॥ ७२ ॥ मैं तेरा रूप हूँ और अंतररहित हूँ ऐसे मेरेताई तेरेताई नमस्कार है और कैसा है शिवरूप है अद्वैत रूप है देवताकाभी देवता रूप है इंद्रियोंको प्रेरण करनेवाले इंद्रादिक देवता हैं तिनकोभी

प्रेरणा प्रकाश करनेवाला है सबसे परेहैं परमात्मारूप हैं ॥ ७३ ॥ हे देव! तू कैसा है जिससे बादलदूर भये हैं ऐसे पूर्ण चंद्रमाके बिंबकी नाईं अविद्याके संकल्प विकल्परूपी बन्ध दूर होनेसे स्वात्मा प्रकाशरूप हैं अपने स्वरूपानंदमें प्रसन्न है आपही आत्मरूपमें स्थित है आपही उदे हुएहैं अपने वश हैं तुझको आपही नमस्कार करता हूं हे देव! तू कैसा है जिससे अहंकार रूपी कीचड दूर हुआ है निर्मलहै अंदरका आत्मा जिसका ऐसा आनंदका सरोवर है ऐसे आत्मरूप तुमको मेरा नमस्कार है॥७४॥ हे देव! हे आत्मा!! तू आनंद समुद्रहै कैसा है शांत है इंद्रियरूपी तदो ए जिसके क्षीण भई है चित्तरूपीवडवा अग्नि जिसकी ऐसी मेरे स्वरूप तुमको नमस्कार है७५हे देव!हे आत्मा!! तू आनंदका पर्वतहै कैसाहै अहंकाररूपी बादल जिससे दूर हुआ है आशारूपी दावाग्नि जिससे शांत हुई है ऐसे मुझे तुम्हें नमस्कार है. ॥७६॥ हे देव! हे आत्मन्!! तू सत्तामात्रका मानससरोवर है कैसा है जिसमें आनंदरूपी कमल प्रस्फुटित हुआ है चित्तरूपी लहर शांत हुई है ऐसे मेरे ताईं तेरे ताईं नमस्कारहै ॥७७॥ हे देव!हे आत्मन्!! तू कैसा है लीला करके अनेक विश्वका ईश है अपने स्वरूपानंदके अनुग्रहको प्राप्त करनेवाला है तेरे प्रसादसे मुझको परम शांति करके युक्त यह आनंदकी प्राप्ति हुई है ॥७८॥ हे देव! हे आत्मन्!! अब देखता हूँ मोहरूपी वैताल चलागयाहै अहङ्काररूपी राक्षस चलागयाहै आशारूपी पिशाचनी चलीगई है अब मैं चिंताज्वर से रहित हुआहूँ ॥ ७९ ॥ हे देव! मैं अब देखता हूँ मेरा अहंकाररूपी तोता तृष्णारूपी जेवडीको छेद करके शरीररूपी पिंजरासे कहाँ गया है ॥ ८०॥ हे देव! हे आत्माजी! तूं कैसा है तैंने अपनी सत्ता करके संपूर्ण विश्व पूर्ण कियाहै विश्वको अपनेसे उत्पन्न करनेवाला है सवत्र लक्षित होताहै अब कहाँ भागाजाता है ॥ ८१ ॥ हे आत्माजी! मेरा तेरा

जन्म बंधनसे बहुत अंतराल हुआथा अब समीपता हुई है बहुत आनंद हुआहै जो तुझको मैंने अब देखा है ॥ ८२ ॥ हे आत्मा! तुझको मेरे विषे स्थित होनेसे मैं सर्वदोषसे रहित हुआहूँ अपने स्थान विषे आत्माकी स्थिति भई संते रागद्वेषादिकोंका रंग दूर होगया है अब बंधन कहाँ है आपदा कहाँ है संपदा कहाँ है जन्म मरण कहां है अब अखंडशांति प्राप्त होनेकी इच्छा कहाँ है ॥ ८३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहतेहैं.

हे रामजी! शत्रुगणको जीतनेवाले प्रल्हादने इस प्रकारका आत्मचिंतन किया निर्विकल्प परमानंद समाधि को प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ इस प्रकार करके हजार वर्ष आनंद पूर्ण हो करके एकाग्रदृष्टि हो असुरोंके नगरमें स्थित हुआ जैसे सूर्य पत्थरमें प्रतिबिंब नहीं करता तैसे कार्योंकी कल्पनासे रहित हुआ ॥ ८५ ॥ उसके उपरांत ध्यानमें एकाग्रभये प्रल्हादको विष्णु भगवान्जीने संसारकी राज्यमर्यादा पालने वास्ते पांचजन्य शंखको धुनि करके समाधिसे जगाया तो दैत्योंके राज्यका पालन उसने किया ॥ ८६ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजी को पूछते भये.

हे गुरुजी! तुम कहते हो जो अपने पौरुषके यत्नसे सबकार्य सिद्ध होताहै तो प्रहलाद विष्णुके वर विनाबोधको कैसे नहीं प्राप्त भया यह मुझसे कहो ॥ ८७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहतेहैं.

हे रामजी! जो जो प्रहलाद को प्राप्त हुआ है सो सो अपने पौरुषसे और किसी से नहीं हुआ ॥ ८८ ॥ हे रामजी! आत्मा और नारायण आपसमें भिन्न नहीं हैं जैसे तैल तिल भिन्न नहीं होते हैं दोनों एक

ही हैं जैसे श्वेतरंग और वस्त्र भिन्न नहीं पुष्प और सुगंध भिन्न नहीं होते ॥ ८९ ॥ कदाचित् आत्मा अपनी विचारशक्ति करके बोध को प्राप्त होता है कदाचित् विष्णुरूप करके अपनी भक्ति करक आपही वरप्रदान करके बोधको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥ सो विष्णुरूप आत्मा चिरकाल से आराधन कियाहै तो भी आत्मविचार विना जाननेको अथवा वर देनेको समर्थ नहीं होताहै तिससे प्रल्हादको सर्वत्र नारायणस्वरूप आत्मज्ञान के पौरुषसे वर प्राप्त हुआ ॥ ९१ ॥ हे रामजी! आत्मबोध के दो कारण हैं तिनमें अपने यत्नसे उपार्ज्जित आत्मविचार मुख्य कारण है देवता का वरप्रदान गौणकारण है जिस से तुम मुख्य अपने पुरुषार्थमें यत्न करके आत्मविचार में सावधान रहो ॥ ९२॥ हे रामजी! तुम अपने पुरुषार्थके यत्न को आश्रय करके इंद्रिय मनरूपी पर्वतको लाँघ करके संसारसमुद्रको तैर करके पार जाकर परमपदको प्राप्त होवो ॥ ९३ ॥ हे रामजी! जो पुरुषार्थके यत्न विना विष्णुरूप आत्मा दृष्ट होवे तो जड योनि मृग पक्षीगणको पुरुषार्थ विना क्यों उद्धार नहीं करता है ॥ ९४ ॥ हे रामजी! जिसका मन अज्ञान करके युक्त है उसको गुरुसेवा और विष्णुपूजा कुछ नहीं कर सकती है जो कुछ प्राप्त होता है सो आत्मविचार करके होताहै ॥ ९५ ॥ हे रामजी! जो शास्त्र विचारमें अपने पुरुषार्थ सो मूढ है पराये कहेमें प्रवृत्त है उसको शुभ कर्मकी प्रवृत्ति निमित्त विष्णु भक्ति कही है ॥ ९६ ॥ हे रामजी! विचार विना उपशम विना विष्णु भी नहीं प्राप्त होताहै विचार करके उपशम करके मुक्त होवे तो विष्णु करके क्या अर्थहै ॥ ९७ ॥ हे रामजी! विचारसे उपशम करके युक्त अपने चित्तको शुद्धकर चित्त शुद्ध भयेसे तू मोक्षसिद्धिको प्राप्त होवेगा जो तुझको विचार उपशम करके चित्त शुद्ध नहीं होवे तो तू वन के गधे सरीखे हो ॥ ९८ ॥ हे रामजी! हृदयकंदरामें चित्तको

स्थापन करनाही आत्माका स्वाभाविक अविनाशी सदा एक जैसा मुख्यरूप है और शंख गदा पद्म धारनेवाला आत्माका गौणरूप है ॥ ९९ ॥ हे रामजी! जो पुरुष मुख्य आत्माके रूप का त्याग करके गौण रूपकी सेवा करता है सो अपने हाथसे सिद्ध रसायन त्याग करके साधन करने योग्य और रसायन के यत्न को दौडता है॥२००॥ हे रामजी! यह माया संसार नाम रूपवाली है अंत से हित है अथना चित्त जीतने करके क्षय को प्राप्त होती है॥ १ ॥ हे रामजी! कौशल देश में रहनेवाला एक गाधि नाम ब्राह्मण विष्णु की आराधना करके माया देखने वास्ते वरको प्राप्त हो करके जल में स्नान करनेको प्रवेश किया जल के बीच अघमर्षण मंत्र पढता भया मन में मायाकी सृष्टि देख करके फिर प्रत्यक्ष देख मनमें संदेह किया माया यही है नहीं है फिर उसने विष्णु की आराधना कर प्रत्यक्ष अनुभव करके विष्णुजी को कहा॥२॥ हे देव! मैं छः महीने माया करके भ्रमता भया भूतोंके स्थानमें कीरलोगों की पदवी को प्राप्त हुआहूँ तहां जो मेरा वृत्तांत भया है सो कथा मैं नहीं जानताहूं ॥३॥ तेरी मायासे भूतों की भूमि मैंने देखीथी यही तुह्मारा वचन करके वृथा, हे भगवन्! महात्मा पुरुषोंका वचन मोहनाश वास्ते होताहै मोहकी वृद्धि वास्ते नहीं होताहै ॥ ४ ॥

श्रीभगवान्जी कहते हैं.

हे गाधि! जैसे काग तालवृक्षके ऊपर आ करके अकस्मात् बैठ जाता है अकस्मात् तालवृक्षका फल गिरके फूट जाताहै ताल वृक्षके फलको काग खा लेताहै तालफलको काग तोड नहीं सकता तैसे ही सर्व भूतरूपी कीरों के चित्त में चांडालकी स्थिति प्रतिबिंबित होती है तिस से तेरे चित्त में अकस्मात् चंडालस्थिति प्रतिबिंबित हुई है ॥ ५ ॥ इस से जैसी चित्त में स्थिति होती है तैसा वृत्तां-

त कहा जाताहै जैसा चित्तका फुरणा होताहै तैसाही मायाके वेग से दृढ होताहै सो ज्ञान विना विस्मरण नहीं होताहै उसका वृत्तांत कहतेहैं ॥ ६ ॥ किसी चंडाल ने ग्राम में गृह रचन किया सो तैंने देखा था फिर उस में प्रवेश किया उसकी ईंट खंडित भई ॥७॥ हे गाधि! कदाचित् एक फुरणा बहुत जीवोंको होताहै जैसे अकस्मात् कागकी तालवृक्षमें स्थिति होतीहै तैसे अकस्मात् फुरणा होताहै ॥८॥ हे गाधि ! तैसेही बहुत मनुष्य अकस्मात् एक स्वप्न को देखतेहैं वह स्वप्न कैसा है? शयनरूप भ्रम को देनेवाला जैसे मदिरापान से बहुत मनुष्यों को जैसा अमल होता है ॥ ९ ॥ हे गाधि! भूलोक में जो कटंजक नामा चंडाल हुआ है जिस प्रकार का वृत्तांत हुआ है सो ही तुम को फुरण हुआ है सो चंडाल स्त्री से रहित भया स्त्रीवियोग करके देशांतर में गया तहाँ कीरदेशांतर में गया जहाँ कीरदेश का राजा भया राजकाज करता भया फिर उस चंडाल के पुत्रादिक राजा के पास आय उस राजा को अपना पूर्व वृत्तांत स्मरण हुआ अपनी स्त्री के मरणस्मरण से वियोगदुःख हुआ तो अग्नि में प्रवेश किया ॥ २१० ॥ हे गाधि! सो ही वृत्तांत तुझ को जल के अंदर चित्त में फुरण हुआ तब तुझ को चंडालभाव से ले करके अग्नि प्रवेश पर्यंत वृत्तांत के मोह से भ्रम हुआ है ॥११॥ हे गाधि! माया के वेग से दृष्टि किये अनुभवित अर्थ को भूल जाता है कदाचित् देखे विना भी अर्थ को चित्त देखे जैसे को प्रत्यक्ष अनुभव करता है ॥ १२ ॥ हे गाधि! जैसे स्वप्न होता है जैसे मनोरथ की कल्पना भी होती है जैसे धातुविकार करके एक चंद्र में दो चंद्रमा की प्रतीति होती है चंद्रमा का पीतवर्ण भासता है तैसे ही अपने मन से अपने को जगत् का भ्रम होता है ॥ १३ ॥ हे गाधि ! जैसे त्रिकाल दर्शी पुरुष को पूर्व वृत्तांत और भविष्यत् वृत्तांत प्रतीत होता है तैसे तुझ को चंडालवृ-

त्तांत प्रतीत हुआ है ॥ १४ ॥ हे गाधि! यह पुरुष है सो हम हैं यह पदार्थ मेरा है आत्मवेत्ता पुरुष ऐसी कल्पना में मग्न नहीं होता जो पुरुष आत्मवेत्ता नहीं सो ऐसी कल्पना में मग्न होता है ॥ १५ ॥ हे गाधि! तत्त्ववेत्ता पुरुष सब में आत्मरूप जान करके मोह को प्राप्त नहीं होता पदार्थों विषे भेदभावना को भी ग्रहण नहीं करता ॥ १६ ॥ इस कारण आत्मवेत्ता पुरुष अनेक प्रकार के सुखदुःखों के विलास भ्रम के जोगों में मग्न नहीं होता, जैसे तुंबे का पात्र जल में डूबता नहीं है ॥ १७ ॥ हे गाधि! ज्ञान की पूर्णता नहीं होने से मन के भ्रम को हटाने के लिये तू समर्थ नहीं होता है जैसे यत्नरहित पुरुष कुछ कार्य करने को समर्थ नहीं होता ॥ १८ ॥ हे गाधि! इस मायाचक्र का चित्त नाभिस्थान है जैसे नाभि दबानेसे चक्र नहीं भ्रमता वैसे ही चित्त जीतने से मायाचक्र नहीं भ्रमता है ॥ १९ ॥ हे गाधि! तू अब उठ करके हृदयरूपी पर्वत के कुंज में चित्त की एकाग्रता के निमित्त दश वर्ष पर्यंत सावधान बुद्धि करके तप कर तब तुझ को ज्ञान प्राप्त होवेगा ॥ २० ॥

श्रीवसिष्ठ कहते हैं.

हे रामजी! भगवान् इतना कह कर अदृश्य हुए गाधि ब्राह्मण विवेकवश से वैराग्य पद को प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ सर्व संकल्परहित हो करके पर्वत के कुंज में दश वर्ष तप किया तब ज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ सो गाधि ब्राह्मण आत्मसत्ता को पा कर आत्मानंद विषें रमण करता भया योगभावना से भयशोक से रहित हुआ सदा उदित जीवन्मुक्त शांतरूप होता भया जैसे चंद्रमा कला करके संपूर्ण होता है तैसे ही चित्त में पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥ इस से हे रामजी! तीर्थ दान तप क्रिया को त्याग करके कल्याण वास्ते सावधान हो कर चित्त को वश कर ॥ २४ ॥ हे रामजी! वर्त्तमान भोग को वाह्यबुद्धि करके खेद विना ही भज

भूतभोग की नाईं भविष्यत् भोग की भावना को त्याग करे तो चित्त क्षीण होता है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तत्त्वज्ञानी नहीं है सो कीटों से गधियों से पशु पंछियों से अति ही तुच्छ है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! चित्त वृद्ध होने से आत्मज्ञता दूर जाती है जैसे बादल के चढने से सूर्यका प्रकाश बंद होता है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! भोगों को नहीं भोगने से, आदर नहीं करने से शनैः शनैः चित्त को कृश करना रस को त्याग करना, जैसे पुराना पत्र गिरता है तैसे ही चित्त भी क्षीण होता है ॥ २८ ॥ देह में आत्मभावना करने से देह भोग के अधीन होने से स्त्री पुत्रादि स्नेह से चित्त वृध्द होता है ॥ २९ ॥ अहंकारके विकार करके ममता की लीला से यह मेरा है ऐसी भावना से आधिव्याधि के विलास से संसार की स्थिति के विश्वास से त्याग ग्रहण के यत्न करके धन रत्न के लोभ करके स्त्रियों के स्नेह करके दुष्ट आशारूपी क्षीरपान से भोग वासनारूपी पवन के बल से चित्त वृद्ध होता है ॥२३०॥ हे रामजी ! गंधमादन पर्वत में उद्दालक तपस्वी विवेक को प्राप्त हो करके चिंतन किया ॥ ३१ ॥ किस समय में मन को त्याग करके परम पवित्र पद में सुमेरुशृंग में बादल की नाईं विश्राम को प्राप्त होवेगा ॥ ३२ ॥ भोगवासना मेरे अंतःकरण में कब शांत होवेगी जैसे समुद्र में चंचल तरंगमाला शांत होती है ॥ ॥ ३३ ॥ परम पद में विश्रांत हुई बुद्धि करके यह किया यह करना ऐसी कल्पना को मैं कब त्याग करूँगा ॥ ३४ ॥ संकल्प विकल्पों का यह जाल मेरे चित्त के संग को कब त्याग करेगा ? जैसे कमलपत्र को जल प्रसंग नहीं करता है ॥ ३५ ॥ बहुत तरंगवाली तृष्णा नदी को बुद्धिरूपी नावों से कब मैं पार करूँगा ॥ ३६ ॥ यह जगत् के प्राणियों करके करी जाती झूठी जगत् की क्रीडा को बालकों की क्रीडा की नाईं अनादर करके कब मैं उपहास करूँगा ॥३७॥

शांत हुआ है मनोजरूपी मन का व्यापार जिस का ऐसा मैं पर्वत की कंदरा में निर्विकल्प समाधि बढाय करके पत्थर की समानता को कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३८ ॥ निराकार वस्तु का ध्यान विषें विश्राम को प्राप्त भया जो मैं मेरे शिर ऊपर वन के पक्षी तृण का आलना कब करेंगे ॥ ३९ ॥ ध्यान विषे एकाग्रता को प्राप्त भया जो मैं मेरे हृदय में वन के पक्षी पर्वत की कंदरा की नाई निर्भय हो करके कब विश्राम करेंगे ॥ ४० ॥ हे रामजी ! उद्दालक ब्राह्मण इस प्रकार की चिंता के अधीन भया वारंवार बैठ करके ध्यान का अभ्यास किया ॥ ४१ ॥ विषयों करके चित्तरूपी मर्कट चंचल होने से उद्दालक मुनि प्रीत को देनेवाली समाधान की प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हुआ ॥४२॥ किसी काल में उद्दालक का चित्तरूपी मर्कट बाहिर के विषय संवंध को त्याग किये से अंतःकरण में बहुत उद्वेग को प्राप्त हुआ ॥ ४३ ॥ किसी काल में तिस का चित्तरूपी मर्कट अंतःकरण के विषय संवंध को त्याग करके चंचलता से जैसे विषपान किये से व्याकुलता होती है तैसे व्याकुल हुआ ॥४४ ॥ किसी काल में तिसका मन प्रचंड सूर्य के तेज बरोबर प्रकाशमान अंदर के तेज को देख करके व्याकुल हो करके विषयों के सन्मुख हुआ मलीनता करके ठहरा नहीं ॥ ४५ ॥ किसी काल में तिसका मन अंदरके अज्ञान के संग करके विषयवासना में लंपट हो करके ध्यान से उच्चाटन को प्राप्त हुआ जैसे त्रास करके पक्षी उड जाते हैं ॥४६॥ किसी काल में ध्यान के दृढ अभ्यास से तिस का मन बाहिर के तथा अंदर के विषय संवधों को त्याग करके अज्ञान के अंधकार के हरनेवाले आत्मज्योति के प्रकाश की संधिमें मगन हो करके चिरकाल की स्थिति को प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! इसके अनंतर उद्दालक मुनि मन की चंचलता से व्याकुल होकर पर्वत में भ्रमने लगा जैसे सूर्य सुमेरु पर्वत के चारों तरफ भ्रमता

है ॥ ४८ ॥ एक काल में उद्दालक पर्वत की कंदरा में प्राप्त हुआ कैसी है कंदरा समस्त भूतों को दुःख करके प्राप्त होनेवाली है शांत भया है सब का संचार जिस से कैसी है मानो मोक्ष की दशा है॥४९॥ सो मुनि तहाँ बैठता भया चित्त की वृत्ति की शांति को प्राप्त हुआ जैसे पर्वत में प्राप्त हो कर बादल वर्षा करके शांत होता है ॥ ५० ॥ सो मुनि ने तहाँ उत्तर दिशा सन्मुख हो करके पद्मासन बाँध करके अंजलि बाँध कर वेद की उपनिषदों का पाठ किया ॥ ५१ ॥ वासना में भ्रमते मनरूपी हिरण को फिरा करके निर्विकल्प समाधि के अर्थ इस प्रकार विचार किया ॥५२॥ रे मन ! मूर्ख से तुझ को संसार की वृत्तियां करके क्या अर्थ है जिस कारण से विचारवान पुरुष अंतकाल में दुःख देनेवाली क्रिया को सेवन नहीं करते है ॥ ५३ ॥ रे मन ! जो पुरुष शमरूपी अमृत को त्याग करके भोगों के अर्थ भ्रमता है सो कल्पवृक्षों के वन को त्याग के कंटकवाले वन का सेवन करता है॥५४॥ रे मन! तू पाताल के तले जावेगा अथवा ब्रह्मलोक में जावेगा तो भी चित्त के उपशम विना निर्वाण के आनंद को नहीं पावेगा॥५५॥ रे मन! रे मूढ!! यह शब्दादिक विषयों की वासना निरंतर घात करनेवाली है इन्द्र करके निरंतर वृथा क्यौं फिरता है जैसे बादल को देख करके मीडक फिरते हैं ॥५६ ॥ रे मूढ मन ! जिस कारण से तुझ को हमारा कहना क्या अर्थ है ? व्यर्थ है जिस कारण से विचारवान पुरुष को चित्त का फुरणा नहीं होता है॥५७॥ रे मन ! मैं ने चरण के अंगूठा से ले कर शिखापर्य्यंत तिल तिल मात्र भले तेरे विचारण किया है इस देह में आनंद का लेश नहीं पाया तो इस में क्यौं आसक्त हुआ है ॥ ॥ ५८ ॥ इस देह का चलना पवन की शक्ति से है ज्ञान तो चैतन्य के अंश से है वृद्धावस्था और मृत्यु इस के धर्म है मैं इस में किस अर्थ से स्थित हुआ हूँ ॥ ५९ ॥ इस में नेत्र इंद्रियरूप के सन्मुख हो कर

अपने रूप विषय का देखताहै तिस कारण से मैं इस में कौन हूँ रूप को देख करके क्यौं मोहित होकर दुःखित हुआहूं ॥२६०॥ इस में त्वचा इंद्री अपने स्पर्शतत्त्व ग्रहण करने को सन्मुख होती है मैं इस के पीछे पराये के मन को पिशाच की नाई क्यों उद्यत हुआ हूँ॥६१॥ इस में जिव्हा इंद्री अपने रसतत्त्व ग्रहण को उदय हुई है मैं इष्टभोग को भोगता हूँ ऐसा दुष्ट भ्रम मुझ को कहाँ से हुआ है ॥६२॥ इस में नीच श्रोत्र इंद्री अपने शब्दतत्त्व ग्रहण करने को पीडित भई है मैं शब्द के दुःख करके क्यों दुःखी हुआ हूँ॥ ६३ ॥ इस में नासिका इंद्री अपने सुगंध तत्त्व में मग्न हुई है मैं गंध को सूँघता हूँ ऐसा चौर की नाई सूँघने को प्रमाण करता कौन है ॥ ६४ ॥ हे मन! तू वासना से ही न हो नेत्रादि इंद्रियाँ बाहिर अपने तत्त्वोंको प्रवृत्त होती है तू इनके साथ वासना करके क्यौं प्रवृत्त भया है यह वासना आनंद का कारण नहीं है ॥६५॥ तिस से हे मन! तू भी मूर्ख है और इंद्रियाँ भी मूर्ख हैं वह तुम सबही बाहिर के भोगों की वासना को अंतःकरण से त्याग करके आत्मस्वरूप प्राप्ति का यत्न करो जिस से फेर दुःख को नहीं पावेगे ॥ ६६ ॥ हे इंद्रियरूपी बालको! तुम अपने से प्रकट भई तृष्णा करके आप ही नष्ट हुए हो जैसे खोपडी का कीडा आप ही प्रकट करी हुई खोपडी करके आपही बद्ध होता है ॥६७॥ विष की नाईं विषयवासना की विषूचिका अनंत दुःख को देनेवाली है चतुराई करके जैसे होवे तैसे विषयवासना को दूर करके इष्ट आत्मचिंतन मंत्र की युक्ति करके आत्मस्वरूप में सावधान होवो ॥६८॥ संसार के विषयवासना का त्याग करना जो है सो संपूर्ण भय को दूर करने का स्थान है ॥ ६९ ॥ यह अहंकार का भ्रम आकाश के नीलवर्ण की नाईं मिथ्या ही उदय हुआ है इसका फिर जो नहीं फुरणा ऐसे विस्मरण को सब से भला मानता हूं ॥२७०॥ यह अहं-

कार के भ्रम को चिरकाल मूल सहित त्याग करके शांतरूप हो कर मैं आत्मस्वरूप में स्थित होता हूं ॥ ७१ ॥ जैसे शरद् ऋतु में आकाश आप निर्मल हो करके अपनी शोभा करके आपही निर्मल शोभता है ॥ ७२ ॥ यह चित्त परमात्मारूपी अग्नि में प्राप्त हो करके अपने संकल्प-विकल्परूपी अंगों को जला करके सुवर्ण की नाई शुद्धता को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ यह मनरूपी घना वन है इस के संकल्प विकल्प दोनों वृक्ष हैं तृष्णा इस की लता है इस को विचार शस्त्रसे छेद करके आत्मारूपी मैदान पृथ्वी विषे सुख करके विहार करता है ॥ ७४ ॥ जिसके लिये भोग संपदा चाहिये है सो देह मेरा नहीं है मैं भी उसका नहीं हूं इस कारण से शरीरसुख के लेश करके मेरा क्या अर्थ है ॥ ७५ ॥ यहाँ आत्मा प्रकाशमान है तहाँ मन और इंद्रियों और वासना यह नहीं फुरते हैं जैसे यहाँ राजा पास रहता है तहाँ दीन लोग रह नहीं सकते हैं ॥ ७६ ॥ सो अपने आत्मा के स्थान से मैं चलित हुआ हूँ और मेरी बुद्धि भिन्न हुई है मुझ को यह इंद्रियाँ मन देह इनका परिवार शुभ नहीं करता है ॥ ७७ ॥ अब मुझ को निर्मलता प्रकट हुई है आत्मसत्ता उदय हुई है और हृदय में सत्यता और सर्वज्ञता प्राप्त हुई है सब को एकरूपता और निर्भयता प्राप्त हुई है और द्वैतकल्पना क्षीण हुई है ॥७८॥ यह शांति से आंद सबही सुंदर स्त्रियाँ मेरे हृदयमंदिर में प्रकाशमान और स्वस्थ हैं अपने अपने सौभाग्य करके युक्त हैं मैं कैसा हूँ सब में एक आत्मबुद्धिवाला हूं यह सब स्त्रियाँ मेरे हृदय की प्यारी हैं ॥ ७९ ॥ इस से उपरांत उद्दालक मुनि ओंकार के ध्यान प्राणायाम करके पवित्र हो कर समाधि के विघ्नों को मन की चंचलता को दूर करके आत्मस्वरूप के फुरणे से आत्मसत्ता में मग्न हुए सविकल्प समाधि से आत्मरूप को प्राप्त हुआ जैसे सुवर्ण कडा बन करके सु-

वर्ण ही होता है॥ २८० ॥ इस प्रकार सविकल्प समाधि को प्राप्त भये मुनि का चित्त भाव को त्याग करके चैतन्यभाव को प्राप्त हुआ जैसे समुद्र में तरंगादिकों को शांति होने से केवल एक समुद्र ही समान रूप होता है ॥ ८१ ॥ ऐसे फिर समाधि के अभ्यास से सो मुनि निर्विकल्प समाधि में स्थित हुआ एक ब्रह्मभाव को प्राप्त हुआ जितनी पांच भूतों की मन बुद्धि अहंकार की कल्पना और आत्मा परमात्मा के भेद की कल्पना थी सो दूर हुई जैसे महाकाश होता है तैसे शुद्ध बोध को प्राप्त हो करके ब्रह्मरूप हुआ ॥ ८२ ॥ उस ब्रह्म भाव में मुनि अखंड आनंद को पा करके देखनेवाला पुरुष और दृश्य और दृष्टि इस भेद से रहित अद्वैतभाव को प्राप्त हुआ जैसे अमृतपूर्ण समुद्र होता है तैसे ब्रह्मानंद में मग्न हुआ ॥ ८३ ॥ सो मुनि सिद्ध करणा और साधना इन से रहित आनंद के मंदिररूपी निर्विकल्प समाधि में छः महीने स्थित हुए जैसे सूर्य उत्तरायण में रहता है ॥ ८४ ॥ सो मुनि आनंद से भी परे हुए यहां आनंद और निरानंद दोनों का फुरणा नहीं है ऐसा केवल सत्तामात्र आत्मरूप हुआ ॥ ८५ ॥ तहां सो दिव्य हजार वर्ष स्थिति पा करके उस मुनि का मन फिर भोगवासना में उदय नहीं हुआ जैसे स्वर्ग देखनेवाले को पृथ्वी के पदार्थ देखने की मन में उदय नहीं होती है ॥८६॥ सो मुनि तिस काल से ले कर व्यवहार भी करता है तो भी चित्त करके चैतन्यसत्ता में सावधान हुआ ॥ ८७ ॥ चैतन्य तत्त्व का एक अभ्यास से महा चैतन्यरूप हुआ जैसे सूर्य का तेज सर्वत्र पृथिवी में एक समान होता है ॥८८॥ तब सो मुनि कहीं भी आसक्त नहीं हुआ ऐसी पंचमी ज्ञान भूमिका से पदार्थ कुछ भी नहीं भासता ऐसी छठी ज्ञानभूमिका को प्राप्त हुआ चैतन्यतत्त्वकी सामान्यसत्ता के अभ्यास से जैसे सुमेरु पर्वत में सूर्य अस्त–उदय से रहित होता है तैसे सत्ता की सामान्यता को प्राप्त

हुआ ॥ ८९ ॥ हे रामजी ! तब तैसी उद्दालक मुनि की अवस्था को देखकर मैं वसिष्ठ और नारदादि मुनिगण ब्रह्मा विष्णु ईश्वरादि देवता तहां प्राप्त हुए ॥ २९० ॥ हे रामजी ! उद्दालक मुनि ऐसी संपूर्ण भय को नाश करनेवाली पदवी को पा कर जीवन्मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥९१॥ हे रामजी ! वैराग्य का अभ्यास करके वेदांत शास्त्र के अर्थ का अभ्यास करके शुद्ध बुद्धि करके और गुरुसेवा करके उत्तम पद पाता है अथवा एक शुद्ध एकाग्र बुद्धि करकही उत्तम पद पाता है ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! बोध करके युक्त और एकाग्र और निर्मल ऐसी शुद्ध बुद्धि होवे तो वैराग्यादि साधन विना भी उत्तमपद पाता है ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! यह दोनों यत्न करके सिद्ध करने योग्य हैं दो कौन एक समाधि और चित्त. चंचलवृत्ति से रहित करना इन से अंतःकरण में शीतलता होवे तो तप का फल भी होता है ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! जसे उन्मत्त पुरुष का नाचना उन्मत्त पुरुष को और लोगों को कुछ चमत्कार नहीं करता है वैसे ही वासना क्षीण होने से चित्त भी विकार नहीं करता ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! संपूर्ण जीवों को जो अंतःकरण में फुरणा होता है तैसा ही वाहिर भी फुरणा होता है जो अंतःकरण तृष्णा के दाह करके तपा होवे तो उस को जगत भुवन की अग्नि के दाह सा होताहै ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! नक्षत्रमंडल और पृथ्वी और पवन और आकाश और पर्वत और नदियां और दिशा यह सवही अंतःकरण तत्त्व के फुरणे से वाहिर भी फुरते हैं ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! एक सुरघ राजा हुआ था स्वर्णजट देशका स्वामी सो राजा भील था मांडवऋषि प्रसाद से ज्ञाता हुआ सो एक समय में उस राजा की प्रीत करनेवाला परिघ मुनिने चिरकाल से मिला करके राजा को आ कर कहा ॥ ९८ ॥ हे राजन् ! यह संसारजाल भारतखंड भूमि में जो जो कर्म किया है सो सो कर्म सावधान चित्तवाले पुरुष

को सुख करता है और व्याकुल चित्तवाले को दुःख देता है ॥ ९९ ॥ हे राजन्! हम तुझ सो प्रश्न करते हैं तूं संकल्प से रहित परम उपशम के कल्याण को देनेवाला परम विश्राम के स्थान ऐसी समाधियां अब करता है या नहीं करता है ॥ ३०० ॥

तब राजाने कहा-हे भगवन्! मैं तुम को पूछता हूँ सर्व संकल्प से रहित होना कल्याण को करता है अथवा समाधि चढानी कल्याण करती है ॥ १ ॥ हे भगवन्! मार्ग में चलने से व्यवहार करने से संकल्प से रहित होना कल्याण करने योग्य है जो चित्त सावधान नहीं होवे तो समाधि कहाँ होती है यह मेरा मत है ॥ २ ॥ हे मुनि! जिन के चित्त संकल्प रहित होने से सावधान है सो पुरुष जगत के कार्यों को करते भी हैं तौ भी आत्मतत्त्व में निष्ठावाले हैं सो पुरुष सदा समाधिस्थ हैं ॥३॥ हे मुने! पुरुष पद्मासन भी बांधे दोनों हाथों को अंजलि बनाय रक्खे प्राण भी चढावे परंतु जिस का चित्त संकल्प रहित नहीं हुआ उसको समाधि क्या करेगी ॥ ४ ॥ हे मुने! तत्त्व का बोध जो है सो संपूर्ण वासनारूपी तृण को अग्नि की नाईं नाश करनेवाला है सोही समाधि नाम करके कहा है प्राण चढ़ा करके चुप रहना समाधि नहीं है ॥ ५ ॥ हे मुने! सावधान बुद्धि होवे विषयवासना से रहित होवे यथायोग्य तत्त्व को देखनेवाली ऐसी जो बुद्धि सो समाधि नाम पंडित लोगों करके कही है ॥ ६ ॥

परिघमुनिने कहा-हे राजन्! तू निश्चय करके तत्त्वज्ञान करके प्रबोध को प्राप्त हुआ है आत्मपद को प्राप्त हुआ है अंतःकरण में शीतल हुआ है अब पूर्णिमाके चंद्रमा की नाईं शोभता है ॥ ७ ॥

वसिष्ठजीश्रीरामचंद्रजी प्रति कहते भये-हे रामजी! जीना वही दिन है आनंद करनेवाली वही क्रिया है जिस में तत्त्वविचार होता है और हृदयरूपी आकाश में चैतन्य चंद्रमा की चांदनी प्रकाश-

मान होती है ॥ ८ ॥ हे रामजी! सो पुरुष चिरकाल शोच करते हैं और जन्म मरण रूपी वनके झाड है जिनको आत्मा के देखने में अनादर होता है कैसे है सो पुरुष महापापों करके युक्त है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! महात्मा पुरुषों के सत्संग से संसारसमुद्र तरने में युक्ति प्राप्त होती है जैसे मलाह से नदी तरने को पक्की नाव प्राप्त होती है ॥ ॥२१०॥ हे रामजी! जिस देशमें सत्पुरुषरूपी महावृक्ष नहीं है कैसा है ज्ञानरूपी फल करके युक्तहै आनंद करनेवाली शीतल छाया युक्त है ऐसे सत्पुरुष जहाँ नहीं मिले तहाँ एक दिन भी नहीं रहना ॥११॥ हे रामजी ! संसार में मगन भये आत्मा के उद्धार करने में धन भी उपकार नहीं करते है मित्र और शत्रु और बांधव कोई उपकार नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ हे रामजी ! एक शुद्ध भया मनरूपी मित्र सदा सहचारी है तिस करके विचार करने से आत्मा का उद्धार होता है ॥ १३ ॥ हे रामजी! आत्मा सर्व देवों का ईश्वर है सो इतना मात्र विचारने से प्राप्त होता है किस से यह देह काष्ठ लोहा के बरोबर जड जानना और आत्मा देह से भिन्न चैतन्यरूप जानना ॥ १४ ॥ हे रामजी ! एक भास नामा तपस्वी हुआ है उसका विलास नामा तपस्वी मित्र था सो विलास चिरकाल से भास तपस्वी को मिल करके कहा ॥ १५ ॥ हे रामजी ! तुमको इस जगतमें आनंद है ना? और तेरी बुद्धि चिंता-ज्वर से रहित है ना ? और तू अब आत्मा को जानता हैना? और तेरी पढी और अभ्यास की हुई विद्या अब फल देती हैना ? और अब तूं कुशली हैना? ॥ १६ ॥

भासने कहा—हे विलास! हे साधो!! तेरा आगमन मुझे आनंद देताहै आज तू मैंने आनंद करके देखा है तू मुझको मान करताहै और तू हमारा कुशल पूँछताहै परंतु यह संसार में स्थित हुए हम को कुशल कहताहै ॥१७॥ जब लग आत्मा नहीं जाना जब लग चित्त की भूमिका

क्षीण नहीं हुई तब लग संसार नहीं तरा तब लग हम को कुशल कहाँ है ॥१८॥जब लग चित्त से प्रकट हुई आशा संपूर्ण छेदी नहीं जैसे दात्री करके झाड छेदे जाते हैं तब लग कुशल कहाँ है ॥१९॥ जब लग ज्ञान उदय नहीं हुआ जब लग समता उदय नहीं हुई जब लग आत्मबोध नहीं हुआ तब लग कुशल कहाँ है ॥२०॥ हे रामजी! सो दोनो इस प्रकार करके आपस में कुशल प्रश्न करते भये समय करके निर्मल ज्ञान को पाइ करके मोक्ष को प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे रामजी! संगति दो प्रकार की है एक बंधन करनेवाली है एक मोक्ष देनेवाली है मूढों की संगति बंध करनेवाली है तत्त्ववेत्ता पुरुषों की संगति मोक्ष देनेवाली है ॥ २२ ॥ हे रामजी! जिनका अंतःकरण से प्रसंग है तिनका संगम अग्नि बराबर दे‌ने करता है जिनका अंतःकरण से प्रसंग नहीं है तिनका संग अमृत की नाई मोक्ष देता है ॥ २३ ॥ हे रामजी! सब पुरुषने सबके साथ सर्वत्र रहना सर्व काम भोग विषे रत भी रहना परंतु मन सब से असंग करना ॥ २४ ॥ हे रामजी! यह मन कहीं भी स्थित नहीं होता है न चेष्टा में न चिंता में न वस्तु में न आकाश में न पाताल में न आगे न पीछे न दिशा में न आकाश में न बाहिर के विशाल भोगों में न इंद्रियों की वृत्ति में न बाहिर प्राणों में न कपाल में न तालुस्थान में न भ्रूमध्य में न नासाग्र में न नेत्र के तारा में न तारामंडल में न अंधकार में न प्रकाश में न हृदयाकाश में न जाग्रत में न स्वप्न में न सुषुप्ति में न निर्मल में न भोजन में न जलपान में न रक्तपित्तादिक में न चंचलता में न स्थिरता में न आदि में न मध्य में न अंत में न दूर में न समीप में न पदार्थ में न बुद्धि में न शब्द स्पर्श रूप रस गंध में न मोह में न आनंदवृत्ति में न आवागमन चेष्टा में न काल की कल्पना में कहीं भी स्थिर नहीं होता है ॥ २५ ॥ हे रामजी! यह मन के बल चैतन्य सत्ता में आलंबन करे

तो सर्वत्र रस से रहित हो करके आत्मा विषे रत होवे तो स्थिर होता है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जगत का सत्यरूप और असत्यरूप अंतःकरण चैतन्य में भासता है और आत्मा का केवल एक रूप ज्ञान होने से संपूर्ण आत्मरूप भासता है जैसे सूर्य के प्रकाश होने से सर्वत्र प्रकाश ही होता है ॥२७॥ हे रामजी ! अनेक प्रकार के भूतों के भेदकारण अंतःकरण ही है आत्मा सर्वव्यापी होने से कारण है तौभी कारण नहीं है किस से आत्मा सर्वत्र समान सत्तावाला है ॥२८॥ हे रामजी ! जिस ने अंतःकरण के उपशम पाकर के निराशता भूषण करके अपने स्वरूप को शोभित किया है तिस को सप्तद्वीपा पृथिवी गौ के खुर के बराबर तुच्छ होती है सुमेरु पर्वत मृत्तिका के पिंड बराबर तुच्छ होता है दश दिशाका मंडल एक संपुटके बराबर तुच्छ होताहै ॥२९॥ हे रामजी ! नैराश्यवाले उत्तम पुरुषों ने लेना देना विहार ऐश्वर्य्यादिक जगत की क्रिया अयतन से त्याग नहीं कर दी है॥३०॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानी पुरुष बाला स्त्री को आलिंगन करता है तौभी आत्मज्ञान की उदारता करके उसके मन से भस्म की नाई कामदेवके बाण आपही शिथिल होते हैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुष के व्यसन को मन में धारण करती है और घर के काममें तमाम दिवस लगी रहती है परंतु मन में परपुरुष के संग को त्याग नहीं करती है तैसे ही जो पुरुष परम तत्त्व में विश्राम को प्राप्त हुआ है सो व्यवहार भी करता है तो भी उसको इंद्रादिक देवता भी परम तत्त्व से चलाने को समर्थ नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! केते पुरुष व्यवहारों मे स्थित हैं सुंदर वस्त्र भी धारण करते हैं परंतु जिनका अंतःकरण उपशम करके शीतल हुआ है सो पुरुष लोगों को शिला समान जड और मूढजाने जाते हैं ॥३३॥ हे रामजी ! तत्व जान करके जौनसी भोग संपदा सेवन करदिया है सो अंतकाल में भी

सुख देती है तत्त्वविचार बिना सेवी हुई भोग संपदा अंत में दुःख देती हैं ॥३४॥ हे रामजी! यह संसार संतजनों के साथ विचार करने योग्य है विचार करके देखने योग्य है इस संसार की व्यवहार क्रीडा विचार से शोभा देती है विचार बिना दुःख देती है ॥३५॥ हे रामजी! यह संसार के भोग सर्पोंकी नाईं भय को और मृत्यु को देनेवाले हैं और विचार से भोगे तो आनंद देते हैं जैसे सर्प और जीवों को भय देते हैं परंतु गरुड सर्पों को भक्षण करता हैं तौ भी गरुड को कुछ नहीं करता॥३६॥ हे रामजी! यद्यपि सूर्यका तेज शीतल हो जावे और चंद्रमा का मंडल तप्त हो जावे तथापि उपशमवाले जीवन्मुक्त पुरुष को कुछ आश्चर्य मय ज्ञान नहीं होता है ॥ ३७ ॥ हे रामजी! जगत में जितनी आश्चर्यरूप अथवा साधारण लीला होती है सो सभी परमात्मा की शक्ति से फुरती है तत्त्वविचारी पुरुष ऐसे जान करके देखने में इच्छा नहीं करता है ॥ ३८ ॥

श्रीरामचंद्रजीने वसिष्ठजी प्रति प्रश्न किया–

हे भगवन्! यह प्राण और इंद्रियें देह में निरंतर चलती हैं जैसे पक्षी आकाश में उडते हैं इन प्राणों का और इंद्रियादिकों का रोकना कैसे बने है सो तुम मेरे प्रति कृपा करके कहो ॥ ३९ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी प्रति कहते हैं

हे रामजी! शास्त्र के विचार से संतजनों के सतसंग से वैराग्य के अभ्यास से और योग की युक्ति से और संसार की वृत्तियों विषे विश्वास त्यागने से अपने इष्ट देवता के ध्यान से और सर्वत्र एक आत्माका तत्त्व जानने से और प्राणायाम के दृढ अभ्यास से प्राणादिकों का चलना रोका जाता है ॥ ४० ॥ हे रामजी! ओंकार को १६ सोलह बार उच्चारण करना दाहिनी नासिका, दाहिने हाथ के

अँगूठेसे बंद करनी और पवन को चढाना यह पूरक प्राणायाम कहा है और ओंकार को चौंसठ ६४ वार उच्चारण करना दो नासिका बंद करके पवन रोकना यह कुंभक प्राणायाम कहा है और ओंकार को बत्तीस ३२ वार उच्चारण करना दाहिनी नासिका करके पवन उतारना यह रेचक प्राणायाम कहा है उसी का द्विगुण त्रिगुण करके बढा लेना इस प्रकार करके प्राणों का चलना रोका जाता है ॥ ४१ ॥ हे रामजी! प्राणायाम करने में ओंकार की मात्रा तीन हैं उनके देवता ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीन अवस्था जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति और तीन प्रकार का अभिमानी जीव है विश्व तैजस प्राज्ञ इससे लेकर और भी बहुत अर्थ विचारना शास्त्रों में आचार्य लोगों ने कहा है सो योग करनेवाले पुरुष ने गुरुमुख से अभ्यास करना यह विस्तार भय से कठिनता करके वार्तिक में नहीं लिखा है ॥ ४२ ॥ हे रामजी! इस प्रकार के प्राण रोकने के उपाय बहुत हैं अनेक आचार्यों के मुखों से प्रकट हुए हैं तिन को अपने अपने बुद्धिबल करके करनेसे प्राणोंका चलना रोका जाता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी! योग की युक्तियाँ अभ्यास करके दृढ हुई तो संसार के जीतने का उपाय हो जाता है ॥ ४४ ॥ हे रामजी! सो युक्तियाँ अभ्यास से दृढता को प्राप्त होवें और वैराग्य करके युक्त होवें और वासना का जो रोकना होवे तो प्राणायाम सफल होता है ॥ ४५ ॥ हे रामचंद्रजी! प्राणायाम के अभ्यास से प्राणों का चलना क्षय को प्राप्त होने से मन भी शांत होता है तो केवल निर्वाणमात्र शेष रहता है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! किया है विशाल विचार जिसने तिस को मन और भोगादिक जो शत्रु हैं सो अल्प प्रमाण भी भेद नहीं कर सकते हैं जैसे मंद मंद पवन पर्वत को नहीं हिला सकता है ॥४७॥ हे रामजी! संवर्त्तगीता में संवर्त्त ने कहा है—रे मन पिशाच! तू तृष्णारूपी पिशाचनी युक्त का-

म-क्रोधादि यक्षों से संयुक्त मेरे देहरूपी घर से बाहिर निकल॥४८॥रे मन! तू बडा ठग है और जड है और प्रेतरूप है तुझे मेरे देह से निकालने से मेरा देहरूपी घर अब विवेक संतोष धैर्यादिक संतजनों के सेवने योग्य हुआ है॥४९॥अब मेरा मन मृत हुआ है और चिंता भी विचार मंत्र करके मृत हुई है और अहंकाररूपी राक्षस भी मृत हुआ है अब मैं शमता को प्राप्त हुआ हूँ अब केवल बल स्वस्थ हो करके रहता हूँ॥५०॥ अब मैं एक अद्वितीय और कृतकृत्य हुआ हूँ और नित्य और निर्मलरूप हुआ हूँ और निर्विकल्प चैतन्य मेरा नाम है ऐसा जो मैं हूँ मेरे ताईं मेरी नमो नमन नमस्कार है॥५१॥न मुझ को आज्ञा है न मेरे कर्म हैं न मेरे को संसार है न कर्तृभाव है न संदेह है न देह है ऐसे मुझ को मेरा नमस्कार है॥५२॥ मैं जगत का आदि हूं. जगत की रचना करनेवाला हूँ मैं चैतन्यरूप हूँ चौदह भुवन मैं हूँ मेरा अंतर कहीं भी नहीं है मैं सर्वत्र पूर्ण हुआ हूँ ऐसे मुझ को मेरा नमस्कार है ॥५३॥ इति संवर्तगीतायां॥ हे रामजी ! विंध्याचल पर्वत के कुंज में वीतहव्य मुनि को विचारसहित तीन शत वर्ष निर्विकल्प समाधि हुई तिस से उपरांत प्रारब्धशेष करके जीव चैतन्य मनोरूप हो करके जीवन्मुक्त दशा करके कैलास पर्वत में कदंब वृक्ष के तले शत वर्ष मुनिभाव हुआ बहुरि शत वर्ष विद्याधरभाव हुआ सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारों युगों का एक युग होता है ॥५४॥ सो मुनि पांच युग प्रमाण इंद्रभाव को प्राप्त हुआ फिर कल्प ब्रह्मा का दिनप्रमाण लौं शिव का गण हुआ फिर सूर्यमंडल में प्रवेश किया सूर्य की आज्ञा करके सूर्य का गण पिंगल नामा तिस में प्रवेश करके इतना विलास प्रारब्धशेष करके मन के फुरणे से समाधि में अनुभव किया फिर अपने नख करके देह पीडित होने से फिर देह में प्रवेश करके विंध्यपर्वत में एक दिनमात्र यह संपूर्ण विलास अनुभव करता भया ॥५५॥ सो मुनि

दिन के अंत में मनका समाधान करने को एक विशाल विंध्य पर्वत की कंदरा में फिर प्रवेश किया ॥ ५६ ॥ सो मुनि ने अपने समाधान को नहीं त्याग किया इंद्रियों करके मन करके जो कुछ पूर्वकाल में उत्तरकाल में देखा है तिस को चित्त में कल्पना करता भया ॥५७॥ मैं ने इंद्रियों का गण पहिले ही हार किया था अब विस्तार हुई चिंता करके फिर उदय भया तिस को मैं फिर परिहार करता हूं ॥ ५८ ॥ यह जगत है अथवा नहीं है ऐसी कल्पना को कोमल लता की नाईं तोड करके शेष रही आत्मा की सत्ता मात्र में स्थित होता हूं जैसे अचल पर्वत के शिखर में चढ करके निर्भय हो करके निवास कर दिया है ॥ ५९ ॥ उदय भये में अस्त भये जैसा अस्त भये में उदय जैसा समदृष्टि हो करके समरस के आभासयुक्त स्वच्छता को प्राप्त हो करके स्थित होता हूँ ॥३६०॥ जाग्रत भया सुषुप्त की नाईं सुषुप्त भया जाग्रत की नाईं तुरीय पदवी को आलंबन करके अचल हो करके स्थित होता हूँ ॥६१॥ पर्वत की नाईं एकांत में अचल हो करके स्थित होता हूँ अंतःकरण करके सर्वत्र अचल स्थित होता हूँ आत्मसत्ता करके सर्वत्र समान स्थित हो करके संदेह रोग से रहित हो करके स्थित होता हूँ॥ ६२ ॥ हे रामजी! सो वीतहव्य मुनि इस प्रकार आत्मा के समाधान में षट् (छः) दिन रहा तिस के अनंतर फिर आत्मबोध को प्राप्त हुआ ॥६३॥ सो फिर जीवन्मुक्त दशा करके चिरकाल स्थित हुआ पहिले सरीखा फिर उद्वेग को नहीं प्राप्त हुआ और हर्ष को भी नहीं प्राप्त हुआ ॥ ६४ ॥ तिस वीतहव्य मुनि को चलने को बैठने को स्थित होने को हृदय में मन के साथ चित्त की कथा होने लगी ॥ ६५ ॥ हे मन! हे दुष्ट इंद्रियों के स्वामिन्!! तू अब देख तैंने शम उपाय करके आनंद का विशाल सुख कैसा पाया है ॥ ६६ ॥ हे मन! तिस कारण से ऐसी रागरहित दशा को आलं-

बन करके आप ही चंचलता त्यागना तू चलनेवालियों विषे बडा वेगवान् है ॥ ६७ ॥ भो भो इंद्रियरूपी चौरो ! तुह्मारी अब आशा हत हुई है और तुह्मारा नाम भी न रहा है यह आत्मा तुह्मारी नहीं थी और तुम भी आत्मा के नहीं थे तुम आत्मा की चोरी करते थे अब आत्मा की सावधानता करके तुम नष्ट हुए हो ॥६८॥ हे इंद्रियचौरो ! तुम अब चले जाओ अब तुम्हारी मैंने आशा विफल की है तुम बडे टेढे आशयवाले हो अब तुम आत्मा के ग्रहण करने को समर्थ नहीं हो ॥ ६९ ॥ हे इंद्रिय चौरो ! पहिले तुम को यह वासना थी क्या हम ही आत्मा हैं सो अब भूल गई है जैसे रज्जु जानने में सर्प की भी भ्रांति नष्ट होती है ॥३७०॥ जौनसी अनित्य वस्तु में आत्मा की भावना होवे सो ही अवस्तु में वस्तु की भावना है सो विचार विना होती है अब विचार करके क्षीण भई है ॥ ७१ ॥ हे इंद्रिय चौरो ! तुम और स्वभाववाले हो हम और स्वभाववाले हैं ब्रह्म और स्वभाव है कर्त्ता का भाव और स्वभाव है भोक्ता और स्वभाव का है ग्रहण करनेवाला और स्वभाव का है यहां दोष कौन है और कैसा है और किस को है सो सबही अज्ञान से हैं सो संपूर्ण भ्रम अब ज्ञान ते नष्ट भया है ॥ ७२ ॥ जैसे काष्ठ बन में और होता है और रज्जु बांस की अथवा चर्म की होती है वापी जलों की होती है और फल वृक्षों के होते हैं यह सब सामग्री भिन्न भिन्न है और गुणज्ञ जो है सो सब गुण रस को भोगते हैं ॥ ७३ ॥ इस प्रकार की यह सामग्री दैवयोग करके मिल करके कार्य सिद्ध करती है तैसे हम तुम सब भिन्न भिन्न हैं अज्ञान से हमारा तुह्मारा संबंध हुआ है सो अज्ञान अब नष्ट हुआ है ॥७४॥ जो मुझ को पहिले स्वरूप की विस्मृति भई थी सो अब विस्मृति विस्मरण हुई है स्वरूप की स्मृति अब प्रकट स्मरण हुई है ॥७५॥ अब मुझ को जो सत्य है सो सत्य भासता है और जो असत्य है

सो असत्य भासता है असत्य भ्रम क्षीण हुआ है और सत्यरूप स्मरण हुआ है ॥ ७६ ॥ हे रामजी! सो वीतहव्य मुनि इस प्रकार के विचार करके बहुत वर्षों के गण मोक्षचिंतन में रहता भया॥७७॥ हे रामजी! वीतहव्य मुनि की मूढता दूर हुई यथार्थ पदार्थों की दृष्टि हुई ध्यान को अवलंबन करके सुखी हो करके निवास किया ॥७८॥ वीतहव्य मुनि मन त्याग करनो और ग्रहण करने की दृष्टि से रहित हुआ॥७९॥ वीतहव्य मुनि विदेह मुक्ति के भाव को प्राप्त हुआ जन्म-कर्मों का अंत हुआ संसारका संग त्यागने की इच्छा हुई॥३८०॥ हे रामजी ! सो वीतहव्य मुनि पर्वत की कंदरा में पद्मासन बाँध करके स्थित हुआ अपने आत्मा में आप ही कहता भया॥ ८१ ॥ हे राग! तू अब अपने रागभाव को त्याग करके चला जा हे द्वेष! अब तूं द्वेष को त्याग जा तुह्मारे करके मैं ने संसार में बहुत क्रीडा की है हे भोगो! तुम को मेरी नमस्कार है तुह्मारे करके मैं ने संसार में सुख भोगा है हे कर्मभोग सुख! तुझ को नमस्कार है जिस से मैं ने कोटिशत जन्म अपना स्वरूप भुलाया है ॥८२॥ हे संसार के दुःख! तुझ को नमस्कार कि तुझ से संताप पा करके मैं ने आत्मा का स्वरूप ढूंढा है इस कारण से हे दुःख! तै ने मुझे मोक्षमार्ग का उपदेश किया है तू दुःख नाम करके मेरा मित्र है हे देह! तुझ को नमस्कार है तू भी मेरा मित्र है जिस कारण से संसार में तेरा जीना साररहित है इस कारण से मैं ने अपनी आत्मपदवी पाई है ॥ ८३ ॥ हे देह की स्थिति! तुझ को नमस्कार है अब हम तेरे प्रसाद से आत्मा की पदवी को जाते हैं ॥ ८४ ॥ प्रयोजन के आधीन जीवों की बहुत विषम गति है सैकडों जन्म पा करके भी देह के साथ वियोग होता है हे मित्र हे देह! जिस कारण से मैंने तेरा भी त्याग किया है तू मेरा चिरकाल का बंधु है तैंने ही आत्मज्ञान के वश से अपने विषे क्षीणता धारी है आत्म-

ज्ञान पा करके तैंने अपना नाश किया है दूसरा देह करके तू नष्ट हुआ है तैं ने ऐसा मान करके अपना नाश अंगीकार किया है इस से तेरे को नमस्कार है ॥ ८५॥ हे तृष्णे ! मैं अब शांति को प्राप्त हुआ हूँ अब तू अकेली सुकने लगी है तू अब दुःख न कर मेरा तुझे नमस्कार है अब मैं आत्मपद को जाता हूँ ॥ ८६ ॥ हे काम ! हे महाराज !! मैं अब तुझ से उलटा हुआ हूँ यह मेरा अपराध क्षमा करने योग्य है मुझ में उपशम दोष हुआ है तू मुझको आज्ञा कर मैं अब मंगल पद को जाता हूँ ॥ ८७ ॥ हे तृष्णे ! हे मातः !! अब चिरकाल से चिरकाल पर्यंत आत्मयोग के दोष करके निश्चय करके मुझ को तेरा वियोग हुआ है अब पिछले समय की मुझ को प्रणाम है ॥ ८८ ॥ हे सुकृत ! हे पुण्य !! हे देव !!! मेरी तुझ को नमस्कार है तैंने मुझ को नरकों से निकास करके स्वर्गों में युक्त किया है ॥ ८९ ॥ हे पापवृक्ष ! तुझ को मेरी नमस्कार है कैसा है तू दुष्ट कर्मरूपी क्षेत्र में प्रकट हुआ है नरक ही तेरी शाखा है नरकपीडा तेरे पुष्प है ॥ ३९० ॥ हे मोह ! हे भाई !! तुझ को भी मेरा प्रणाम है तू आज से लेकर अदृश्य होवेगा तुझ से मैंने अनेक मूढियों ने भोगी है ॥९१॥ हे कंथे ! तेरे ताईं मेरा नमस्कार है तू अंधकारविषे कंदरा में सहाय करनेवाली है हे कंदरे ! तरे ताईं नमस्कार है तू समाधि में सहाय करनेवाली है. हे शांति ! तुझ को नमस्कार है तू मुझ को संसारके मार्ग में खेद युक्त अवस्था में विश्राम देनेवाली है सर्वत्र सहाय करनेवाली है. हे क्षमे ! तुझ को नमस्कार है तू लोभादिक दोषों को हरनेवाली है मैं सर्व संकटों करके खेदको प्राप्त हुआ हूँ दोषों से भागता हूँ शोक-नाश के वास्ते तू ने ही सहाय मुझे की है ॥ ९२॥ हे दंडकाष्ठ ! तू संकट में ऊँची नीची पृथ्वी में कुंजों में हाथ को अवलम्ब देनेवाला है और वृद्धावस्था में मित्र सहायता करता है तुझे भी नमस्कार है ॥ ९३ ॥ हे देह ! तू

भी अपनी अस्थियोंका पिंजरा रक्त मांस का पिंड नाडियाँ आंदरों के नाल को लेकर चला जा ॥ ९४ ॥ जिन से जलों को क्षोभ होता है ऐसे त्रिकाल स्नानों को प्रणाम है संसार के अनेक व्यवहारों को और अनेक प्रकार के मरणों को भी प्रणाम है तुम मेरे सब ही पुराने मित्र हो ॥९५॥ अब प्राणभी चलेंगे प्राणोंकोभी प्रणाम है तुह्मारे साथ मैंने भी बहुत योनियोंमें भ्रमण किया है पर्वतोंके कुंजों में और लोकांतरोंमें देशांतरोंमें नगरों में अनेक प्रकारोंकी मार्गयात्रा में विश्राम किया है स्थिति करी है यात्रा करी है ॥ ९६ ॥ यह ब्रह्मांड में सो नहीं है जा मैं ने तुह्मारे साथ नहीं किया है और करने बाकी रहा है गमन किया है नहीं गमन किया है दिया है और नहीं दिया है आलंबन किया है नहीं आलंबन किया है अब तुम अपनी दिशा को जाओ मैं अपनी दिशाको जाताहूं अब हमारा तुह्मारा संबंध हो रहा है ॥ ९७ ॥ जितने संग्रह किये हैं सो क्षयकरके अंतको प्राप्त होते हैं ऊंची पदवी संपदाकी चढाई उतरनेसे पात होने से अंतको प्राप्त होती है संयोग इष्ट जनोंका समागम वियोग करके अंतको प्राप्त होते हैं यह संसारका मार्ग है॥९८॥यह नेत्रोंका प्रकाश सूर्यमंडलमें जावे नासिकाकी गंध लेनेकी शक्ति बन के पुष्पोंमें चलीजावे प्राण पवनका चलना वायुमें लीन होवे करणोंका शब्द श्रवणकी शक्ति आकाश मंडलमें चली जावे॥९९॥मेरी जिव्हा की रस ग्रहण की शक्ति चंद्रमंडलमें चली जावे हे रामजी! तिससे उपरांत वीतहव्य मुनि अज्ञान मात्र को भी त्यागन करता भया प्रातःकाल के आकाश जैसा निर्मल होता भया॥४००॥तिसको तब केवल प्रकाशमान तेज भासता भया सो मुनि क्षणमात्र तेजको विचारके तेज के फुरने को भी त्याग नहीं करता भया ॥ १ ॥ फिर मन करके तिस अवस्था को लाँघ कर क्षण मात्र में काल की कलपना को लँघता भया फिर केवल चैतन्य का फुरणा मात्र हुआ फिर शब्दकी पश्यंती

पद को प्राप्त हो करके सुषुप्ति की प्राज्ञ अवस्था को प्राप्त हो करके पर्वत की नाईं अचल हुआ ॥ २ ॥ फिर तुरीय पद को प्राप्त हुआ फिर आनंदसे रहित और आनंदमय हुआ सत्ता से रहित और सत्तामय हुआ किञ्चिन्मात्र से निह किंचिन्मात्र हुआ न प्रकाश रूप न तमोरूप हुआ न चैतन्यरूप और अचैतन्यरूप हुआ यहाँ नाना प्रकरण ही हैं ऐसी श्रुतिके निषेध पदवी को प्राप्त हो कर वाणी के और मन के अगोचर हुआ ॥ ३ ॥ तब सो सर्वत्र समान और सर्व व्यापी और परम पवित्र और सर्व भावों के अंतर्गत सब से रहित हुआ ॥ ४ ॥ जो शून्य वादियों का शून्य है ब्रह्म वेत्ता पुरुषों का ब्रह्म है विज्ञान वादियोंका विज्ञान है सांख्य दृष्टिवालों का पुरुष योगवादियोंका ईश्वर शिवाद्वैत वादियों का अद्वैत शिव काल वादियों का काल है आत्म वादियों का आत्मा है अनात्म वादियों का अनात्मा है मध्यम वादियों का मध्यम है ॥ ५ ॥ सम चित्तों का समरूप है जो सर्व शास्त्रों का सिद्धांत है जो सबके हृदयों में विराजमान है जो सर्वरूप है सर्व जगत है जो कुछ कहने में श्रवण करने में आवे सो वीतहव्य मुनि हुआ ॥ ६ ॥ तिस से परे उत्तम नहीं है जो तेजों को भी प्रकाश करता है और अनुभव मात्र है जो एक है और अनेकरूप है सर्व जनोंके रंजन करने से नहीं रंजन करने से रहित है जो सर्वरूप है और सर्वरूप से रहित है जो जो कुछ है सो २ कुछ नहीं है सो सो वीतहव्य मुनि हो चुका ॥ ७ ॥ जो जन्मसे रहित है और जगतसे रहित है जो एक है और अनेक है निर्मल है कलासहित कलारहित है आकाश से भी निर्मलरूप है ऐसा ईश्वररूप क्षणमात्र करके स्थित हुआ ॥ ८ ॥

इति वीतहव्योपाख्यानम्.

हे रामजी! जो यह संपूर्ण मैं ने तेरे ताईं पहिले वर्णन किया है और

अब भी वर्णन करता हूँ और आगे भी वर्णन करूंगा सो संपूर्ण त्रिकाल दर्शी जो मैं हूँ चिरकाल जीवनेवाला हूँ मैं ने जो कुछ विचारा है सो सब मैंने देखा है सो तेरे प्रति कहा है ॥ ९ ॥ हे महामते ! हे रामजी ! तू इस निर्मल दृष्टि को धारण करके ज्ञान को प्राप्त हो ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है ज्ञान से अज्ञान क्षय होता है ज्ञान से परम सिद्धि प्राप्त होती है ज्ञान से दुःख नष्ट होता है और किसी से सिद्धि नहीं होती है ॥ ४१० ॥ हे रामजी ! वीतहव्य मुनि ज्ञान करके संपूर्ण अज्ञान दशा को दूर करके सिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥

श्रीरामजी का प्रश्न—हे ब्रह्मविदांवर ! जीवन्मुक्त देहधारियों को आकाश में उडने आदि की शक्ति कैसे नहीं देखी है यह मुझ से कहो ॥ १२

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! जो आकाशगमनादिक सिद्धि का समूह है सो संपूर्ण क्रिया का और वस्तु का स्वभाव है सो आत्मवेत्ता पुरुषों ने नहीं माना है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! जो आत्मवेत्ता भी नहीं है और मुक्त भी नहीं हुआ है तो भी द्रव्यशक्ति, कर्मशक्ति, क्रियाशक्ति और कालशक्ति से आकाशगमनाद सिद्धि को प्राप्त होता है आत्मवेत्ता पुरुष इस सिद्धि को आदर नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी ! आत्मवेत्ता पुरुषों का यह विषयभोग नहीं है आत्मा विषे ही रत होते हैं आत्मविचार करके आत्मज्ञान के सुख में तृप्त रहते हैं अविद्या के विलास में प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ इतने जगत् के योगसिद्धि आदिक भाव हैं तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन को अविद्या से प्रगट भये को जानते हैं जिन्होंने अविद्या त्यागी है और आत्मवेत्ता हैं सो इनमें प्रीति कैसे करे हैं ॥ १६ ॥ हे रामजी ! द्रव्य की युक्ति देश की युक्ति क्रिया की युक्ति काल की युक्ति यह सब युक्ति भली हैं तो भी परमात्मपद की प्राप्ति में उपकार नहीं करती हैं ॥ १७ ॥

श्रीरामजी श्रीवसिष्ठजी प्रति प्रश्न करते हैं.

हे ब्रह्मन्! चित्त का अस्त होने से मैत्री करुणादिक उत्तम गुण किस को और किस प्रकार करके फुरण होते हैं यह चित्त के धर्म हैं चित्त बिना कहाँ फुरण होते हैं ॥ १८ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! चित्त का नाश दो प्रकार का है एक स्वरूपसहित है और एक स्वरूपरहित है जीवन्मुक्त को स्वरूपसहित है और विदेह मुक्त को स्वरूपरहित है ॥ १९ ॥ हे रामजी! संसार की सुखदुःखों की दृष्टि जिस धीर पुरुष को समदृष्टि से आत्मचिंतन से नहीं चला सकती है जैसे श्वास के पवन पर्वत को नहीं चला सकते हैं तिस पुरुष के चित्त को हम लोग नष्ट हुआ जानते हैं ॥ २० ॥ सो यह है इसमें इस प्रकार की चिंता जिस पुरुष को व्याकुल नहीं करती है उस के चित्त को नष्ट हुआ मानते हैं ॥२१॥ जिस पुरुष को आत्मा की कृपणता और उद्यम और मद और ईर्ष्या और हर्ष भिन्नवृत्ति नहीं करते हैं तिस के चित्त को नष्ट हुआ जानते हैं ॥ २२ ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष को मनोनाश होने से अंतःकरणरूपी हिमाचल में मैत्री आदि गुणों की संपदा वसंत ऋतु में वृक्षों के नये दलों की नाईं आप ही प्रकट होती है ॥ २३ ॥

श्रीरामचंद्रजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति.

हे ब्रह्मन्! यह संसार नाम करके दुःख की लता है वह कैसी है अत्यंत विस्तार स्वरूपवाली है इस के मूल दृढ प्रकट हुए हैं मोहरूपी जल के सिंचन से वृद्ध हुई है इसका बीज क्या है उस बीज का भी बीज क्या है और बीज के बीजका भी क्या बीज है सो मुझ को कहो ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी ! अंतःकरण में लीन हुए हैं उत्पत्ति के महाआरंभ जिस के, शुभ अशुभ कर्म महाअंकुर है जिस के ऐसा शरीर ही संसारलता का बीज है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! उत्पन्न होने और नाश होने की दशा का भंडार है दुःखरूपी रत्नों का संपुट है और आशा के वश से प्रवृत्त होताहै ऐसा चित्त ही शरीर का बीज है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी वृक्ष कैसा है नाना प्रकार की वृत्तिरूपी लता को धारण करता है इस के दो बीज हैं एक प्राणों का चलना है दूसरी दृढ भावना है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जिस काल में नाडीमार्ग में प्राण नहीं चले तो फुरण होने के अभाव से चित्त अंदर नहीं रहता है ॥ २८ ॥ हे रामजी ! दृढ भावना करके आदि अंत की विचारणा त्याग करके पदार्थ का जो ग्रहण करना सो वासना कही है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! पदार्थ की भावना के तीव्र वेग से वासना का निरंतर प्रवाह होता है तो और संपूर्ण ज्ञान भूल जाता है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इस चित के दो बीज हैं प्राणों का चलना और वासना इन दोनो में एक क्षीण होने से दोनो ही शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! वासना के वश से प्राण चलता है प्राण के वश से वासना चलती है यह दोनों चित्तवृक्ष के बीज और अंकुर हैं ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! हृदय में संवेदन के फुरणे को पा करके प्राण का चलना और वासना दोनो उदय होते हैं संवेदन को फुरणा ही इन दोनों का बीज है ॥ ३३ ॥ अहंभाव का फुरणा त्यागने से प्राण का चलना और वासना दोनों मूल सहित नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! अहंभाव ही फुरणे का बीज है अहंभाव विना फुरणा नहीं होता है जैसे तैल विना तिल नहीं रहता है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! अहंभावरूपी वस्तु का अवलंबन जिस को नहीं है सो पुरुष फुरणे से रहित हुआ है सो चाहे हजारों कार्य करे

तो भी निर्विकार होता है ॥ ३६ ॥ हे रामजी! जिस का हृदय अहंभाव करके किंचित् मात्र भी लिप्त नहीं होता है उस का फुरणा सत्य ज्ञानरूप है सो जीवन्मुक्त कहा है ॥ ३७ ॥ हे रामजी! इस ज्ञान के फुरणे का बीज सत्तामात्र चैतन्य कहा है सत्तामात्र चैतन्य से ज्ञान का फुरणा होता है जैसे तेज से प्रकाश होता है ॥ ३८ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजी के प्रति प्रश्न करते हैं.

हे ब्रह्मन्! हे मेरा मान करनेवाले!! तुम ने यह सब ही बीज कहे हैं किस का प्रयोग करके आत्मपद शीघ्र होता है यह मुझ को कहो ॥ ३९ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! केवल सत्तामात्र की कोटी में स्थित होने से पौरुष के यत्न करके बल से वासना को त्याग करके आत्मपद शीघ्र प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ हे रामजी! तू जिस क्षण में तत्त्व जान करके सत्तामात्र में स्थिति करेगा उसी क्षण में भली प्रकार करके आत्मपद को पावेगा ॥ ४१ ॥ सत्तामात्र का स्वरूप ईश्वरादिक सविकल्प चैतन्य में स्थिति करेगा तो बहुत यत्न करके भी आत्मपद को पावेगा ॥ ४२ ॥ हे रामजी! सत्तामात्र चैतन्य में ध्यान करके रहेगा तो अधिक यत्न करके ऊंची आत्मपदवी को पावेगा ॥ ४३ ॥ हे रामजी! वासना के त्यागने में तू यत्न करेगा तो तेरी संपूर्ण चिंता और रोग क्षण में शिथिलता को प्राप्त होवेंगे ॥ ४४ ॥ हे रामजी! पहिले जो यत्न कहे हैं तिन से यह यत्न कठिन है. हे रामजी! वासना का त्याग सुमेरु पर्वत के उठाने से भी कठिन है ॥ ४५ ॥ हे रामजी! जबलग मन लीन

हीं हुआ तबलग वासनाक्षय नहीं होता है जबलग वासना क्षीण नहीं हुई तबलग चित्त क्षीण नहीं होता है ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! जबलग तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तबलग चित्तका उपशम कहाँ होता है जबलग तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई तबलग वासना का क्षय नहीं होता है ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञान और मन का नाश और वासना का नाश यह तीन आपस में तीनों के कारण हैं यह तीनों असाध्य ही स्थित हैं ॥४८॥ हे रामजी ! तिस कारण से विवेकसहित पौरुष करके भोगों की इच्छा को दूर से त्याग करके यह तीनों ही सेवने योग्य हैं ॥४९॥ हे रामजी ! यह तीनों हो भले प्रकार वारंवार अभ्यास नहीं किये तो अनेक यत्नों करके और अनेक वर्षों करके भी परमपद की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ४५० ॥ हे रामजी ! वासना के परित्याग के बरोबर प्राणायाम को तत्त्ववेत्ता जानते हैं तिस से प्राणायाम भी करे ॥५१॥ हे रामजी ! वासना का परित्याग से चित्त जो है सो अपने चित्तभाव को त्यागन करता है और प्राणायाम से भी चित्तनाश होता है तिस से दोनों में जो तू चाहे सो कर ॥५२॥ हे रामजी ! व्यवहार में असंग होने से संसार के भाव त्यागने से शरीर का नाश देखने से वासना प्रवृत्त नहीं होती है ॥५३॥ हे रामजी ! वासना का नाश होने से चित्त प्रवृत्त नहीं होता है जैसे पवन के चलने विना गरद आकाश में नहीं चढती है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! प्राणायाम का दृढ अभ्यास की युक्ति करके सद्गुरु की कृपा करके युक्ति करके प्राणायाम होता है ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! प्राण के चलने के जीतने में यत्न बुद्धिवान् पुरुष को अवश्य करके करना एकाग्र चित्त करके वारंवार यत्न करना ॥ ५६ ॥ अथवा प्राण रोकने के क्रम को त्याग करके जो तेरे को रुचे तो चित्त को ही रोकने चाहे तो बहुत काल करके उच्च पद को प्राप्त होवेगा ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! उत्तम युक्ति विना मन जीता नहीं

जाता है जैसे मतवारा दुष्ट हाथी अंकुश विना नहीं जीता जाता है ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञान की प्राप्ति और सत्पुरुषों की संगति और वासना का त्याग और प्राणों का रोकना यह युक्तियां चित्त के जीतने में बलवान् हैं इन्ह करके चित्त जीता जाता है जैसे वर्षा की धारों करके पृथिवी की गरद दूर होती है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! यह युक्तियां होने से हठ करके इन्ह युक्तियों को त्याग करके अंजन की मुष्टि करके अंधेरा दूर करने चाहते हैं ॥ ४६० ॥ हे रामजी ! जो पुरुष चित्त को नहीं जीतते हैं सो पुरुष यज्ञों करके तपों करके दानों करके और तीर्थयात्रा करके देवपूजा करके अनेक उपाधि चिंता करके वनमृगों की नाई वृथा कालक्षेप करते हैं ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! चलते का स्थित हुए का जाग्रत हुए का शयन करने का जिस पुरुष का विचारयुक्त चित्त नहीं है सो पुरुष मृत हुआ जानना ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! यह जगत् क्या है यह देह क्या है ऐसी ज्ञानदृष्टि करके निरंतर विचार करके आप विचार कर और संतजनों के साथ विचार कर ॥६३॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् जो पुरुष है सो आनंद करके उदित रहता है संसार के मोहजाल में कहीं भी मग्न नहीं होता है सदा असंग रहता है अपने आत्मा करके चक्रवर्ती राजा की नाईं सबसे ऊपर विराजमान होता है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! जो कोई आत्मज्ञानी आत्मका प्राण हरनेवाला है और जो कोई धन को और सुख को देनेवाला है तिन दोनों को आत्मवेत्ता पुरुष प्रीति करके मधुर समदृष्टि करके देखता है ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! सो आत्मवेत्ता पुरुष संपूर्ण शुभ और अशुभ वस्तु के समूह विषे समदर्शी होता है अंतःकरण में उदारचित्त होता है व्यापार करने में संसार के क्रम करके युक्त है परंतु अंतर्दृष्टि करके कुछ नहीं करता है ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! अथवा संपदा को प्राप्त होवे अथवा आपदा को प्राप्त होवे परंतु उदार-

बुद्धि पुरुष सब को स्वप्न समान जान करके अपने स्वभाव को नहीं त्याग करता है जैसे क्षीरसमुद्र मंदर पर्वत करके मंथन भी किया है तौभी उसने अपनी उज्वलता और श्वेतवर्ण को नहीं त्याग किया ॥ ६७ ॥ हे रामजी! सो पुरुष चक्रवर्ती राज्य को पा करके अथवा महा आपदा को पा करके सर्पयोनि को पा करके इंद्रपदवी को पा करके हर्षरहित होता है और खेद से हित होता है जैसे चंद्रमा कला के बढने और घटने में नाश को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे रामजी! तू अपने आत्मा को संपूर्ण आरंभों से रहित जान और अनेक भेद से रहित जान और शान्तरूप जान नाना प्रकार कर्मफलों से सहित जान नाना प्रकार रूप वेशसे रहित जान और उदारचित्त हो तिस करके उत्तम दशा जो मोक्ष तिस को प्राप्त होवेगा ॥ ६९ ॥ हे रामजी! जो मैंने तेरे प्रति आत्मज्ञान उपशमसहित कहा है इस से कामादिकों से रहित भई ऐसी प्रकाश भई बुद्धि करके निर्मल आत्मपद को पा करके शुद्ध आत्मदृष्टि करके इस संसार में अनेक जन्म बंधनों करके बद्ध नहीं होवेगा ॥ ४७० ॥

इति श्रीमोक्षोपाये वासिष्ठसारे वसिष्ठराघवसंवादे उपशमप्रकरणं पञ्चमं समाप्तम् ॥ ५ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार

अथ षष्ठं निर्वाणप्रकरणम्।

वाल्मीकजी भारद्वाज प्रति कहते हैं.

हे भारद्वाज! उपशमप्रकरण के उपरांत तू छठे निर्वाण प्रकरण को श्रवण कर कैसा है ज्ञान करके निर्वाण पदवी को देनेवाला है ॥ १ ॥ चतुर्दश दिन में प्रातःसमय सभा में आ प्राप्त हुए-

श्रीरामचंद्रजी को वसिष्ठजी कहते भये.

हे रामचंद्रजी! अब तत्त्वबोध वास्ते मैंने तेरे प्रति निर्वाण प्रकरण कहा है. हे दुष्ट शत्रुन को मारनेवाले! तुम इस निर्वाण प्रकरण को सावधान मन होकर श्रवण करो ॥ २ ॥ हे रामजी! वैराग्य के अभ्यास के वश से वासना के त्याग से तैसें आत्मतत्त्व के बोध से संसारसमुद्र तरा जाता है तिस से तुम तिन तीनों में ही अभ्यास करो ॥३॥ हे रामजी! देह में जबलग अहंकार है और दृश्य पदार्थ स्त्री-पुत्र-धनादिक में जबलग आत्मभावना है और जबलग इन पदार्थों में ममता बनी है तबलग चित्तादिकों का भ्रम क्षीण नहीं होता है ॥ ४ ॥ हे रामजी! जबलग तू सब से अधिक आत्मतत्त्व को नहीं प्राप्त हुआ जबलग सत्संग से तेरी मूर्खता क्षीण नहीं हुई तबलग चित्तादिकों करके तुझ को दीनता बनी है ॥ ५ ॥ हे रामजी! जबलग आशारूपी सर्पिणी के विष का मोह हृदयरूपी मंदिर में है तबलग विचाररूपी चकोर हृदयमंदिर में प्रवेश नहीं करता है ॥ ६ ॥ हे रामजी! जो पुरुष देहादिकों की स्तुति नहीं करता है और विश्वास भी नहीं करता है और तत्त्ववस्तु करके नहीं देखता है दूरसे भी दूर असत्य देखता है उस का चित्त लीन हो जाता है ॥ ७ ॥ हे रामजी! जो पुरुष अंतःकरण में आत्मपरायण होता है, चैतन्यरूपी अग्नि में त्रैलोक्यरूपी तृण को होम करता है, ऐसे मुनिवृत्तिवाले पुरुष के चित्तादिकों के भ्रम निवृत्त होजाते हैं ॥८॥ हे रामजी! काष्ठ और तृण आदिक जो हैं सो कुहाडे से छेदने से वारंवार अग्नि करके दाह होने से फिर भी उत्पन्न होते है परंतु ज्ञानरूपी अग्निसे दग्ध हुआ मन फिर नहीं उदय होता है॥९॥हे रामजी! जो संसार के व्यवहार में अपने साथ शत्रुभाव करता है सो अपने पाप हरने करके नरक में से तारने को उदय भया जानना जो पुरुष तिस को इष्ट-मित्र कैसा देखता है सो ही भला

देखता है ॥१०॥ हे रामजी! जो पुरुष संसारी लोगों की प्रीति को और वैर को अंतःकरण से निर्मल करता है जैसे नदी अपने तट के वृक्षों को निर्मूल करती है सो पुरुष सर्व दोषों को नाश करनेवाला है ॥ ११ ॥ हे रामजी! जिस को देह में अहंकार नहीं है तिस की बुद्धि कर्म करने में लिप्त नहीं होती है सो पुरुष इन सब लोगों को मारे तो भी हत्यादोष से बद्ध नहीं होता है ॥ १२ ॥ हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी शास्त्र के मंत्र को अंतःकरण में भावना करके धारण करने तृष्णारूपी विष की विषूचिका रोग क्षीण होता है जैसे शरदृतु में ओस गलजाती है ॥ १३ ॥ हे रामजी! जो निरंतर संपदा हैं निरंतर आपदा हैं, जो बालक अवस्था, युवा अवस्था, वृद्धा अवस्था और मरण की अवस्था से लेकर संताप हैं, जो अनेक सुखदुःखों की परंपरा करके मग्न होना है यह सब ही घोर अज्ञान के अंधकार की विभूति है ॥ १४ ॥ हे रामजी! इन सबन का मूलकारण अविद्या है सो प्रकृति कही है तिस को तुम तीन गुणों के धर्मवाली को जानो सो तीन गुणों को तुम सुनो एक सत्त्वगुण दूसरा रजोगुण तीसरा तमोगुण यह तीन प्रकार का गुणों का भेद है ॥ १५ ॥ हे रामजी! यह अविद्या गुणभेद से नव प्रकार के भेदवाली है जो कुछ यह देखने में श्रवण में जगत् है सो सब ही इस अविद्या ने ही विस्तार किया है ॥ १६ ॥ हे रामजी! ऋषि, मुनि, सिद्ध, नाग, विद्याधर और देवता यह अविद्या का सात्विक भाग है ॥ १७॥ हे रामजी! इस अविद्या के सात्विक भाग के भी नाग और विद्याधर यह तमोगुण में हैं, मुनि और सिद्ध रजोगुण में हैं शिवजी से आदि देवता सत्त्वगुण में हैं ॥ १८ ॥ हे रामजी! यह आत्मा ही अपना स्वरूप जानने विना संसार में भ्रमता रहता है और सो ही आत्मा अपने स्वरूप को जाने तो संपूर्ण ज्ञान की अवधि को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ हे रामजी! स्था-

वर योनि जो है और पशु पक्षी जो हैं यह सब ही जड धर्मवाले हैं सदा सुषुप्तिपद में आरूढ हुए हैं ज्ञान से रहित हैं वारंवार जन्म को पानेवाले हैं ॥ २० ॥ हे रामजी! यहां वासना का बीज रहा है सो सुषुप्ति जानना ज्ञान से मोक्ष से रहित है यही वासना निर्बीज हुई है सो तुरीया कही है सो मोक्ष की सिद्धि को देती है ॥ २१ ॥ हे रामजी! वासना, अग्नि, स्नेह, शत्रु और विष यह सब ही ज्ञानके तृण के, असंगता के, सुजनता के और जीवन के साथ विरोध करते हैं तिस से अल्प प्रमाण भी शेष रहे तौभी बाधा करता है तां इनका शेष थोडा भी नहीं रखना ॥ २२ ॥ हे रामजी! जिस की वासना का बीज दग्ध हुआ है, सामान्य सत्ता मात्र रूप हुआ है सो पुरुष देहसहित होवे भावे देह रहित होवे सो फिर जन्मादि दुःख का भागी नहीं होता है ॥ २३ ॥ हे रामजी! जब अविद्या रूप से रहित देखो तब ही शीघ्र गल जाती है जैसे बर्फ का पिंड सूर्य की धूप में गल जाता है ॥ २४ ॥ हे रामजी! यह देह रक्त, मांस और अस्थियां इन का यंत्र बना है इस में मैं कौन हूँ ऐसा जब आप ही विचार करे तो अविद्या तत्क्षण ही सर्व प्रकार की लीन होती है ॥२५॥ हे रामजी! यह प्रपंच आदि में और अंत में असत्यरूप है इस प्रकार करके सब प्रपंच को असत्य जानने से जो सत्यरूप रूप बाकी रहे तिस को अविद्या क्षय होने का साक्षी जाने ॥ २६ ॥ हे रामजी! इस अविद्या का स्वरूप अपने नाम करके स्वभाव करके रहित जानता है. हे रामजी! जिह्वा का स्वाद जिह्वा विना और किसी से नहीं प्रतीत होता है ॥२७॥ हे रामजी! अविद्या तो कहीं नहीं है यह सब ही एक अखंड परब्रह्म है जिस से सत् और असत् सबही विस्तारयुक्त प्रकाश किया है ॥ २८ ॥ हे रामजी! घट, पट, गाडी, नाव और सब ही जो कुछ दृष्टिगत होता है यह आत्मा नहीं है सब भिन्न

भिन्न है ऐसा कहने से अविद्या उदित होती है जो ऐसा विचारे यह घटपटादि सब ही परब्रह्म है ऐसा विचार करने से अविद्या गलित होती है ॥ २९ ॥ हे रामजी! मैं तुह्मारे प्रति आत्मज्ञान वास्ते वारंवार कहता हूं कि हे रामजी! अभ्यास विना आत्मभावना का उदय नहीं होता है ॥३०॥ हे रामजी! सो अविद्यारूपी लता तेरे हृदयरूपी वृक्ष में आरूढ भई है इस को ज्ञान के अभ्यास के विलासरूपी खड्गप्रहारों करके मोक्षसिद्धि वास्ते छेदन करो ॥ ३१ ॥ हे रामजी! जनक राजा ज्ञेय वस्तु को जान करके आत्मज्ञान के अभ्यास में तत्पर हुआ जैसे विहार करता हुआ तैसे तू भी आत्मज्ञान के विलास करके विहार कर ॥ ३२ ॥ हे रामजी! जिस आत्मज्ञान का निश्चय करके विष्णु अनेक अवतार ले करके पृथ्वी में विहार करता भया और शिवजी गौरी को अर्ध अंग में धारण करके आत्मनिश्चय करके विहार करता है, जो निश्चय ब्रह्मा को सृष्टि करने में भी स्थिर रहता है तिस को तू भी धारण कर ॥ ३३ ॥ जो निश्चय विद्या पठन करते बृहस्पति को है, जो दैत्यगुरु शुक्र को है, जो सदा भ्रमण करनेवाले सूर्य को है, जो चंद्रमा को है, जो पवन और अग्नि को है, जो नारद और पुलस्त्य मुनि को है, जो मुझ को और अंगिरा मुनि को है, जो प्रचेता और भृगु को है, जो निश्चय क्रतु को, अत्रि को और शुकजी को है ॥ ३४ ॥ हे रामजी! जो निश्चय और राज्य करते राजऋषियों को है और तप करते ब्रह्मऋषियों को जीवन्मुक्तों को है, सो निश्चय तुम को भी होवे ॥३५ ॥ हे रामजी! जो ब्रह्मवेत्ता है सो भी ब्रह्म है सब लोक भी ब्रह्म है सब भूत भी ब्रह्म है हम भी ब्रह्म है तुम भी ब्रह्म हो और हमारा शत्रु और मित्र और बांधव भी ब्रह्म है ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! अज्ञानी को सर्व जगत् दुःखमय है और आत्मज्ञानी को सर्व ब्रह्मांड आनंदमय है जै-

से अंधे को जगत् अंधकारयुक्त है और नेत्रवाले को सदा प्रकाश युक्त है ॥ ३७ ॥ हे रामजी! जैसे बर्फ, ओस, बिंदु, किणके, तरंग, लहरी, और फेन यह सब जल से प्रकट हुए हैं और जलरूप हैं और जल में ही हैं तैसे ही जो देह है और जो इंद्रियां हैं, जो देखते हैं, जो बालपना से लेकर अवस्था हैं, जाग्रतादि अवस्था हैं, जो क्षय और वृद्धि हैं, जो जन्म-मरण है, जो ज्ञान और अज्ञान है, जो बंध-मोक्ष है सो सब ही ब्रह्मरूप है और ब्रह्म ही है ॥ ३८ ॥ हे रामजी! ब्रह्मवेत्ता पुरुष जो हैं सो ब्रह्म को कर्म से और कर्ता से करने से और कारण से सहित और निर्विकार और स्वयंप्रकाश अपने आत्मा को जानते हैं ॥ ३९ ॥ हे रामजी! रक्त भी हम हैं और मांस भी हम हैं अस्थियां भी हम हैं और देह भी हम हैं और चैतन्यता भी हम हैं और ब्रह्म भी हम हैं ऐसी सत्य भावना है ॥ ४० ॥ हे रामजी ! आकाश भी हम हैं और स्वर्ग भी हम हैं और सूर्य, चंद्रमा, तारा भी हम हैं और दिशा, पृथिवी भी हम हैं और घटपटस्वरूप करके हम ही ब्रह्म हैं यही सत्य भावना है ॥ ४१ ॥ हे रामजी! हम चैतन्यरूप आत्मा की उपासना करते हैं और कैसा है आत्मा सर्व संकल्प के फल को देनेवाला है और सर्व जगत् को प्रकाश करता है सर्व ग्रहण करने योग्य पदार्थ की अवधि का अंत है ॥ ४२ ॥ हे रामजी! फिर कैसा है चिदात्मा, सर्व अवयवों में विश्रांत है, सर्व अवयवों से परे है, निरंतर चैतन्यरूप है ॥ ४३ ॥ हे रामजी! घट में और पट में, तीर में और कुहा में समान वर्तमान हैं और जाग्रत में भी सुषुप्ति जैसा अचल है ॥ ४४ ॥ अग्नि में उष्णरूप है और बर्फ में शीतलरूप है, अन्न में स्वादरूप है और अंधेरे में कृष्णरूप है चंद्रमा में श्वेतरूप है ॥४५॥ हे रामजी! सूर्य में तेजरूप है और अंदर और बाहिर में समान प्रकाशरूप है जो भी समीप है तो भी दूर है ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! मधुर

आदिक रसों में मधुररूप है तीक्ष्ण आदिक रसों में तीक्ष्ण-रूप है सब ही पदार्थों के समूहों में व्याप्त है ॥ ४७ ॥ हे रामजी! जाग्रत में, स्वप्न में स्थित है, तुरीया में भी है, तुरीया से परे पद में भी है सदा सत्तारूप करके व्याप्त है ॥ ४८ ॥ फिर वह कैसा है चिदात्मा जिस के सर्व संकल्प शांत हुए हैं सर्व कौतुकों से रहित है संपूर्ण आरंभ जिसके गत भये हैं ॥ ४९ ॥ फिर वह कैसा है चिदात्मा निष्कौतुक है और निरारंभ है निश्चेष्ट है निस्पृह है सर्वगत है निरवयव है और निराकार है सर्व जगत् के अंतर्गत है अपार है एकरूप है अमर्याद है और चैतन्यता का आरंभरूप है ॥ ५० ॥ हे रामजी! यह सब जगत् मैं हूँ यह मेरा है सब ही एकरूप हम और तुम यह सब ही कल्पना मात्र है ऐसा विचार करनेवाले मुझ को कृतकृत्यता हुई है जगत भावे स्थित होवे भावे नष्ट होजाय मैं अब चिंताज्वर से रहित हुआ हूँ ॥ ५१ ॥ हे रामजी! महात्मा पुरुष जो भये हैं सो ऐसे निश्चयवान् मुक्त हो करके सर्व व्यसनों से रहित हुए सत्य और असत्यरूप पद में संशयरहित हुए सम सुख में स्थित हुए शांतपद में प्राप्त हुए ॥ ५२ ॥ हे रामजी! इस प्रकार करके धीर पुरुष पूर्णबुद्धि समदृष्टि हुए और रागद्वेष से रहित हुए जीवित में और मरण में भय और प्रीति को नहीं करते भये ॥ ५३ ॥ मोहस्थान में मोहित नहीं होते भये और आपदा में मगन नहीं होते भये और शोकों करके रोदन नहीं करते भये शुभप्राप्ति में हर्ष को नहीं प्राप्त होते भये जैसे तुम पूर्णचित्त होने से पूर्णचित्त होते भये ॥ ५४ ॥ हे रामजी! प्रसंग से प्राप्त भये कर्म को केवल करते भये परंतु आसक्त नहीं होते भये आरंभ से रहित होते भये दूसरे मानो मेरुपर्वत है ऐसे दृढ और अचलचित्त होते भये ॥ ५५ ॥ हे रामजी! जैसी ज्ञानदृष्टि जनकादि को रही तिसी ज्ञानदृष्टि को तुम पा करके अहंकार से र-

हित हो करके जैसा क्रम व्यवहार को प्राप्त होवे तैसे कर्म को करो सुख करके विहार करो ॥ ५६ ॥

श्रीरामचंद्रजी का प्रश्न श्रीवसिष्ठजी प्रति

हे ब्रह्मन्! भले प्रकार करके ज्ञान का विलास करके वासना का लय होने से मैं अब जीवन्मुक्तपद में निश्चय करके विश्रांत भया हूँ ॥५७॥ हे गुरुजी! यह मुझ को संशय है प्राणायाम करके वासना का लय होने से जीवन्मुक्तपद में विश्राम कैसे होता है यह मुझ को कहो ॥५८॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी के ताईं कहते भये

हे रामजी! किसी को योग असाध्य है और किसी को ज्ञान का निश्चय असाध्य है हे साधो! मेरा यही मत है प्राणायाम के योग से ज्ञान का निश्चय सुख करके साध्य है ॥ ५९ ॥ हे रामजी! प्राणवायु का और अपानवायु का रोक करके देह की दृढता करके और अंतःकरण की एकाग्रता करके योग भी अनंतसिद्धि को जिस प्रकार देता है तिस को भी तुम श्रवण करो ॥ ६० ॥ हे रामजी! मेरु पर्वत की पद्मराग की ईशान कोण में आम्र नामक कल्पवृक्ष है उस के नीचे सुवर्णमय पृथ्वी है तिस की दाक्षिण दिशा को शाखा के कोटर में निवास जिस का ऐसा भुशुंड नामा काकसा चिरंजीवी नाम पक्षी भया न तो ऐसा कोई आगे होना है ऐसी चिरंजीवियों की कथा प्रसंग में इंद्र की सभा में शांतातप मुनि से श्रवण करके काक भुशुंड के स्थान में प्राप्त भये मुझ को भुशुंड काक उठ कर के आगे आ मिला अपने संकल्प से प्रकट हुए दोनों हाथ करके पाद्य, अर्घ्य, आसन, गंध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नीराजन, पुष्पांजलि, प्रणाम, प्रदक्षिणा करके पूजा करके अपने हाथ करके दिया. कल्पवृक्ष के दलों के आसन ऊपर बैठे को अत्यंत प्रेम करके

मधुर अक्षरयुक्त वचन कहता भया. काक भुशुंड कहता है, हे भगवन्! अहो आनंद भया है, तुम ने चिरकाल से मेरे को बहुत अनुग्रह दिखाया है दर्शनरूपी अमृत का सिंचन करके कल्पवृक्षसहित मुझ को अभिषेक किया है ॥ ६१ ॥ हे मुने! मेरे चिरकाल से किये पुण्य के समूह करके तुम प्रेरित किये हो तो तुम ने कहीं से आगमन किया है॥६२॥हे मुने! तुम मान्यजनों के भी मान्य हो इस महामोह के संसारसमुद्र में चिरकाल से विहार करते हो तुम्हारे चित्त के समभाव की स्थिति अखंडित होना ॥ ६३ ॥ हे मुने! तुम ने आने के क्लेश करके शरीर को क्यों खेद किया है. हम तुह्मारे वचन सुना चाहते हैं हम को आज्ञा कहने योग्य है ॥ ६४ ॥ हे मुने! अब मेरे को तुम्हारे दर्शन से ही सर्वज्ञता भई है तुह्मारे आवने के पुण्य करके तुम ने हम को सावधान किया है ॥ ६५ ॥ हे मुने! तुम्हारे आवने का कारण हम ने जाना है चिरंजीवियों की कथा वार्ता में चिरकाल से हमारा स्मरण तुम को भया है तिस कारण से यह हमारा स्थान तुम्हारे चरणों करके तुम ने अब पवित्र किया है ॥६६॥ हे मुने! तुह्मारा आवनेका कारण जाना है परंतु अब तुह्मारे वचनरूपी अमृतपान की वांछा बहुत प्रकट भई है॥६७॥हे रामजी! सो भुशुंड काक चिरंजीवी त्रिकाल निर्मल ज्ञानसंयुक्त मुझ को ऐसा कहता भया तो हम ने भुशुंड काक को वचन कहा ॥ ६८ ॥ हे पक्षियों के महाराज! तुम ने सत्य वचन कहा है हम तुम को आज देखने को आये हैं तुम चिरंजीवी हो अंतःकरण में शीतल हो अहो वडा आनंद है तुम को कुशल से देखा है और इस संसार की माया में मग्न नहीं भये हो सावधान चित्त हो संसार की माया अत्यंत भयानक है जन्म-मरणादि खेदों करके खंडित करनेवाली है ॥ ६९ ॥ हे भगवन्! तुम मेरे इस संशय को सत्य करके छेदन करो तुम किस कुल में जन्मे हो और

ऐसे पूर्णज्ञानी कैसे हुए हो ॥७०॥ हे भगवन्! तुह्मारी आयुषा कितनी है और तुम कितने वृत्तांत को स्मरण करते हो ऐसे चिरंजी-वी तुम हो तुम को यह निवास का स्थान किस ने दिखाया है॥७१॥

भुशुंडजी कहते भये—हे मुनियो! तुम पूछते हो सो सबही तुम को मैं कहताहूँ यह हमारी कही कथा तुम सावधान हो कर श्रवण करना ॥ ७२ ॥ हे मुने! तुह्मारे जैसे पुरुष त्रिलोक में पूजनी-य चरणारविंद है सो जिस कथाप्रसंग को श्रवण करते हैं जिस करके संपूर्ण पाप और दुःख नाश को प्राप्त होते हैं जैसे बादल की घटा उ-दय होने से सूर्य को किरणों का संताप शांत होता है अब अपना ज-न्म कहते हैं ॥ ७३ ॥ हे मुने! जया, विजया, जयंती, अपराजिता, सिद्धा, रक्ता, उत्पला और अलंबुसा ये शिवजीकी अष्ट योगिनी हैं सो अष्ट योगिनी परमानंद समाधिके वास्ते वाममार्ग करके भैरव तुं-बरू के पूजा करती भई अपने से भया शिवजी का अनादर जिस का फल ज्ञानदृष्टि का प्रतिबंध है सो अष्ट मातृका अपना प्रभा-व दिखाने के वास्ते भोजन के अर्थ शिवजी को यज्ञ में बलिप्रदान के पशु की नाईं पार्वती को मार करके देती भई फिर पार्वती को संजी-वन करके शिवजी को विवाह देती भई शिवजी को प्रसन्न करती भ-ई तिन में अलंबुसा योगिनी का वाहन चंडकाक ने मधुपान करके मत्त हो करके उस में प्राप्त भई जो सप्त ब्रह्माणी के रथ की हंसनी तिन के संग क्रीडा से इक्कीस (२१) पुत्र चंडका के होते भये ब्रह्माणी के आराधन का प्रसाद करके होते भये सबही आत्मज्ञान को प्राप्त होते भये पिता चंडकाक ने सब को निवास के स्थान दिखा दिये सब ही चिरंजीवी होते भये और परमपद को प्राप्त होते भये तिन एक विंश-ति (२१) भाइयों में एक मैं भुशुंडकाक हूं परमेश्वर की नेत करके अत्यंत चिरंजीवी हूँ जीवन्मुक्त हूं भय के निमित्त प्राप्त भये में भी भ-

यरहित हूँ जगत् की माया को देखता भी हूँ पिता ने दिखा दिया कल्पवृक्ष की लता के मंदिर में निवास करता हूँ और कालक्षेप करता हूँ आनंद से रहता हूँ ॥ ७४ ॥ हे मुने ! तुह्मारे आने से अब मैं आनंद करके पूर्णमन भया हूँ जैसे मंदरपर्वत के भ्रमण से क्षीरसमुद्र क्षीर की लहरों करके पूर्ण होता है ॥ ७५ ॥ हे मुने! इस से परे मैं अपने कुशल को और नहीं मानता हूं संपूर्ण भोगवासना का त्याग करनेवाले संत जनों का समागम जो होता है यही परम लाभ है ॥७६॥ हे मुने! यह संसार के भोग क्षणभंगुर हैं इन से क्या प्राप्त होता है ? सत्संगरूपी चिंतामणि से सर्व सार परमानंद प्राप्त होता है ॥७७॥ हे मुने! तुम कैसे हो स्नेहयुक्त, गंभीर और मन को हरनेवाले मधुर उदार और धीरवाले हो इस त्रैलोक्यरूपी कमल में तुम एक भ्रमर की नाईं विहार करते हो ॥ ७८ ॥ हे ब्रह्मन् ! हम को परमात्मा का तत्त्व प्राप्त भया है तौ भी तुह्मारे दर्शन से हमारे अशुभ कर्म शांत भये हैं आज हमारा जन्म सफल भया है, हे साधो ! संतजनों का समागम संपूर्ण संसार के भय को शांत करता है ॥ ७९ ॥ अब अपना वृत्तांत कहते हैं हे ब्रह्मन्! अनेक घोर युगों के उलट पलट होते हैं और पवन भी घोर प्रलय करनेवाले बहुत हैं तौ भी यह हमारे निवास का कल्पवृक्ष स्थिर रहता है कदाचित् भी कंपायमान नहीं होता है ॥ ८० ॥ यह कल्पवृक्ष जो है सो और लोकों में रहनेवाले सर्व प्राणियों को अगम्य है इस कारण से हम ही यहां एकांत सुख करके निवास करते हैं ॥ ८१ ॥ ऐसे उत्तम कल्पवृक्ष में निवास करते हम को संसार की आपदा कहां है ? हे मुने! श्रेष्ठ चित्त की व्याकुलता करके आपदा होती है ॥ ८२ ॥ हे मुने! जब ब्रह्माजी का दिन समाप्त होता है तब कल्प के अंत में त्रिलोकी की प्रलय होती है तब हम इस अपने निवास के कल्पवृक्ष को त्याग करते हैं जैसे कृतघ्न पुरुष

उत्तम मित्र को त्याग करता है ॥ ८३ ॥ तब मैं संपूर्ण कल्पना को त्याग करके केवल आकाश में रहता हूँ माया के संपूर्ण धर्मों को जीत लेता हूँ जैसे वासनारहित मन अचल होता है ॥ ८४ ॥ हे मुने! जब प्रलय करने को बारह सूर्य पचंड उदय होते हैं तब हम योग करके वारुणीजल की ध्यान धारणा करके शीतल हो रहते हैं ॥८५॥ हे मुने! जब जगत् को उलटा पलटा करने को प्रलयकाल के पवन प्रचंड बहते हैं तब हम पर्वतों की धारणा करके अचल हो रहते हैं ॥ ॥ ८६ ॥ हे मुने! जब सुमेरुपर्वत से आदि जगत् सात समुद्रों के एकत्र भये जल में गलित होता है तब हम पवन की ध्यानधारणा करके पवनरूप होय रहते हैं ॥ ८७ ॥ हे मुने! जब ब्रह्मा के दिनांत में ब्रह्मांड का प्रलय होता है तब हम सुषुप्ति अवस्था की अचल धारणा करके आनंदमय होते हैं ॥ ८८ ॥ हे मुने! जब ब्रह्मा दूसरे कल्प के आदि में फिर सृष्टि करता है तो मेरे संकल्पसे इस पर्वत के शिखर में फिर यही कल्पवृक्ष हमारे निवास के वास्ते प्रकट होता है ॥ ८९ ॥ हे मुने! जो जगत् का वृत्तांत मुझ को स्मरण में है सो तुम मुझ से सुनो इस पृथ्वी के मैं केवल बडे भारी वृक्ष और बडी शिला करके पूर्ण तृणवृक्षों से बन पर्वत से रहित पृथ्वी को स्मरण करता हूँ ॥ ९० ॥ हे मुने! दश हजार और दश शतवर्ष प्रमाण इस पृथ्वी को केवल भस्म करके पूर्ण भई को स्मरण करता हूँ ॥ ९१ ॥ दश हजार वर्ष प्रमाण मृत भये दैत्यों की अस्थियों करके पूर्ण भई पृथ्वी को स्मरण करता हूँ ॥ ९२ ॥ इस प्रकार करके चार युगप्रमाण घने पर्वतों करके पूर्ण भई लोकों के संचार से रहित इस पृथ्वी को स्मरण करता हूँ ॥ ९३ ॥ हे मुने! दक्षिण दिशा को अगस्त्यमुनि विना स्मरण करता हूँ एक विन्ध्याचल पर्वत करके नक्षत्र मंडल पर्यंत पूर्ण भये जगत् को स्मरण करता हूँ ॥ ९४ ॥ हे मु-

ने ! एक जगत की सृष्टि को पुरुषों से और असुरों से रहित केवल देवतामय का स्मरण करता हूँ ॥ ९५ ॥ हे मुने ! एक जगत् के सर्ग को सुरापान करनेवाले मदोन्मत्त और शूद्रों से भी निषिद्ध ऐसे ब्राह्मणों करके संयुक्त बहुत हैं नाथ जिस में और धर्ममर्यादा से रहित को स्मरण करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे मुने ! एक जगत् के सर्ग को वृक्षों करके निरंतर पूर्ण भई पृथ्वी वाले को और समुद्र की कल्पना से रहित को अपने आप पुरुष उत्पन्न होते हैं जिस में ऐसे को स्मरण करता हूँ ॥९७॥ हे मुने ! किसी सर्ग को पर्वत और पृथ्वी सो रहित और आकाश में ही देवता और मनुष्य स्थित रहते हैं और चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से रहित और अपने आप प्रकाश भये को स्मरण करता हूँ ॥९८॥हे मुने! किसी सर्ग इंद्र विना और राजा लोकविना और उत्तम अधम मध्यम भेद विना स्मरण करता हूँ॥९९॥ हे मुने! विष्णु को हंसवाहन को याद करता हूँ ब्रह्मा को गरुडवाहन याद करता हूं और शिवजी को गरुडवाहन को और हंसवाहन को भी याद करता हूं और ब्रह्माविष्णु को वृषभवाहन को याद करता हूं॥१००॥ हे मुने! हे वसिष्ठजी! अब तुम ब्रह्मा के पुत्र हो पूर्वकाल में अष्टम सर्ग में तुम हम को मिले हो तेरा अब अष्टम जन्म याद करता हूँ किसी सर्ग में तुम आकाश से उत्पन्न होते हो किसी में जलसे उत्पन्न होते हो किसी में पवन से उत्पन्न होते हो किसी में पर्वत से उत्पन्न होते हो किसी में अग्नि से उत्पन्न होते हो॥१०१॥ हे मुने! यह पृथिवी पांच पूर्व सृष्टि में समुद्र में कूर्मरूपी भगवानजीने पांच वार निकासी भई मैं ने देखी है ॥१०२॥ हे मुने ! इस समुद्र में संपूर्ण औषधी के रस पा करके देवाता असुर पांच वार मंथन करते मैं ने देखे हैं ॥१०३॥ हे मुने ! हिरण्याक्ष असुर यह पृथ्वी पाताल को तीन वार लेजाते मैं ने देखा है॥१०४॥ हे रामजी ! श्रीभगवान् विष्णुजी जमदग्नि से रेणुका का पुत्र होकरके मेरे देखते ही

छटी बार क्षत्रियों का क्षय करता भया ॥१०५॥ हे मुने! कलियुगों के सैंकडे में विष्णु के बौद्धावतार शत प्रमाण देखे हैं ॥ १०६ ॥ हे मुने! तास त्रिपुरासुरों के क्षय देखे हैं दक्ष के यज्ञ का दो बार नाश होते देखा है दश बार शिवजी से इंद्र के विनाश होते मैं ने देखे हैं॥१०७॥ हे मुने! शिवजी का और विष्णु का आपस में बाणासुर के वास्ते आठ बार संग्राम होते मैं ने देखे हैं जिन में ज्वरों का आपस में युद्ध भया है ॥ १०८ ॥ हे मुने! युगों के प्रलय करके उलटा पलट होने करके पुरुषों की बुद्धि की न्यून अधिक होने से क्रियाकांड का अनेक भेदों करके वेदों की उलटा पलटी होते देखी है ॥ १०५ ॥ हे मुने! यह महारामायण नामा इतिहास शत लक्ष प्रमाण ज्ञानशास्त्र को मैं स्मरण करता हूं जिस में ज्ञान हाथ में फल सरीखा अर्पण किया है रामचंद्रजी की नाईं व्यवहार करना रावण की नाईं व्यवहार नहीं करना वाल्मीकि मुनिने पहिले रचन किया है आगे फिर भी करेगा और फिर भी बनेगा तिस को तू तत्त्व करके जानेगा ॥ ११० ॥ हे मुने! वाल्मीकि नामा जीव ने अथवा और किसी ने वाल्मीकीय रामायण अब बारंबार करता है विस्मरण भया फिर रचन कराता है कदाचित् आगे का बना ही मिलजाता है ॥ ११ ॥ हे मुने! इस महारामायण के बराबर दूसरा महाभारत इतिहास व्यास नामा जीव ने अथवा और जीव ने पहिले का विस्मरण भया सातवीं वार फिर रचन करता है ॥ १२ ॥ हे मुने! श्रीरामचंद्र नामा विष्णु का अवतार राक्षसों के क्षय वास्ते अब एकादशवां जन्म होवेगा ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन्! विष्णु भगवान् नरसिंहरूप धारण करके त्रैलोक्य को पीडा करनेवाले हिरण्यकाशिपु दैत्य को तीसरी बार मारते भये जैसे सिंह मदवाले हाथी को मारता है ॥ १४ ॥ हे मुने! पृथिवी का भार हरनेवास्ते वसुदेव के घर विष्णुजी का अब षोडशवां (१६) जन्म

होता है ॥ १५ ॥ हे मुने! यह जगत् की भ्रांति सच्ची कदाचित् नहीं है जो कदाचित् दृष्टि होती है सो भी जल में बुदबुदा की नाईं मिथ्या ही फुरण होती है ॥१६॥ हे ब्रह्मन्! शत बार पुरुषों को स्त्रीभाव को प्राप्त होते को याद करता हूं कलियुगमें सत्ययुग के आचार को याद करता हूं सत्ययुग में कलियुगके आचार को याद करता हूं ॥१७॥ हे ब्रह्मन्! कितने सर्ग वेदों से रहित वेदों के अर्थों से रहित अपनी इच्छा से वर्त्तमान भये को याद करता हूं ॥ १८ ॥ हे मुने! केते सर्ग मन के मननव्यापार से उत्पन्न भये को याद करता हूं पृथिवी के विकार से रहित भये पवनरूप भये को ऐसे दश सर्गों को याद करता हूं ॥ १९ ॥

श्रीवसिष्ठजी का प्रश्न यक्षराज के प्रति

हे यक्षराज! तुम जैसे पुरुष त्रैलोक्य में विचरण करते हैं और लोकव्यवहार भी करते हैं तो भी तुम को मृत्यु बाधा क्यों नहीं करती है ॥ १२० ॥

भुशुंडाजी श्रीवसिष्ठजी को कहते हैं

हे मुने! तुम सर्वज्ञ हो और जानते भी हो और जिज्ञासु सरीखे मुझ को पूछते हो यह मैं जानता हूं क्या स्वामी यों होते हैं सो अपने सेवक को जान करके भी बोलने में प्रीति करके प्रगल्भ करते हैं ॥ २१ ॥ तो हे महाप्रभो! जो तुम पूछते हो सो मैं तुम को प्रकट कहता हूँ सत्पुरुषों की आज्ञा पालन करनी ही आराधना है ॥२२॥ हे प्रभो! वासनारूपी सूत्र की डोरी दोषरूपी मुक्तामणियुक्त है सो जिस के हृदय में ग्रथित भई नहीं है तिस को मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥२३॥ हे प्रभो! मानसी जो चिंता है सो कैसी है श्वासरूपी वृक्ष छेदने को शस्त्र है और देहबंधन की लता की डोरी है सो जिस को

भेद नहीं करते हैं तिस को मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥ २४ ॥ हे प्रभो! यह आशा कैसी है देहरूपी वृक्ष के ऊपर सर्पसमूह जैसी चढी है चिंतारूपी शिर फणावाली है सो जिस के चित्त को दाह नहीं करता है तिस को मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥ २५ ॥ हे प्रभो! यह लोभरूपी अजगर है कैसा है राग और द्वेष जिस का क्रूर विष है अपना मनरूपी छिद्र जिस का मंदिर है सो जिस को भक्षण नहीं करता है तिस को मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥ २६ ॥ हे प्रभो! यह लोभरूपी अग्नि कैसी है विवेकरूपी जल को संपूर्ण पान करती है और देहरूपी समुद्र का वडवानल है सो जिस को दाह नहीं करता है तिस को मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥ २७ ॥ हे प्रभो! जिस का चित्त एक निर्मल परम पवित्र आत्मपद में विश्रांत हुआ है तिस को मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥ २८ ॥ हे प्रभो! यह जगत देवत-असुरसहित गंधर्व-विद्याधर-किन्नरसहित मनुष्य-स्त्रीगणसहित है इस में शुभ करनेवाला और स्थिर कुछ नहीं है ॥ २९ ॥ वृक्षसहित राजा सहित पर्वत-नगरसहित है ॥ ३० ॥ नाग और असुरसमूहसहित असुरों की स्त्रियों सहित है संपूर्ण पातालसहित इस प्रपंच में सुंदर और कुछ नहीं है ॥ ३१ ॥ हे मुने! यह जगत की क्रिया चिंता-रोगसहित है दुःखसमूहसंयुक्त है और नित्य तुच्छ है इन में शुभ और स्थिर कुछ नहीं है ॥ ३२ ॥ हे मुने! पृथिवी का एक चक्रवर्ती राज्य श्रेष्ठ नहीं है पराई कथाप्रसंग भी वर्णन श्रेष्ठ नहीं है पराये कार्यका विवेक भी वर्णन श्रेष्ठ नहीं है हे मुने! इन से चिरंजीवी होना श्रेष्ठ नहीं होता है ॥ ३३ ॥ हे मुने! मानसी चिंता और रोगयुक्त चिरंजिविता अच्छी नहीं है मरण भी अच्छा नहीं है दृढ मूढता भी अच्छी नहीं है नरक की विषम स्थिति भी अच्छी नहीं है ॥ ३४ ॥ हे मुने! इस प्रकारकी जगतक्रियां अनेक समस्त रचना

मूढता युक्त होवे तो अच्छी नहीं है यह पदार्थ सभही चिरसें कल्पना करनेसें दुःख देनेवाले हैं इन्हमें महात्मा पुरुष स्थितिकों कैसे मानते हैं ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन्! आत्मचिंता संपूर्ण दुःखोंका अंत करनेवाली है चिरकालसें धारण किया संसाररूपी दुष्ट स्वप्नाकों भ्रमको हरणेवाली है ॥ ३६ ॥ हे मुने! जैसी आत्मचिंता संसारदुखकों हरणेवाली है तैसेही आत्मचिंताके समान प्राण चिंता भी संसार सुप्नके भ्रमको दूर करणेवाली मैंने मानी है इस प्राणचिंताकों अनेक योगी लोकोंने मोक्षवास्ते सेवन किया है ॥ ३७ ॥

श्रीवसिष्ठजीका प्रश्न पक्षिराज प्रति

हे पक्षिराज! तुम सर्व संशयकों छेद करनेवाले हो तत्वज्ञानी हो चिरंजीवी हो यथायोग्य मेरेकों कहो प्राण चिंता क्या कही है ॥३८॥

भुशुंडकाकजीका उत्तर वसिष्ठजीके प्र०

हे मुने! तुम भुशुंडकाकको दर्शन करके जीवदान देतेहो भुशुंडकाकको आत्मदृष्टिका लाभ देनेवाले हो संपूर्ण वेदांतके वेत्ता हो सर्व संशयकों नाश करणेवाले हो मेरेकों उपहासके वास्ते प्रश्न करते हो जिस कारणसें तुम ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्माके पुत्र हो मैं काक हूं महा मलिन जीव हूं मेरेकों तुह्मारा प्रश्न करना उपहासही है ॥ ३९ ॥ अथवा मेरेको इतना कहनेमें क्या अर्थ है मैने सर्वज्ञान तुमसेही शिक्षित किया है तुह्मारेकों प्रश्नका उत्तर करणेसें फेर भी अभ्यास करके संशय रहित होवोंगा ॥ ४० ॥ हे मुने! प्राणचिंताका समाधान मेरा कहिआ तुम सावधान होकर श्रवण करो इडा और पिंगला यह दोनों नाडियां इस देहमें नासिकाके दाहने वामें पार्श्वोंमें स्थित हैं ॥ ४१ ॥ हे! मुने इस देहमें छे चक्र कमलरूप हैं सो आस्थियोंके और मांसके बने हैं और कोमल हैं इन्हके ऊपर भी नाल है और नीचे-

भी नाल है और इन्हके दल आपसमें मिले हैं ॥४२॥ हे मुने! इन षट् चक्र कमलोंके नाम और स्वरूप और स्थान तुह्मारेकों सुनावते हैं प्रथम कमल मूलाधार चक्र है सो गुदास्थानमें है इसके चार४ दल हैं व श ष स यह चार अक्षर चार दलोंमें हैं १ दूसरा कमल स्वाधिष्ठान चक्र है सो लिंगस्थानमें है इसके छः दल हैं व भ म य र ल यह छः अक्षर इसके छः दलमें हैं २ तीसरा कमल मणिपूरक चक्र सो नाभी स्थान में है इस के दश१०दल हैं ड ढ ण त थ द ध न प फ यह अक्षर दश दल में है ३ चौथा कमल अनाहत चक्र है सो हृदय में है इस के १२ द्वादश दल हैं क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ यह बारह अक्षर बारह दलों में हैं ४ पाँचमा कमल विशुद्धचक्र सो कंठ में कहा है इस के १६ षोडश दल हैं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ॥ यह सोलह अक्षर इस के दलों में हैं ५ छठा कमल आज्ञाचक्र है सो ललाट में है इस के दो २ दल हैं ह क्ष यह दो अक्षर इस के दलों में हैं ६ यह छ चक्रों के छः कमल हैं सो संपूर्ण देह में चलनेवाले पवन के स्पर्श करके प्रकाशमान होते हैं हे मुने! यय छः कमलों के पत्र मंदपवन के स्पर्श से चलते हैं तिन पत्रों के चलने से पवन वृद्ध होता है सो पवन इस देह में आठ कम अस्सी हजार एक शत एक (७२१०१) नाडी में भ्रमण करता है तिस में हृदय और गुदा नाभि और कंठ और सबही अंग इस पवन के प्रकट होने के मुख्यस्थान हैं ॥ ४४ ॥ हे मुने! यह स्थानों को कल्पना करके केती नाडियाँ नीचे को चलती है केती नाडियाँ ऊपर को चलती हैं तिन में प्रवेश करके देहमें पसरता है ॥ ४५ ॥ हे मुने! सो पवन प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इत्यादि नाम करके वर्त्तमान है हृदय में प्राण पवन है, गुदा में अपान पवन है, समान पवन नाभि में है, उदान पवन कंठस्थान में है, व्यान पवन सर्व देह में है,

यह अनेक चेष्टा करके अनेक नामवाला है पांच पवन और भी हैं. नाग १ कूर्म २ कृकल ३ देवदत्त ४ धनंजय ५ नाम हैं ॥ ४६ ॥ हे मुने! इन में दो पव । प्रधान हैं प्राण और अपान, प्राण ऊपर को चलता है अपान नीचे को चलता है ॥ ४७ ॥ हे मुने! प्राण और अपान यह दोनों पवन प्रकट हैं और प्रधान कहे हैं शरीर रूपी नगर को पालनेवाला जो पवन है तिस का मनरूपी रथ है तिस के यह दोनों चक्र हैं ॥ ४८॥ हे मुने उन दोनों की मर्म के अनुसार गति है यह प्राण और अपान पवनों की देह की स्थिति पर्यंत प्रतिबंध को नहीं प्राप्त होती है॥ ४९ ॥ हे मुने! यह पवन इस देह में सुषुप्ति अवस्था में भी निरंतर चलता रहता है इस कारण से प्राण पवन को ब्रह्मरूपता भी कही है ॥ ५० ॥ हे मुने! कमल के नाल का सूत्र का हजारवाँ अंश से भी प्राण अपान की गति सूक्ष्म है देह में विद्यमान है तो भी अलक्ष्य है प्राणायाम के अभ्यास से और सूक्ष्म नाडियों में चलने से सूक्ष्म गति कही है ॥ ५१ ॥ हे मुने! जाग्रत भये और सुप्त भये को भी यह प्राणायाम उत्तम है जो प्राणायाम को जानता है तिस को जिस प्रकार करके प्राणायाम कल्याण के वास्ते कहा है तिस प्रकार को तुम श्रवण करो ॥ ५२ ॥ हे मुने! यह प्राण पवन मूलाधार चक्र गुदास्थान से उपर को चढता है, सो क्रम कर के छः चक्रों को भेद करके कपालस्थान ब्रह्मरंध्र चक्र पर्यंत चढता है कपालस्थान में एक हजार (१०००) दलकमल है तिस में योगीजन प्राणायाम चढाते हैं और लोगों को इस प्रकार का ज्ञान नहीं है॥५३॥ हे मुने! तीन प्रकार की पवन की गति है रेचक, पूरक और कुंभक प्राणों का चलना रेचक है, चढाना पूरक है, स्थित होना कुंभक है इनके भेद तुम को सुनाताहूँ ॥ ५४ ॥ हे मुने! हृदयकमल के अंदर से प्राण पवनों को बाहिर के सन्मुख जो होता है स्वभाव करके

और यत्न बिना तिस को धीरपुरुष रेचक जानते हैं ॥ ५५ ॥ हे मुने! बाहिर को चले जो प्राण पवन हैं तिन की शिर पर्यंत गति को आधा पूरक कहते हैं शिर से नासिकाद्वार से अथवा मुखद्वार से बाहिर बारह उँगली प्रमाण बाहर प्रकट होने को अर्ध रेचक कहते हैं ॥५६॥ और हे मुने! बाहिर से नासिका को अथवा मुख को प्रवेश करके अंदर को अपान पवन के स्थान गुदा पर्यंत पवन की जो गति है तिस को भी धीरपुरुष पूरक जानते हैं ॥ ५७ ॥ हे मुने! बाहिर को सन्मुख हुआ जो प्राण पवन तिस को नासिका तें शिर पर्यंत गति को बाह्य पूरक जानते हैं ॥ ५८ ॥ और बाहिर से अंदर को प्रवृत्त हुआ जो पवन तिस की नासिका से शिर पर्यंत जो गति है तैसे ही शिरसे हृदय पर्यंत जो पवन की गति है तिस को भी दूसरे आंतर पूरक को जानते हैं यह दो प्रकार का आँतरपूरक कहते हैं ॥ ५९ ॥ हे मुने! बाहिर को सन्मुख हुए प्राण पवन की हृदय से नासिका पर्यंत जो गति तिस को योगिजन बाह्य पूरक कहते हैं ॥ १६० ॥ हे मुने! नासिकाग्र से भी बाहर निकल करके बारह अंगुल प्रमाण जो गति है तिस को भी दूसरे बाह्य पूरक को कहते हैं ॥ ६१ ॥ हे मुने! बाहिर गया जो प्राण पवन सो जब तक अंदर अपानस्थान में नहीं प्राप्त हुआ तब प्राण पवन की पूर्ण स्थिति होती है तिस को बाहर का कुंभक कहते हैं ॥ ६२ ॥ हे मुने! जो प्राण पवन का अंदर के सन्मुख होता है जबलग अपान वायु का उदय नहीं हुआ तब लग प्राण पवन की गति को बाहर के रेचक को कहते हैं ॥ ६३ ॥ हे मुने! द्वादशांत कही मूलाधार चक्र तिस से उदय हो करके स्थूलरूप को प्राप्त हुआ अपान पवन की जो स्थिति तिस को दूसरे पूरक को कहते हैं ॥ ६४ ॥ हे मुने! बाहिर के और अंदर के यह कुंभक रेचक पूरक जो प्राण–अपान के गति के स्वभाव हैं, तिन को

जान करके पुरुष फिर जन्म नहीं पाता है ॥६५॥ हे मुने! यह पूरक रेचक आठ (८) प्रकार के हैं और दो प्रकार कुंभक के हैं यह दश प्राण पवन की गति है सो देह पवन के स्वभाव है स्मरण करने से मुक्ति को देनेवाले हैं सो हम तुह्मारे प्रति कहते हैं ॥ ६६ ॥ हे मुने! जिस का मन यह प्राणायाम के व्यापार में लगा है बाहिर के व्यापार को त्याग करता है तिस का मन थोडे दिनों करके निर्मल पद को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ हे मुने! यह प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले पुरुष का चित्त बाहिर की इंद्रियों के विषयों की वृत्तिओं विषें रति को नहीं बांधता है जैसे कुत्ता को चमडो में ब्राह्मण प्रीति को कदापि नहीं करता है ॥ ६८ ॥ हे मुने! अपान पवन चंद्रमा की कला युक्त है काहेते अपान पवन की अंदर को नीमी गति है इस से अपान पवन की कल्प प्राणायाम करके अंदर के स्थिति रहे तो यहां शोक नहीं करना बनता है ऐसी पदवी का प्राप्ति होती है ॥६९ ॥ हे मुने! प्राण पवन में सूर्य की कला है जिस कारण से प्राण पवन की गति ऊर्ध्व है इस प्राण पवन की गति प्राणायाम करके अंदर स्थिति करके पुरुष फिर जन्म नहीं पावता है ॥ १७० ॥ हे मुने! यह प्राणायाम की दृष्टि को धारण करके मैं अचल पद में स्थित भया हूं सुमेरुपर्वत भी चला जावे तो भी मैं चलायमान नहीं होता हूं ॥७१ ॥ हे मुने! चलते भये स्थित भये और जाग्रत भये सुप्त भये मेरे को आत्मा विषें स्थित भई समाधि मेरी सुप्ते में भी नहीं चलती है ॥७२॥ हे ब्रह्मन्! मैं यह योग दृष्टि में स्थित भया हूं. भूत भविष्यत् वर्तमान को चिंतन नहीं करता हूं इस कारण से चिरंजीवी भया हूं ॥७३॥ हे ब्रह्मन्! मैं भाव की चिंता का और अभाव की चिंता को इष्ट चिंता को अनिष्ट चिंता को एक समान जानता हूं तिस कारण से निर्विकार होय कर चिरकाल से जीवता हूं ॥ ७४ ॥ हे मुने! मैं प्राण का और अपान के संयोग

की युक्ति को चिंतन करता हूं आप ही अपने आत्मा विषे संतुष्ट भया हूं तिस कारण से चिर से जीवता हूं ॥७५॥ हे मुने! यह आज मेरे को प्राप्त भया है यह और प्राप्त होवेगा ऐसी चिंता मेरे को नहीं है मैं अपनी अथवा और किसी की निंदा और स्तुति नहीं करता हूं तिस से चिरंजीवी भया हूं॥७६॥हे मुने! मैं सर्व त्याग को धारण करता हूं जीवने का उद्यम भी मैंने त्याग दिया है और मेरा मन चंचलता से राहत भया है शोक से रहित भया है और स्वस्थ भया है और सावधान भया है तिस स चिरंजीवो हों ॥७७॥ हे मुने! मैं काष्ठ को और सुंदर स्त्री को तृण को और अग्नि को और बर्फ को आकाश को सम देखता हूं आज मेरे को सिद्ध क्या भया है और प्रातःकाल क्या सिद्ध होवेगा ऐसी चिंता मेरे को नहीं है तिस से चिरंजीवी भया हूं ॥ ॥ ७८ ॥ हे मुने! जन्म मरण दुःखों से और राज्यलाभादि सुखों में मैं भय से हर्ष से रहित भया हूं और यह मेरे को अपने से बंध है और यह पराये से बंध है ऐसा भी मैं नहीं जानता हूं. तिस से चिरंजीवी हुआ हूँ॥ ७९॥ हे मुने! मैं अचल दृष्टि करके आसक्तिरहित दृष्टि की प्रीतिवाली सुंदर दृष्टि करके सर्वत्र एक सत्यरूप आत्मा को देखता हूँ तिस से चिरंजीवी हूँ॥ १८०॥ हे मुने! मस्तक से लेकर पादपर्यंत इस देह में मेरा अर्थ कोई नहीं है, इस प्रकार करके अहंकाररूपी कलंक से रहित हुआ हूँ और जो मैं कर्म करता हूँ जो भोजन करता हूँ सो सब ही मुझ को प्रीति और निंदा से रहित है उस से मैं चिरंजीवी हुआ हूँ ॥८१॥ हे मुने! जिस काल में मैं कुछ जानता हूँ तिस समय में मेरी बुद्धि ज्ञान के गर्व को धारण नहीं करती है और मैं बल करके समर्थ होता हूँ तो भी किसी को दबा नहीं लेता हूँ और संताप होने से खेदयुक्त नहीं होता हूँ और दरिद्र हो करके किसी से याचना नहीं करता हूँ तिस से मैं चिरंजीवी हुआ हूँ ॥ ८२॥ हे

मुने! जो जो पदार्थ पुराने हैं और भिन्न और हुआ हूँ क्षोभ को प्राप्त हुआ हूँ धस गया है घट जाता है सब को मैं नवीन और उत्तम जानता हूँ सुखी लोगों को देख कर सुखी होता हूँ और लोगों के दुःख में दुःखी होता हूं सर्व लोक का मित्र हूं और सर्व जन का प्रिय हूं तिस से मैं चिरंजीवी हुआ हूं ॥८३॥ हे मुने! आपदा में पर्वत की नाईं अचल रहता हूँ और संपदा में जगत् का मित्र होता हूँ भाव में और अभाव में अपने को कुछ नहीं मानता हूँ इस से चिरंजीवी हुआ हूं॥८४॥ हे मुने! न तो मैं किसी का हूं न मेरा कोई है न तो मैं अपना हूं न मैं पराया हूं इस भावना में मेरा चित्त है तिस से चिरंजीवी भया हूं॥८५॥ हे मुने! घडा भी चैतन्य है वस्त्र भी चैतन्य है वनवृक्ष भी चैतन्य है और नावो गाडी भी चैतन्य है ऐसी भावना मेरे को है तिस से मैं चिरंजीवी भया हूं ॥ ८६ ॥ हे मुने! इस कारण से मैं त्रैलोक्यरूपी कमल में भ्रमर की नाईं विचरण करता हूं भुशुंड नामा काक हूं चिरंजीवी कहिया हूं ॥ ८७ ॥ हे मुने! जैसा मैं हूं जिस प्रकार मैं वर्त्तमान हूं जो मेरे हैं यह सब मैं ने कहा और तुम भी जानते हो सर्वज्ञ हो यह मेरा कहना तुह्मारी आज्ञा करने मात्र से है ॥ ८८ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे पक्षिराज! भुशुंडजी "अहो इति आनंदे" तुम ने मुझ से अपना वृत्तांत कहा है वह कैसा है अद्भुत है और तुम्हारा वचन वेदशास्त्र का भूषण है और परम विस्मय का कारण है ॥ ८९ ॥ हे भुशुंडजी! तुम महात्मा हो और अत्यंत चिरंजीवी हो जो तुम को साक्षात् दूसरे ब्रह्मा को देखते हैं सो पुरुष धन्य हैं ॥ १९० ॥ हे रामजी! उस के उपरांत मैं भुशुंड काक से बिदा हो करके चलने की आज्ञा लेता भया तब भुशुंड काक ने सुवर्णकमल और सुवर्णपुष्पों करके और मोतियों के अर्घ करके पूजन करके बिदा किया आकाश में तीन योजन भुशुंड काक मेरे पीछे साथ आता

भया तब मैं ने प्रार्थना करके भुशुंड काक को पीछा अपने स्थान को फेर दिया तदनंतर मैं अपने सप्त ऋषियों क मंडल में चला आता भया ॥ ९१ ॥ हे रामजी! यह भुशुंड काक का वृत्तांत तुह्मारे प्रति कहा है इस को तुम अंतःकरण में विचार करके जो कार्य तुम को रुचे सोई तुम करो ॥ ९२ ॥

वाल्मीकिजी भरद्वाज प्रति कहते हैं.

हे भरद्वाज! जो निर्मलबुद्धि पुरुष यह भुशुंड काक की कथा को श्रवण करता है सो पुरुष अनेक भय करके बडी दुस्तर ऐसी संसार नदी को तर जाता है ॥ ९३ ॥ हे भरद्वाजजी! फिर रामचंद्रजी ने वसिष्ठजी को प्रश्न किया यह शरीररूपी घर किस ने रचन किया है ऐसा प्रश्न किया तो वसिष्ठजी कहते भये ॥९४॥ हे रामजी! यह शरी: गृह कैसा है अस्थियां इस की स्तंभ की थुणा है और रक्तमांस करके इस को लिप्त किया है नव इस के द्वार हैं यह किसी ने रचा नहीं है ॥ ९५ ॥ हे रामजी! जो रक्तमांस अस्थियों करके रचन किये जो देह हैं सो हजारों हो हैं तिन की संख्या की कल्पना कछु नहीं है ॥ ९६ ॥ हे रामजी! तुम रात्रि में शय्या में सुख करके शयन करके स्वप्न में जिस देह करके अनेक देशांतर में भ्रमण करते हो सो तुमारा स्वप्न का देह अब कहां है और किस ने रचा है ॥ ९७ ॥ हे रामजी! जाग्रत अवस्था में भी मनोरथ के फुरने में जिस देह करके स्वर्गादिक लोकों में और देशांतर में भ्रमण करते हो सो देह तेरा प्रत्यक्ष कहां है ॥ ९८ ॥ हे रामजी! स्वप्नांतर में स्वप्न होता है तिस स्वप्नांतर के स्वप्न में जिस देह करके तू देशांतर में विचरता है सो स्वप्नांतर के स्वप्न का तेरा देह अब कहां है तिस को तुम कहो॥९९॥ हे रामजी! इस संसार को तुम दीर्घ स्वप्न को जानो अथवा दीर्घ चित्त के भ्रम को जानो अथवा दीर्घ मन के मनोरथ को जानो ॥२००॥

हे रामजी ! जैसे पुरुष भयभीत स्वभाववाला है सो अपने संकल्प की रचना में भय को नहीं प्राप्त होता है तैसे ही निर्मलबुद्धि पुरुष अपने संकल्प की रचना से भये संसार में भय को नहीं प्राप्त हो होता है ॥ ॥ १ ॥ हे रामजी! तत्त्व का भले प्रकार विचार करके अपने आत्मा का स्वभाव निर्मल होता है जैसे शुद्ध सुवर्ण-तांबा की नाई फिर मल को नहीं ग्रहण करता है ॥ २ ॥ हे रामजी! यह जगत् केवल आभास मात्र है न यह सत्य है न असत्य है इस प्रकार करके और कल्पना का जो त्याग करना तिस के भली तरह के विचार को ज्ञानी लोक जानते हैं ॥ ३ ॥ हे रामजी! मैं देहादिक नहीं हूं यह भोग मेरे को नहीं हैं और सत्य भी नहीं हैं यह सब ही संकल्प के रचने मात्र हैं सब व्यर्थ है अनर्थ के लिये भासता है ऐसी भावना से सब ही वृथा होता है ॥४॥ हे रामजी! तत्त्ववेत्ता पुरुष को दो प्रकार की दृष्टि करने योग्य है दो प्रकार कौन हैं यह संपूर्ण विश्व मैं हूं अथवा संपूर्ण चैतन्य ही है और सब यह आडंबर मात्र है और व्यर्थ है ऐसी दृष्टि से यह प्रपंच अनर्थ करने के लिये नहीं भासता है ॥ ५ ॥ हे रामजी! सब का आत्मरूप जानना अथवा सब को चैतन्यरूप जानना यह दो प्रकार की ज्ञानदृष्टि सत्य है और अतिशय करके सिद्धि को देती है इन दोनों में जिस को तू सुंदर मानता है तिस को तू सेवन कर ॥ ॥ ६ ॥ हे रामजी ! हे निर्मलबुद्धे !! इन दो प्रकार की ज्ञानदृष्टियों करके युक्त हो करके तू विहार करता हुआ रागद्वेष के क्षय को कर और अपने कल्याण को सिद्ध कर ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो कुछ पुरुषार्थ इस लोक में सब से उत्तम कहा है आकाश में और पृथिवी में और स्वर्ग में सो सब ही रागद्वेष के क्षय होने से सिद्ध होता है ॥ ॥ ८ ॥ हे रामजी! रागद्वेष ही मन को मलीन करनेवाले हैं जिस के रागद्वेषरूपी सर्प नष्ट नहीं भये हैं सो पुरुष कल्पवृक्ष के पास भी र-

है तौ भी उस को कुछ प्राप्त नहीं होता है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जो लोग ज्ञानवान् नियमवान, और चतुर हैं और शास्त्र पढनेवाले हैं जो रागद्वेष के अधीन हैं सो शृगालों सरीखे हैं तिन को धिक् है उन का सब कुछ वृथा है ॥ २१० ॥ हे रामजी ! यह मेरा धन पराये लोक ने खाया है यह धन मेरे को दिया है इस प्रकार का जो व्यवहार है सो ही रागद्वेष का स्वरूप है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! धन, बन्धु, मित्र ये संसार में वारंवार आते हैं चले जाते हैं, विचारवान् पुरुष इन में राग क्यों नहीं करते हैं और विराग क्यों करते हैं इन में रागद्वेष से क्या सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! तुम सावधान हो ज्ञानवान हो मैं ने तुम को यह ज्ञान समझा दिया है मैं सूर्यलोक पर्यंत निर्विकार आनंदमय देखता हूं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! बोध को प्राप्त हो आज तेरे को बोध का समय है सत्य वस्तु को विचार करके देख इस व्यर्थ भ्रम को त्याग कर तिस कारण करके तेरे को जन्म नहीं होवेगा दुःख भी दोष भी नहीं होवेंगे भ्रम भी नहीं होवेंगे तू सब ही संकल्प को त्याग करके आत्मसुख में सावधान स्थित हो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! तुम महात्मा हो विकल्प जिस के सब गलित भये हैं संपूर्ण दोषजाल तुह्मारे नष्ट भये हैं तुह्मारी ज्ञानदृष्टि सुख को और सार को प्राप्त भई है और सुषुप्ति की नाईं अचल भई है और सौम्य भी भई है अब तुम चित्त को शुद्ध करने वास्ते उपशम को धारण करो और आत्मा के स्वरूप में सावधान स्थिर हो ॥ १५ ॥

वाल्मीकजी भरद्वाज के प्रति कहते भये.

हे भरद्वाज ! श्रीरामचंद्रजी इतना वचन वसिष्ठजी का कहा श्रवण करने से स्वस्थ समचित्त आत्मस्वरूप में विश्रांत और परमानंद में अपनी इच्छापूर्वक प्राप्त होने से और तहां सभा में सर्व देवता, ऋषि, राजा, नगर के लोग, देशदेशांतर के लोग सब ही आनंद को प्राप्त होने

से वासिष्ठजी का वचनामृत रामचंद्रजी के मन की स्थिति वास्ते जो प्रकट होता भया सो वचनरूपी अमृत विश्रांत होता भया जैसे क्षेत्रों में खेती सिद्ध होने से बादलों का वर्षाजल विश्रांत होता है ॥१६॥ इस से उपरांत आधा मुहूर्त समय गये पीछे श्रीरामचंद्र को फिर आत्मबोध होने से कहनेवालों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी रामचंद्र को फिर तिस पूर्व ले अर्थ को कहते भये ॥१७॥ हे रामजी! तू भली तरह से बोध को प्राप्त भया है और आत्मतत्त्व को भी प्राप्त भया है इसी प्रकार इस अर्थ को पा करके स्थित हो यही सब का सार है जैसे सुमेरु पर्वत त्रैलोक्य में सार है ॥१८॥ हे रामजी! यह संसारचक्र सदा भ्रमता रहता है संकल्प इस के मध्य की नाभि है जैसे चक्र के मध्य को नाभी किसी प्रकार करके रोकी जावे तो चक्र नहीं भ्रमंता है तैसे संसारचक्र की नाभि संकल्प है जिस को प्रतिबंध करने से संसारचक्र नहीं भ्रमता है॥१९॥हे रामजी! सो मन के संकल्परूपी क्षोभ को प्राप्त भये संते संसारचक्र को भावे कितना रोके तौ भी संकल्प के वेग करके निरंतर भ्रमता है॥२०॥ तिस से हे रामजी। निर्मल बुद्धि करके और सुजनता करके युक्त शास्त्रज्ञान करके युक्त ऐसा अपने यत्न करके जो प्राप्त नहीं भया सो कहीं भी नहीं प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ हे रामजी! जो चित्र में लिखा जो नर है तिस से देहधारी नर अत्यंत तुच्छ है चित्र का नर कैसा है सदा प्रसन्न है और क्लेशरहित है देहधारी नर कैसा है दुःख करके मलीनमुख हो और देह के पात और देह के छेद के भययुक्त है ॥ २२ ॥ हे रामजी! तिस से जो यह मांस-रक्तमय देह है सो चित्र में लिखे देह से भी तुच्छ है ऐसे रक्तमांस के तुच्छ देह में तुम जैसे विवेकी जनों को क्या प्रीति है और क्या विश्वास है॥ २३ ॥ हे रामजी! यह देह दीर्घ स्वप्न का है अथवा चित्त संकल्प करके कल्पन किया है इस को भूषण किये संते अथवा दूषण किये संते चैतन्यरूप आ-

त्मा की क्या हानी है और लाभ क्या है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! यह अहंकार नामा वेताल कैसा है निःसार है और संपूर्ण संतजनों करके निंदत किया है सो कहीं से अकस्मात् आ करके चित्तरूपी घर में प्रविष्ट भया है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! इस अहंकार नाम वेताल के आधीन होने से नरक फल प्राप्त होता है तिस से तू भी यह दुर्मति अहंकार के चाकर भाव को मत प्राप्त हो ॥ २६ ॥ हे रामजी ! यह शून्य जैसे देह में चित्तरूपी यक्ष ने प्रवेश करके जो कुछ किया है सो कहा नहीं जाता है किस से जिस से महात्मा पुरुष भय करके समाधि करने में रत होते भये ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जौनसे अहंकार नाम धारी पिशाच ने अपने वश किये है सो ही पुरुष नरकरूपी अग्नि को प्रज्वलित करने को काष्ठभाव को प्राप्त होते भये ॥ २८ ॥ हे रामजी ! जौंनसे चित्तरूपी यक्ष ने जीते हैं तिन को जो आपदा होती है सो आपदा सैंकडों वर्षों करके भी नहीं गणी जाती है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! जौनसा पुरुष चित्त यक्ष करके दृढ दबा लिया है तिस को गुरु और बांधव रक्षा करने को समर्थ नहीं होते है ॥ २३० ॥ हे रामजी ! जिस का चित्तरूपी वेताल शांत भया है तिस पुरुष को गुरु और शास्त्र और बांधव सब ही रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! भोगों को बाहिर करे और संतजनों के चरणों को आश्रय करे अपने उत्तम अर्थ को विचार करके एक आत्मा को सेवन करे ॥ ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! यह देह अपवित्र है और तुच्छ है और दुःख का पात्र है और पाप का मूल है ऐसे देह करके अर्थ कुछ नहीं मानना देह चितारूपी चंडी महाभयानक है ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! यह देह रचा और किसी ने है और घोर यक्ष ने और किसी ने आक्रांत किया है दुःख और किसी को है और दुःख भोगनेवाला और कोई है यह चिंता मूर्खता के चक्र को भ्रमण करावती है ॥ ३४ ॥ हे रा-

मजी! इस में यह परम ज्ञानदृष्टि है सो महामोह को विनाश करनेवाली है तिस को तुम श्रवण करो जो ज्ञानदृष्टि पूर्व काल में शिवजी ने मेरे प्रति कही है ॥ ३५ ॥ हे रामजी! एक समय मैं कैलास पर्वत में गंगा के तटकुंज में निवास करता भया शिवजी को प्रसन्न करने वास्ते तप करता भया तब पाद्य अर्घादिकों करके शिवजी का पूजन करके फिर प्रदक्षिणा प्रणाम मैं करता भया तिस से उपरांत मेरे को अनुग्रह वास्ते प्रसन्न होय करके सदाशिवजी पार्वतीसहित आकरके मेरे का वचन कहते भये ॥ ३६ ॥

ईश्वरजी कहते भये—हे ब्रह्मन्! तेरे अंतःकरण की वृत्तियां उपशम करके शोभायमान और कल्यान करनेवाली हैं सो परमात्मा विषें विश्रांत भई है ना ॥ ३७ ॥ हे मुने! हम तेरे को कुशल प्रश्न करते हैं तेरा तप विघ्नरहित होता है और ना तेरे को कल्याण है और ना तेरे को प्राप्त होने योग्य सार पदार्थ प्राप्त भया है और ना संसारकी भय संपदा तेरी शांत नहीं भई है ॥ ३८ ॥ हे रामजी! ऐसा वचन सदाशिवजी के कहते संते मैंने वहुत विनती युक्त वाणी करके शिवजी को वचन कहा तिस को तुम श्रवण करो ॥ ॥ ३९ ॥ हे त्रिनेत्र! जो तुम्हारा स्मरण करनेवाले हैं सो पुरुष कल्याण युक्त हैं तिन्ह को दुर्लभ कुछ नहीं है और उन्ह को संसार के भय नहीं होते हैं ॥ २४० ॥ हे ईश्वर! जो पुरुष तेरे स्मरण के आनंद करके परिपूर्ण चित्त है तिन्ह को जो प्रणाम नहीं करता है ऐसा इस जगत् मंडल में कोई नहीं है ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन्! सो देश उत्तम है सो नगर ग्राम उत्तम है सो देश और पर्वत उत्तम है जहां तेरा स्मरण करने में एकाग्र बुद्धिवाले जन निवास करते हैं ॥ ४२ ॥ हे शिवजी! जिस जीव का पुण्य फल देने को प्रकट होता है जिस से शुभ कर्म वर्त्तमान होते हैं और जिस का कल्याण आगे होना होवे तिस को

तुम्हारा स्मरण होता है ॥ ४३ ॥ हे जगत्पते! तेरा स्मरण कैसा है? ज्ञानरूप अमृत का कलश है धृतिरूप चांदनी का चंद्रमा है और मोक्षरूप नगर का द्वार है ॥ ४४ ॥ हे महाराज! तुम्हारो स्मरणरूप उदार चिंतामणि को प्राप्त हो करके मैंने संपूर्ण आपदा के शिर ऊपर चरण दिया है ॥ ४५ ॥ हे रामजी! प्रसन्न भये शिवजी को इतना कह करके मैंने फिर प्रणाम करके जो वचन कहा तिस का तुम श्रवण करो ॥ ४६ ॥ हे भगवन्! तेरे प्रसाद से मेरी संपूर्ण दिशा आनंद करके पूर्ण भई हैं परंतु एक संदेश मैं तुम को पूछता हूं तिस का निर्णय तुम मेरे को कहो ॥ ४७ ॥ हे देव! प्रसन्न बुद्धि करके मेरे को कहो जो सर्व पाप के क्षय को करे और सबही कल्याण का वृद्ध करनेवाला होवे ऐसा जो तुम्हार पूजन का विधान है सो कैसे होता है ॥ ४८ ॥

ईश्वरजी कहते भये—हे ब्रह्मन्! तू ब्रह्मवेत्ता जनों में श्रेष्ठ है देव पूजा के उत्तम विधान को तुम सुनो जिस को एक वार श्रवण करने से ससार से मुक्ति होती है ॥४९॥ हे ब्रह्मन्! हम तेरे को प्रश्न करते हैं तू भी जानता है जो देवता कौन है. हे मुने! ना विष्णु देव है, ना शिव देवता है, ना ब्रह्मा है, ना इंद्र है, ना वायु है, ना सूर्य है, ना पवन है, ना चंद्रमा है, ना ब्राह्मण है, ना क्षत्रिय है, ना देहरूप है, ना चित्तरूप है, ना तू है, ना मैं हूं, ना देव लक्ष्मीरूप है ॥२५०॥ हे मुने! जो किसी करके सिद्ध नहीं भया और आदि अंत से रहित ऐसा जो प्रकाश होना सो ही देव कहा है सो कैसा है स्वरूप से रहित है. हे मुने! ऐसे प्रकाश स्वरूपवाले देव का आद्यंतसाहत और पांच भूतों करके वने हुए देहादिक में कहां से होना है ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन्! ऐसे स्वभाव करके स्वयं प्रकाशमान आत्मा को देव कहते हैं और जो प्रकाश है सो उपाधिक है और क्रिया करके वना है ब्रह्मा विष्णु रुद्र इत्यादिक सव

ही उपाधि करके बने हैं ॥ ५२ हे ब्रह्मन्! जो सदा सर्वदा एक जैसा प्रकाश है सो केवल आत्मा में है सो आप ही प्रकाशमान है तिस को स्वयंप्रकाश कह्या है ऐसा प्रकाशरूप देव है सो नामरूपसहित और गुणक्रिया सहित और उत्पत्ति-विनाश सहित और क्षय-वृद्धि सहित ऐसे ब्रह्मादिक में कहां है जिस में आदि अंत से रहित और किसी से बना नहीं ऐसा अपने स्वभाव करके अखंड प्रकाश होवे तिस को देव कहते हैं चैतन्य कहते हैं शिव कहते हैं सो ही आत्मा महादेव है तिस को ही तू मेरे स्वरूपवाले देव को जान ॥ ५३ ॥ हे मुने! सो ही आत्मा देवता नाम करके कह्या है तिस का ही पूजन करने योग्य है सो ही आत्मा परम देवता है तिस से ही यह सत्तावाला और सत्तारहित संपूर्ण जगत् भासता है और उत्पन्न भी भया है ॥५४॥ हे ब्रह्मन्! जिन्हों ने स्वयंप्रकाश आत्मा देवता का तत्त्व नहीं जाना तिन को मूर्तिवाले देवता की पूजा गंधपुष्पादिकों करके कही है कैसे जिस पुरुष से जोजन प्रमाण मार्ग नहीं चला जावे तिस को एक कोश प्रमाण मार्ग चलने को कह्या है ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मन्! रुद्रादिकों की पूजा से इतने प्रमाणवाला बहुत थोडे प्रमाणवाला फल प्राप्त होता है सो भोग से उपरांत क्षय को प्राप्त होता है और आत्मा की पूजा से अखंड और प्रमाणरहित फल प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ हे मुने! जो पुरुष अखंड और स्वाभाविक फल को त्याग करके और नाश होनेवाले फल को चाहता है सो पुरुष कल्प वृक्षों के वन को त्याग करके करीरवृक्षों के वन के फलों की इच्छा करके जाता है ॥५७॥ हे मुने! आत्मा देव की पूजा में ज्ञान और समदृष्टि और शांति यह तीन उत्तम पुष्प कहे हैं सो ही एक आत्मा शिव है और चैतन्यमात्र है और निर्मल है सो ही देवता है तिस को सर्वत्र व्याप्त भये को देखना यही देवता का ध्यान है जो देवता की पूजा को जानते हैं सो इस

प्रकार को पूजा करते हैं ॥५८॥ हे मुने! शमबोधादिक पुष्पों करके आत्मा को जो पूजना है तिस को ही देव को जानते हैं जो काष्ठ पाषाण की मूर्त्तियों की पूजा है सो देवार्चन नहीं है॥५९॥हे मुने! आत्मा ही देवता है ज्ञान हो तिस की पूजा विधि है इस पूजा को त्याग कर के जो पुरुष नामधारी मूर्त्तिवाले देवता का पूजन करते हैं सो पुरुष चिरकाल पर्यंत क्लेश के पात्र होते हैं॥२६०॥हे मुने! जिन्हों ने परमात्मा का तत्त्व जाना है ऐसे जो संतजन हैं सो आत्मज्ञान विना और देवता का पूजन नहीं करते हैं जो करते हैं तो भी बालकों की क्रीडा समान करते हैं ॥६१॥ हे ब्रह्मन्! आत्मा ही देवता है सो ही भगवान् शिव है और जगत् का परम कारण है सो ज्ञान करके पूजने योग्य हैं सो सर्वदा जानने योग्य है ॥ ६२ ॥ हे मुने! तू इस आत्मा को चैतन्यता के आकाश को मान और अविनाशी जान जीव जान अपने स्वभाव को जान सो ही पूजनीय है पूजने योग्य का आत्मा है उस को जानना ही उस का पूजन है ॥६३॥ हे मुने! यह देह देवता का मंदिर है और जीव ही शिवरूपी देवता है अज्ञानरूपी निर्मल को त्याग करके सोहंभाव करके पूजन करे सोहंभाव क्या कहिये "सः शिवः अहं" सो शिव मैं हूं ॥ ६४ ॥

श्रीवासिष्ठजी का प्रश्न—हे महाराज! चैतन्याकाश क्या कहिये और माया का स्वरूप यह जगत् कैसे भासता है और आत्मा के पूजन में आत्मा को जीवादि भाव कैसे होता है इस को तुम मेरे प्रति कहो चैतन्य और चैतन्यता का आकाश आत्मा और जीव चैतन्य की सत्ता और जगत् यह एक है अथवा भिन्न हैं यह भी कहो ॥ ६५ ॥

ईश्वरजी कहते हैं—हे मुने! सर्वत्र चैतन्यरूप आकाश भासता है कैसा है पारावार की मर्यादा से रहित है जिस की चैतन्यता प्रलय

काल में शेष रहती है आकाश कैसा है जैसे गृह में सर्व वस्तु निकासने से शेष अंदर में आकाश ही रहता है तैसे ही मायासहित जगत् का लय होनसे आकाश की नाईं एक चैतन्य शेष बाकी रहता है ॥६६॥ हे मुने! जो जो सूर्य चंद्रादिक आप ही प्रकाशमान होते हैं तिन का प्रतिबिंब का प्रकाश अपने में नहीं होता है जलादिक उपाधिमें प्रतिबिंब होता है ॥ ६७ ॥ हे मुने! आत्मा स्वयंप्रकाश है माया संकल्प रूप है प्रतिबिंब जीव है तिस आत्माके प्रकाश से जगत् में सत्ता है ॥ ६८ ॥ हे मुने! इसी रीति करके जगत् स्वप्न के और संकल्प के नगर जैसा भासता है सो चैतन्य के प्रकाशसे भासता है इस कारण से जगत् चैतन्यरूप है चित्र का आधार दिवाल सरीखा भिन्न नहीं है ॥ ६९ ॥ हे मुने! सो आत्मा का चैतन्य विकाररहित होने से और प्रतिबंध रहित होने से और संकल्पद्वार करके फुरणे से आकाश की नाईं दृश्य होता है सो चिदाकाश अपने चेतने से सृष्टि आदि में प्रकाश होता है तिस को जगत् कहते हैं॥२७०॥हे मुने! तिस कारणसे स्वप्न के नगर जैसा अथवा संकल्प नगर जैसा जो यह जगत् यहां भासता है तिस में चिदाकाश से विना दूसरा कुछ कहां से हैं ॥ ७१ ॥ हे मुने! सृष्टि आदि से सब कुछ जानने में स्वर्गपातालादिक में चिदाकाश से भिन्न क्या है जाननेवाले तत्त्ववेत्ता कह देवे तिस से सर्वत्र चैतन्य मात्र ही है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन्! यहां भेद कोई नहीं है आकाश है परमाकाश है ब्रह्माकाश है जगत् है चित् है यह सब नाम भेद हैं वस्तु एक ही है जैसे एक बीज के अनेक अंकुर और वृक्ष और फल बीज होते हैं वह बीज एकरूप ही सब में एक है,दो हैं इत्यादि भेद केवल नाममात्र है ॥ ७३ ॥ हे मुने! जैसे अंतःकरण के ज्ञानरूपी फुरना आकाश स्वप्न में जगद्रूप करके भासता है तैसे ही जाग्रत नाना स्वप्न में सो संविदका फुरणा रूपी आकाश जगतरूप भासता

है ॥७४॥ हे मुने! इस प्रकार करके यह संपूर्ण विश्व केवल परमात्मा है और ब्रह्म है और परमाकाश है और यही सनातन देव है ॥ ७५॥ हे मुने! तिस आत्मारूपी देव को जानना ही पूजन है यही परम कल्याण है इस से ही सर्व शुभ प्राप्त होता है सो आत्मा ही स्वर्गादिक का मूल आधार है तिस में यह नाना प्रकार का विश्वस्थित भया है ॥ ७६ ॥ हे मुने! तिस परमात्मारूप देव का पूजन से अखंड सुख फल प्राप्त होता है कैसा है किसी साधन सामग्री से बनता नहीं है और आदि अंत से रहित है बाहिर के साधन जो हैं कर्म क्रियादिक तिन करके सिद्ध नहीं होनेवाला है ॥ ७७ ॥ हे मुने! तुम आत्मतत्त्व जानने में सावधान हो तिस कारण से तुह्मारे को प्रकट कहा है तुम मूढ लोकों सरीखे नामधारी देवता को पूजने के योग्य नहीं हो जिस में पुष्पधूपादिकों का महासामग्री का संग्रह करने बनता है सो वृथा है ।७८॥ हे मुने! जो पुरुष मूढबुद्धि है बालकों की नाईं जिन के चित्त हैं तिन को पुष्प-धूपादिकों करके नामधारी देवता की कृत्रिम पूजा कही है ॥ ७९ हे मुने! अपने संकल्प करके किये जो पदार्थ और विधान क्रम हैं तिन करके नामधारी कृत्रिम देवता की पूजा करके बालबुद्धि पुरुष संतोष को प्राप्त होते हैं ॥२८०॥ हे मुने! सो मूढ पुरुष अपने संकल्पसे रचना किये द्रव्यों करके देवता पूजन करके जो जिस देवता से फल को पावते हैं सो मिथ्या फल को पावते हैं अखंड सुख तिन को नहीं होता है ॥ ८१ ॥ हे मुने! हस्त पादादिअंगवाला जो देवता पूजा को कलपन किया है तहां अपने चैतन्य का संकल्प फुरने बिना और सार क्या है सो तुम कहो ॥ ८२ ॥ हे मुने! संसार केवल चैतन्यमात्र है इस का सार चैतन्य ही है सो ही चैतन्यात्मा देव है सो सर्वरूप है तिस से ही सर्वदा सुख प्राप्त होता है ॥८३॥ हे ब्रह्मन्! सो देव दूर नहीं है और दुर्लभ भी किसी को नहीं है

सो सदा संपूर्ण देहों में चैतन्य सत्ता करके व्याप्त है जैसे आकाश सर्व ब्रह्मांड में व्याप्त है ॥ ८४ ॥ हे मुने! सो आत्मा ही कर्म करता है, सो ही भोजन करता है, सो ही धारण करता है सो ही चलता है सो ही श्वास को लेता है सो ही अंतःकरण करके जानता है सो ही त्वचा करके अंगों को जानता है ॥ ८५ ॥ हे मुने! जैसे वसंत ऋतु पुष्पअंकुरादिकों की इच्छा से रहित है तौभी स्वभाव करके अंकुरों को प्रकट करता है तैसे ही चिदात्मा से इच्छारहित ही जगत् की संपदा स्वभाव करके प्रकट होती है ॥ ८६ ॥ हे मुने! कितने कहते हैं आत्मा को इच्छा करके भोगों के वास्ते सृष्टि होती है, कितने कहते ह चिदात्मा की क्रीडा की इच्छा करके संकल्प से सृष्टि होती है, परंतु यह विचार कोई नहीं कारण आत्मा इच्छारहित है उस को भोग की और लीला की कोई इच्छा नहीं है जैसे सूर्य के उदय होने से स्वभाव करके प्रकाश होता है तैसे ही आत्मा की सत्ता करके जगत् की सृष्टि होती है ॥ ८७ ॥ हे मुने! जैसे शरदृतु में निर्मल चंद्रमा के संगम को पा करके जगत् के पदार्थों की शोभा सर्वत्र लक्षित होती है तैसे चैतन्यरूपी चंद्रमा के बिंब की सत्ता में संगम को पा करके जगत् के पदार्थों की संपदा चैतन्यसत्ता विषें सर्वत्र लक्षित होती है जगत् के संपूर्ण पदार्थों की संपदा का लक्षित होने को चैतन्यसत्ता ही आधार बनी है ॥ ८८ ॥ हे मुने! जैसे रसायन का जल सिंचन से लोह के अनेक भार सुवर्ण होते हैं तैसे चैतन्य सत्तारूपी रसायन की व्याप्ति करके जगत् के पदार्थ समूह की माला स्वरूप करके भासती है और आनंद-प्रेम आदि फल को प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥ हे मुने! जो तुम को ऐसा संदेह होवे कि चैतन्य सत्ता रसायन की नाईं व्याप्त हो करके पदार्थरूप करके फुरे है तो जडता कैसे बनी है जैसे जल में डूबे भये पदार्थ का सूखने नहीं बने है इस में इम समा-

धारन करे है दृष्टांत करके हे मुने! चैतन्य की छाया करके ही जडता भी उदय होती है जैसे मंदिरादिक जो हैं सो सूर्य के तेज करके प्रकाशमान होते हैं तिन के अंदर स्तंभादिक भी सूर्य के तेज से ही प्रकाश होते हैं परंतु बाहिर सूर्य का प्रकाश प्रकट है और अंदर में काष्ठमृत्तिकापाषाणादिकों के प्रतिबंध से सूर्य की छात्ता करके अंधेरा होवे है तैसे ही चैतन्यसत्ता की व्याप्ति करके देह इंद्रियादिक भासता है परंतु देहइंद्रियादि घटपटादिकों मे चैतन्यसत्ता स्पष्ट नहीं अनुभव होती है तिन के अभ्यास करके अंतःकरण में जडता होती है ॥ २९० ॥

श्रीवसिष्ठजी का प्रश्न—हे महाराज! तुम ने कहा जो चैतन्य सर्व व्यापी है और सर्वगत है चैतन्य तो एक सरीखा है पुनः यह देह चैतन्यमय है सो मूर्छा और निद्रा और मरणादिक में जड कैसे होवे है और नेत्रश्रवणादिक के होने से अंधा बहिरासा कैसे होता है ॥ ९१ ॥ फिर इस देह को लोक प्रत्यक्ष अनुभव से कहते हैं यह देह आगे चैतन्य था अब जड हो गया है ऐसा कहना योग्य नहीं है सो कैसे चैतन्य सत्ता की व्याप्ति करके भासता है सो चैतन्य अविनाशी है और निर्विकार है और सदा एकरस है ॥ ९२ ॥

श्रीसदाशिवजी वासिष्ठ प्रति कहते हैं.

हे ब्रह्मन्! जो तुम ने प्रश्न किया है सो तुम को हम कहते हैं तुम सब को श्रवण करो तुम ने यह महान् प्रश्न किया है तुम ब्रह्मवेत्ता पुरुषों में श्रेष्ठ हो ॥ ९३॥ हे मुने! इस देह में चैतन्यसत्ता व्याप्त है और सर्वभूतों में व्याप्त है सो प्रकार करके कह्या है एक चलायमान कही है और एक परा कही है सो अचल है जो चलायमान है सो देह इंद्रियादिक पदार्थों में आसक्त भई है जैसी तिन की उपाधि करके ज्ञाता

ज्ञान कर्त्ता और भोक्ता इत्यादिक स्वभाववाली कही है और जो प-राचित् है निर्विकार है इसी चित्त को उपाधिक भेद करके चलस्वभाव कहा है ॥ ९४ ॥ हे मुने ! सो चलस्वभाव चैतन्यसत्ता बुद्धि में अपने संकल्प करके आप ही रूपांतर को प्राप्त भयी जैसी स्थित जैसे सुंदर-शीलवाली स्त्री अपने संकल्प करके परपुरुष संयोग को ध्यान करके स्वप्नादिक में व्यभिचारिणी के स्वभाव को अनुभव करती है ॥ ॥ ९५ ॥ जैसे कोई पुरुष क्रोध करके क्षण में और जैसा हो जाता है तैसे यह चैतन्यसत्ता अपने संकल्प विकल्प करके और स्वभाव जैसी होती है परंतु अपने स्वभाव को नहीं त्यागती है ॥९६॥ हे मुने ! सो चैतन्यसत्ता ही अपने संकल्प करके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पंच-भूत, देश, काल और चौदह भुवन, सप्त द्वीपादि और क्षण से ले कर वर्ष युग कल्प प्रमाण हो करके आप ही जीव हो करके बुद्धि और मन और चित्त इंद्रिय देहरूप होता है ॥ ९७ ॥ हे मुने ! सो चल स्वभा-व चैतन्यसत्ता मन हो करके संसार को अवलंबन करती है जैसे उत्त-म ब्राह्मण अपने को चंडाल मानने से चंडालरूप को प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ हे मुने ! सो चलस्वभाव चैतन्यसत्ता अनंत संकल्पवाली है अपने जडता के संकल्पों करके स्थूलरूप होती है सो जडसंकल्प से मोह को प्राप्त होती है जैसे जल अत्यंत शीतलता करके प-त्थरभाव को प्राप्त होता है ॥ ९९ ॥ हे मुने ! सो ही अपने संकल्प से भई हुई भय दृष्टि में भीत हो करके पलायन करती है जैसे पुरुष निर्जल स्थान में वन में अंधकार में अपने संकल्प से कल्पना किये वेताल के भय करके पलायन करता है ॥ ३०० ॥ हे मुने ! जैसे ऊ-टनी कांटेवाले और कडुए पत्रों को चावती है और अत्यंत मीठे जा-नती है तैसे दुःखमय विषयों को सुख करके मानती है ॥१॥ हे मुने ! सो ही अपने संकल्प के वेग से भयभीत होती है जैसे गर्दभी अपने

बोलने के शब्द से भयभीत हो करके भाग जाती है. हे मुने ! इस के तुल्य मूढ कोई नहीं है बाल स्वभाव भी नहीं है और चंचल स्वभाव भी नहीं है और निर्बल भी नहीं है ॥ २॥ हे मुने ! सो ही अपने को दुःखी मान करके झूंठे विषयसुखों का संग्रह करती है कैसी है मानो स्वप्न को प्राप्त भई है मानो मदोन्मत्त है मानो मोह करके मूर्छित भई है ॥ ३ ॥ हे मुने ! यह चैतन्यसत्ता अपने संकल्प की उपाधि करके इस प्रकार चंचल स्वभाव भई है वास्तव विचारे तो इस में दृश्य और दर्शन और द्रष्टा यह भेद कोई नहीं है जैसे पत्थर में तेल नहीं है कर्म और कर्ता और क्रिया भी नहीं है जैसे चंद्रमा में श्यामता नहीं है प्रमाण करनेवाला प्रमाण करने योग्य और प्रमाण यह भेद भी नहीं है जैसे आकाश में अंकुर नहीं उगे हैं ॥ ४ ॥ चेतना और चेतने योग्य और चेतन करनेवाले का भेद भी नहीं है जैसे स्वर्ग के नंदनबाग में खदिर वृक्ष नहीं होता है और हम तुम इतर पुरुष का भी भेद नहीं जैसे अंबर में पर्वत भाव नहीं होता है देहरहित और देहसहित यह भेद भी नहीं है जैसे कज्जल में शंख जैसी श्वेतता नहीं होती है ॥ ५ ॥ अनेकरूपता और एकरूपताका भेद नहीं है जैसे अणु में सुमेरु नहीं है शब्द और शब्द को अर्थ का भेद भी नहीं है जैसे रेती में लता नहीं होती है नास्ति और आस्तिका भेद नहीं है जैसे सूर्यमंडल में रात्रि नहीं है और वस्तु और अनही वस्तु यह भेद भी नहीं है जैसे तुषार में उष्णता नहीं है और शून्यता और अनही शून्यता का भी भेद नहीं है जैसे आकाश में महा आकाश नहीं है ॥ ६ ॥ हे मुने ! जो निर्विकल्प चैतन्यसत्ता है सो सर्वगत है और एक स्वभाव है और निर्मल है सब को प्रकाश करती है सर्व तेजों को मशाल सरीखी प्रकाश करनेवाली है ॥ ७ ॥ जो निर्विकल्प चैतन्यसत्ता है सो अपने ही चेतने से चिद्भावको प्राप्त भई है सो ही चलस्वभाववाली चैतन्य-

सत्ता चित्त भई है जैसे साधु पुरुष दुष्ट जनों के संग होने से असाधु जैसा होता है ॥८॥ सो निर्विकार चित्सत्ता उपाधि करके विकारयुक्त भासती है उपाधि विना शुद्ध ही है जैसे सुवर्ण मल करके तांबा की नाईं होता है मल जलावने से शुद्ध सुवर्ण होता है॥९॥इस शुद्ध चित्सत्ता का अभाव जानने से संसार प्रतीत होता है और केवल शुद्ध चित्सत्ता जानने से असत्यरूप संसार शांत होता है ॥ ३१० ॥ हे मुने ! इस चित्सत्ता को संसारदशा में चढावने को रथरूपी जीव भाव है जीव को संसार में प्राप्त करने को अहंकार रथरूप है अहंकार को बुद्धि रथरूप है और बुद्धि को मन रथरूपी है और मन को इंद्रियों का गण रथरूपी है और इंद्रियगण को प्राण रथरूपी है प्राण-को स्थूल देह रथरूप है और स्थूलदेह को अश्व वृषभादिकों करके चलनेवाला काष्ठरचित रथ है ॥ ११ ॥ हे मुने ! इस रथ की गति कर्म है जरा और मृत्यु इस के पिंजरारूप है इस प्रकार करके यह संसारचक्र प्रवृत्त होता है ॥ १२ ॥ हे मुने ! इस संसारचक्र का मुख्य प्राण ही रथ कहा है मन के संकल्प विकल्प-कल्पना का मूल रथ प्राण है प्राण करके ही मन प्रवृत्त होता है यहां प्राण पवन है तहां ही मन प्रवृत्त होता है यही जीवरूपी पक्षी को जरामरण में भ्रमावनेवाला चक्र है ॥ १३ ॥ हे मुने ! पवनसंकल्प विना आकाश में लीन और संकल्परहित होने से प्राण भी नहीं प्रवृत्त होता है जैसे तेज के अभाव होने से रूप नहीं दृश्य होता है ॥ १४ ॥ हे मुने ! चित्त के फुरने और प्राण की नाडियों में प्रवृत्त होने से मन द्विगुण होय करके प्राण-मार्ग में प्रवृत्त होता है ॥ १५ ॥ हे मुने ! सो चित्सत्ता चित्त में ज्ञानरूप करके फुरती है सो इस देह में सर्वत्र है प्राण के प्रवृत्त होने से क्षोभ को प्राप्त होती अनुभव होती है ॥ १६ ॥ हे मुने ! परमात्मा ने देहरूपी गाडियों के खैंचने निमित्त मन और प्राण दृढ काम करने-

वाले जोतने के बैलस्थान में अधिकारी किये हैं ॥ १७ ॥ हे मुने! सूक्ष्म शरीर पवनरूप हो करके उठावता है हृदय में स्थित है भूत की नाईं भ्रमावता है तब शरीर को जीवता कहते हैं ॥ १८ ॥ हे मुने! जब सूक्ष्म शरीर क्षीण होता है तो चित्त शून्य हो जाता है तब इस देह को मृत भया कहते हैं ॥ १९ ॥ हे मुने! इस प्रकार करके अनेक देहधारियों के देह जन्म-मरण को प्राप्त होते हैं इस में शोक और आश्चर्य नहीं मानना ॥ ३२० ॥ हे मुने! चैतन्यसत्तारूप समुद्र में यह अनेक देहरूपी बुदबुदे फुरते हैं ऐसे ही अथवा इन देहों से विलक्षण हैं तिन को विचारवान् पुरुष अहंता और ममता करके शोक हर्ष को नहीं करते हैं ॥ २१ ॥ हे मुने! जो पदार्थ अपने संकल्प से रचन किया है सो संकल्प के त्याग से क्षय होता है जैसे मन के मनोरथ की रचना है जैसे गंधर्व नगर फुरे हैं वास्तव जानने से लय हो जाते हैं ॥ २२ ॥ हे मुने! जैसा संकल्प करने में खेद होता है तैसा संकल्प त्यागने में खेद नहीं है संकल्प का यक्ष और गंधर्व पुर यह दोनों संकल्प के उदय में सृष्ट भये हैं संकल्प क्षय में नहीं रहते हैं॥२३॥ हे मुने! पुष्ट भये केवल मन के संकल्प करके यह संसारदुःख प्राप्त भया है. तिस संकल्प के क्षय करने में कौनसी दीनता है ॥ २४ ॥ हे मुने! मनुष्य अल्प प्रमाण संकल्प करने करके दुःख में मगन होता है. और किंचिन्मात्र भी संकल्प नहीं करे, तो अखंड सुख को पावे है ॥ २५ ॥ हे मुने! जबलग तेरी बुद्धि संकल्परूपी अजगर सर्प से नहीं छुटी है तबलग तेरे को कल्पवृक्षों के बगीचा में भी आनंद नहीं होवेगा ॥ २६ ॥ हे मुने! जैसे पवनों के वेग करके वर्षाऋतु के बादलों के उड गये संते शरदऋतु में आकाश निर्मल होता है. तैसे तू भी विवेकरूपी पवनवेग करके अपने संकल्परूपी बादलों को उडाय करके परम निर्मलता को धारण कर ॥ २७ ॥ हे मुने! संकल्पों की

नदी महाप्रचंड प्रवाहवाली है. विवेकसहित मन करके सुकाइ करके तिस में वहे जाते अपने आत्मा को सावधान करके मन के संकल्पों से रहित हो जावो ॥ २८ ॥ हे मुने। यह तेरा मन संकल्परूपी पवन करके सूके पुराणे पत्र के और तृण के समान उडता है. तिस को त्याग करके चैतन्यस्वरूप आत्मा का आश्रय करके स्वस्थ होवो ॥ २९ ॥ हे मुने! जैसे संकल्प उदय करके गंधर्व नगर फुरे है. और संकल्पके आभास के क्षय होने से क्षीण होता है. तैसे संसार का भ्रम संकल्प के उदय से फुरे है. संकल्प के लय से लीन होता है ॥३०॥ हे मुने! तुम ऐसी भावना करो कि, मैं एक अद्वितीय आत्मा हूं, ऐसी भावना करके युक्त होवो तो तुम केवल आत्मा ही हो ॥ ३१ ॥ हे मुने! जो कछु स्थूल सूक्ष्म जड चैतन्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दृष्ट होता है श्रवण होता है, मन करके वाणी करके चिंतन में कहने में आवे है सो संपूर्ण एक अद्वितीय शिवरूप है कैसा है शांत है और वाणी के कहने से परे है ॐ कार की चौथी मात्रा में है, सो ही परम गति है ॥३२ ॥

श्रीवाल्मीकिजी भरद्वाज प्रति कहते हैं.

हे भरद्वाजजी! शिवजी इतना वचन कहते भये, तदनंतर परम पद में विश्रांति को पाय करके मुहूर्तमात्र मौन को धारण करते भये. कैसे हैं शिवजी? निर्मल ज्ञान दृष्टि युक्त हैं. परमपद कैसा है? सर्व विकार के परिणाम से परे है, और शांत शब्द है नाम जिस का ऐसे जो सदाशिवजी वसिष्ठजी करके सहित स्थित होते भये ॥ ३३ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सदाशिवजी क्षणमात्र ध्यान में मगन होय करके नेत्र कमलों को निमीलन करते भये परमपद के आनंद में स्थित होय करके मेरे सन्मुख नेत्रकमलों करके देखते भये फिर मेरे प्रति वचन कहते भये ॥ ३४ ॥

सदाशिवजी का बचन.

हे मुने! तू अपने मन के संकल्पादिकों को त्याग करके आत्मसत्ता को मन में प्रमाण कर आत्मसत्ता का अर्थ जान करके धारण कर अनर्थरूपी संकल्प को त्याग कर जैसे पवन अपने वेग करके पुष्पों की सुगंध लेता है ॥३५॥ हे मुने! परमात्मा विचार करके शांत भये संकल्पों को नहीं शांत भये संकल्पों को परित्याग करता है; याते तू धीरबुद्धि है, आत्मस्वरूप को देखनेवाला बन इस में संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ हे मुने! ब्रह्मा और विष्णु और हर इन से ले कर जे ते देवतादिक हैं सो सब ही परमात्मा से प्रकट भये हैं जैसे समुद्र से जल के बिंदु प्रकट होते हैं ॥ ३७ ॥ हे मुने! सो सब ही भ्रममात्र स्वरूप है परमात्मा से प्रकट भये हैं. स्थित भये हैं. तो भी भ्रम के बीज हैं संसाररूपी कल्पना के जाल के कर्त्ता हैं ॥ ३८ ॥ हे मुने! यह अविद्या परमाकाश में हजारों तरह से उदय होती है. कैसी है? वेद और वेदों के अर्थ के भेदवाली है. यथार्थ और अयथार्थ की भेदबुद्धि करके जीवों को बंधन करनेवाले मोहजाल की जडों की माला है॥३९॥ तिस कारण से यह अविद्या अंतर्रहित है. वारंवार उदय होती है. अपने देशकाल को सिद्ध करती है. इसका क्रम केवल नाममात्र से कहा है ॥ ४० ॥ हे मुने! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिकों को परमात्मा परमेश्वर जो हैं सो, प्रकट करने का पिता है. तत्त्ववेत्ता पुरुषों ने माना है. सो ही मूल का बीज है. जैसे पत्यों का महावृक्ष मूल कारण होता है ॥ ४१ ॥ सो परमात्मा सूर्य की नाईं स्वयंप्रकाश है सब को सत्ता देनेवाला है. तत्त्ववेत्ता पुरुष के सो ही वंदना करने योग्य है. और पूजने योग्य है. तत्त्ववेत्ता को सदैव प्रत्यक्ष है वास्तव विषय सो ही है. सर्वकाल में सर्वत्र उदय भया है ॥ ४२ ॥ हे मुने! तिस का न तो आवाहन है न उस का मंत्र है. और पूजा की विधि भी कोई योग्य

नहीं है ऐसे परमात्मा को सदैव आवाहन बना है जिस कारण से सो सर्वव्यापी है. सर्वांतर्यामी है. सर्वत्र प्राप्त होनेवाला है. आप ही चैतन्यरूप है ॥ ४३ ॥ हे मुने! तत्त्ववेत्ता पुरुष जौनसी दशा को पावते हैं, तिस तिस से ही आनंदरूप आत्मा के स्वरूप को पाते हैं. जो कछु रूप करके दृष्ट होता है, और श्रवण होता है. मन के संकल्प में आवता है, सो सब परमात्मा स्वरूप है ॥ ४४ ॥ हे मुने! तत्त्ववेत्ता पुरुष इस परमात्मा के स्वरूप को सर्वत्र देख करके सदा सुखी होते हैं. वह कैसा है स्वरूप ? जन्म, जरा, मरण, शोक भय को दूर करनेवाला है. तिस पुरुष को अग्नि में भूंजे बीजकी नाईं फिर जन्म का अंकुर नहीं होता है ॥४५॥ हे मुने! सो परमात्मा देव तत्त्ववेत्ता पुरुषों ने अपना सदा आत्मा जाना है, बाहिर ब्रह्मांड में अंदर अपने हृदय में सर्वकाल अनेक प्रकार क्रम करके पूजा जाता है॥४६॥हे मुने! हे महाबुद्धे!! बाहिर स्थूल मूर्ति में जबलग जिस प्रकार करके सो देव पूजित करा जाता है. तिस को भी तुम हमारे से श्रवण करोगे ॥ ४७ ॥ हे मुने! जे ते पूजा के क्रम हैं, तिन सब में देहरूपी मंदिर पवित्र चाहिये. तिस कारण से देह में ममता अहंकार का तिस को त्याग करके परमात्मा देव पूजने योग्य है ॥ ४८ ॥ हे मुने! तिस आत्मा का ध्यान करना ही पूजन है और तिस का पूजन का क्रम कोई नहीं है; तिस कारण से त्रैलोक्य को आधाररूपी आत्मा का नित्य ही ध्यान करके पूजन करे ॥ ४९ ॥ हे मुने! सो देव सर्वत्र चैतन्यरूप है सर्वत्र लक्षित करने योग्य प्रकाश स्वरूप है; सब को प्रकाश करनेवाला है; और सब के अंतःकरण में अंतर्यामीरूप करके चिदात्मा प्रकाश है जिस करके सो चिदात्मा अहंकार शरीरादिक में सब का सार बना है; तिस की सत्ता करके अहंकारादिक शरीरादिक को वर्तमान है सो ही सब का सार है ॥ ३५० ॥ हे मुने! सो मर्यादारहित परम

आकाशरूप है. अति विस्तार करके पृथिवी आकाश में परिपूर्ण है. अंत में रहित है. सब से नीचे पातालरूपी आकाश में जिस के चरणकमल हैं ॥ ५१ ॥ हे मुने ! अंत से रहित है, ऐसा दश दिशामंडल में परिपूर्ण भया है. भुजामंडल जिस का नाना प्रकार के देखने में महाप्रमाणवाले, महातेजवाले शस्त्र ग्रहण किये हैं जिस ने ॥ ५२ ॥ हे मुने ! जिस के हृदयकमल के एक कोण में अनेक ब्रह्मांडों के समूह आपस में स्थित हैं. प्रकाश करने का परम कारण है. आकाश की नाईं मर्यादा से रहित है. उदार है स्वरूप जिस का ॥५३॥ हे मुने ! जिस के नीचे और ऊपर और चारों दिशा, चारों विदिशा में निरंतर ब्रह्मा, इंद्र, विष्णु, शिवादिक देवतागण शोभायमान हैं॥५४॥ हे मुने ! यह जितनी ब्रह्मांड में भूतों की मंडली है, सो सब तिस की रोममाला है और नानाप्रकार के स्वरूप करनेवाली और त्रैलोक्य को बंधन करनेवाली तिस की अनेक इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति से लेकर शक्तियां जाननी ॥ ५५ ॥ हे मुने ! यही सब का परम देव है. संतजनों को यही सदा पूजनीय है. चैतन्यसत्ता मात्र करके अनुभव स्वरूप है. और सर्वगत है सबका आधार है. और घडे में, वस्त्र में, गर्त्त में, कंदरा में गाडी में, मनुष्य में, सत्ता करके स्थित है॥ ॥ ५६ ॥ यही शिव है, यही रुद्र है, यही ब्रह्मा है, यही विष्णु है, यही इंद्र है, यही कुबेर है, यही यम है, यही अनेक प्रकार की नाम संज्ञा का आधार है. और केवल सत्तामात्र शरीर है ॥ ५७ ॥ हे मुने! संपूर्ण जगत् के जाल को विवर्जित करनेवाला है. और काल भगवान् इस का द्वारपाल है. यह पर्वतों करके चौदह भुवनों करके युक्त संपूर्ण ब्रह्मांड मंडल इस के देह के एक किनारे में स्थित है. कोई एक अंग के अंश मात्रता को प्राप्त भया है ॥५८॥ हे मुने ! तिस देव को इस प्रकार से चिंतवन करे अनेक कर्ण

नेत्र युक्त है. अनेक शिर युक्त है. अनेक भुजा करके शोभित है. सर्वत्र देखने की शक्तियुक्त है सर्वत्र सूंघने की शक्ति युक्त है. सर्वत्र स्पर्श की शक्तियुक्त है. सर्वत्र रसग्रहण की शक्तियुक्त है. सर्वत्र शास्त्र की शक्तियुक्त है सर्वत्र शास्त्र श्रवण की शक्तियुक्त है. सर्वत्र मननशक्ति युक्त है ॥ ५९ ॥ सर्व प्रकार से मन की मननक्रिया से परे है. सर्व प्रकार से मन का परमानंद रूप है. सदैव सब का कर्त्ता है संपूर्ण संकल्प के फलों को देनेवाला है. सर्व भूतों की अंतःकरण की अवस्था में स्थित है. सब ही को सर्वप्रकार से साधन करनेवाला है ॥३६०॥ हे मुने! इस प्रकार के तिस देव का ध्यान करके तदनंतर विधि करके पूजन करे इस के पूजा के विधान को ब्रह्मवेत्ता में श्रेष्ठ तुम हम से श्रवण करो सो यह देव अपने स्वरूप को जानने मात्र स्वरूप है सो पुष्प धूपादिकों करके पूजित नहीं होता है दीप करके अन्नदानादिकों करके चंदन, केसर, कपूर, कस्तूरी आदिक लेपन से भी पूजित नहीं होता है ॥ ६१ ॥ हे मुने! नित्य प्रति क्लेशरहित हो करके अमृतरूप अपने आत्मस्वरूप के लाभ से पूजित होता है. यही इस का परम ध्यान है. यही इस की पूजा कही है, जो निरंतर अंतःकरण में शुद्ध चैतन्य मात्र को जानना॥६२॥ हे मुने! तत्त्ववेत्ता पुरुष देखता है, और श्रवण करता है, स्पर्श करता है, सूंघता है; भोजन करता है, चलता है, शयन करता है, श्वास लेता है, बोलता है, त्याग करता है, ग्रहण करता है, संपूर्ण कर्म करता हुआ शुद्ध चैतन्यमात्र होवे. ऐसे ध्यानरूपी अमृत करके पूर्ण हुए. अपने आत्मा को ईश्वर जाने ॥ ॥ ६३ ॥ हे मुने! ऐसे ध्यानरूपी अमृत के स्वादयुक्त होने करके पुष्प धूपादिक से रहित होने करके आत्मस्वरूप की पूजा होती है ॥ ॥ ६४ ॥ हे मुने! ध्यान करना और अर्घ्य देना और पाद्य देना सो सब शुद्ध चैतन्य का जानना है. ध्यान करके जानना ही पूजा का

पुष्प है. यही संपूर्ण ध्यानों से परे ध्यान है. समस्त क्रिया तिस देव को अर्पण करना ही पूजन है ॥६५॥ हे मुने! ऐसे पूजन विना सो देव कदाचित् भी प्राप्त नहीं होता है तिस के ध्यान से पुरुष परमानंदरूपी प्रसाद को प्राप्त होता है संपूर्ण भोग सुखों की संपदा को प्राप्त होता है॥६६ हे मुने! यह जीवरूपी देवता देहरूपी गृह में ऐसे ध्यान करके आनंद को भोगता है. इस प्रकार क्षणमात्र भी आत्मा का पूजन करे वह मूढ पुरुष भी गोदान के फल को पाता है और जो दो घडी प्रमाण पूजन करे तो अश्वमेध यज्ञ के संपूर्ण फल को भोगता है ॥६७॥ हे मुने! ध्यान करके पुष्पादिक मानसिक पूजा एक घडी मात्र करे तो राजसूय यज्ञ के फल को भोगता है. और मध्याह्नकाल पर्यंत पूजन करे तो लक्ष राजसूय यज्ञ के फल को भोगता है. जो पुरुष संपूर्ण दिन पूजन करे तो परम पद को पावता है. यही परमयोग है और यही परम क्रिया है ॥ ६८ ॥ हे मुने! यह सब से उत्तम बाह्य पूजन कहा है. यह परम पवित्र है. अविद्या के अंत करने का परम कारण है. इस करके जो अविद्या को तर जावे तिस पुरुष को संपूर्ण देवता, असुर, यक्ष, गंधर्व, मनुष्यों के समूह तिस को हमारे स्वरूप जान कर के पूजन करते हैं. सो पुरुष परम पद को प्राप्त भया जानना ॥ ६९ ॥ हे मुने! जौनसा पूजन पवित्र करनेवाले से भी पवित्र है. जो संपूर्ण पाप अविद्या के तम को क्षय करनेवाला है. सो अंदर का पूजन है. तिस को अब हम तुम को सुनावते हैं ॥ ३७० ॥ यही आत्मचिंतनरूपी पूजा संतजनों ने चलते हुवे, स्थित हुवे, जागते हुवे, शयन करते हुवे, नित्य करी है. तिस में अंतःकरण में स्थित भये शिवरूप परमेश्वर को सब की प्रतीति करनेवाले को अपने आत्मा को आप ही ध्यावे ॥ ७१ ॥ हे मुने! देह लक्षणवाले लिंगों में शांतरूप स्थित है; और मृत्तिकादिक लिंगों से रहित है और प्रतिमा मूर्ति से वर्जि-

त है; ऐसे ईश्वर को जैसा अपने को शुद्ध बोध होवे सो ही जिस का लिंगरूप है. ध्यान में लीन होने से रहित है. और ध्यान से चित्तवृत्तिके उच्चाटनरहित है; ऐसे अपने आत्मा को देवतारूप जान करके पूजा करे ॥७२॥ हे मुने! अपने देह में ज्ञानरूपी जो आत्मा का प्रकाश है. तिस को यही देवता है. ऐसी भावना करे मेरे को अनेक प्रकार मन करके नेत्रों करके चिंतन करे और देखे जो शक्तियां हैं, सो नानाप्रकारवाले निरंतर सेवन करता है. जैसे सुंदर अनेक प्रकार के भूषणयुक्त कामिनी सुंदर पुरुष को सेवती है ॥ ७३ ॥ हे मुने! मन तो मेरा द्वारपाल है. वह कैसा है त्रैलोक्य मेरे को निवेदन करता है. परमार्थ की शुद्ध चिंता मेरी द्वारपालनी है. और बुद्धि मेरी शक्ति है. और क्रियाशक्ति मेरी दूसरी स्त्री है; और नानाप्रकार के ज्ञान मेरे अंगों के भूषण है, और पंच ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय सहित मेरे देहरूपी मंदिर के द्वार है ॥७४॥ यह मैं हूं यह सो पुरुष हैं इस प्रकार करके अनंतरूप है, और भेद से रहित स्वरूप है; जिस का एक आनंद से पूर्ण भया है स्वरूप जिस का और अपनी सत्ता करके सब को पूर्ण करनेवाले है ऐसा मैं स्थित भया हूं॥ ७५ ॥ हे मुने! सो देव इसप्रकार की आत्मसत्ता में स्थित है; आपन स्वरूप के फुरणारूपी देवी शक्ति को आश्रय करके देवता भाव करके परिपूर्ण होय करके स्थित है. और दुःखदीनता से रहित स्वरूप करके स्थित है॥ ७६ ॥ सो देव अस्त नहीं होता है, उदय नहीं होता है, संतुष्ट नहीं होता है, और क्रोधी भी नहीं होता है, तृप्त नहीं होता है, क्षुधा को नहीं जानता है, चलता भी नहीं है, वांच्छा भी नहीं करता है. त्याग भी नहीं करता है ॥ ७७ ॥ हे मुने! और सब में एक समान है सब के समान आचार युक्त है. सब के समान निवास युक्त है. सब के समान आकारयुक्त है निर्मलता करके सौम्यता युक्त है और सब प्रकार करके सर्वत्र

सदैव सुंदर आशय युक्त है ॥ ७८ ॥ पिपीलका से ब्रह्मांत कर सर्व जीवों में एकसोही है. सर्व ब्राह्मांड में जिस की ज्ञान विचारवाली मति कहीं भी किसी प्रकार करके भी कदाचित् भी विच्छेद को नहीं प्राप्त होती ॥ ७९ ॥ और दीर्घ से भी दीर्घ देवता पूजन को भी निरंतर करता है. अपनी चैतन्यता युक्त देह इस की देवता है तिस देहरूपी देवता को जैसे भोग्य वस्तु प्राप्त होवे तिस वस्तु करके सर्व प्रकार करके पूजन करता है ॥३८०॥ हे मुने! तिस कारण से तिस देवता को सब प्रकार की सम बुद्धि करके चैतन्य मात्र देवता को देवता की नाईं जैसा प्राप्त भया क्रम करके सर्व प्रकार के अर्थ करके पूजन करे ॥८१॥ हे मुने! इस पूजन में नवीन वस्तु के निमित्त संग्रह के थोडाभी यत्न नहीं करना जैसा भक्ष्य भोज्य अन्नपान अनेक प्रकार ऐश्वर्य करके युक्त शयन और सवारी जैसी मिले तैसी सुंदर अन्न पान के भोग की सामग्री के विलास करके पूजन करे ॥ ८२ ॥ हे मुने! सुखप्राप्ति करके पीडाप्राप्तिकरके चिंतारोग करके मोह भय करके संपूर्ण उपद्रवदुःख करके जैसा होवे तैसे करके आत्मा को संबोधन करके पूजन करे॥८३॥ हे मुने! जैसी जगत् की मरण जीवन स्वप्नादिक चेष्टा प्राप्त होवे. दारिद्र अथवा राज्य जैसा माया प्रवाह करके प्राप्त होवे, तिस संपूर्ण करके आत्मा का पूजन करे ॥८४॥ हे मुने! नाना प्रकार की देह, मन, इंद्रियों की चेष्टारूपी पुष्पों करके शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा की पूजा करे, नाना प्रकार के कलह और नाना प्रकार के विलास करके युक्त स्त्रियों के विहारों करके शत्रुमित्रों के राग द्वेषों करके सौम्यरूप आत्मा की पूजा करे ॥ ८५ ॥ हे मुने! संतजनों के हृदय में प्राप्त भई चंद्रकिरण के नाईं शीतल है. और मधुर बोलना जिस का धर्म है. ऐसी सर्व भूतों की मैत्री करके सर्वांतर्यामी आत्मा को पूजा करे॥८६॥हे मुने! पापकर्म और पापीजनों का त्यागरूपी उपे..ा करे.

दीन दुःखी जनों में दयारूपी करुणा करके पुण्यवान् जनों में हर्षरूपी मुदिता करके और शुद्ध भई शुद्ध आचार प्रवृत्ति करके और आत्मस्वरूप के बोध करके आत्मा की पूजा करे ॥८७॥ हे मुने! निषेधरहित जो भोग हैं, तिन के सेवन करके और निषेधवाले भोगों के त्याग करके सदा बोधयुक्त आत्मा को पूजन करे॥८८॥ हे मुने! जो जो भोग पदार्थ नष्ट हो जावे तिस के त्याग करके जो जो भोग प्राप्त होवे तिस तिस ग्रहण करके और सदा सर्वदा एक रस करके आत्मा का पूजन कहा है ॥ ८९ ॥ हे मुने! सदैव इष्ट चेष्टा में और अनिष्ट चेष्टा में एक समान दृष्टि धारण करनी ऐसी आत्मपूजा के व्रत को धारण करे ॥ ॥ ३९० ॥ हे मुने! जो जो इस को शुभ प्राप्त होवे और जो जो अशुभ प्राप्त होवे तिस तिस सब को केवल आत्मा के अधीन करे ॥९१॥ हे मुने! जौनसा विषयभोग अंतपर्यंत शुभ होवे और जो अंतकाल पर्यंत दुःखदायी है तिस संपूर्ण को समजाने इस प्रकार आत्मपूजा का व्रत धारण करे ॥ ९२ ॥ यह मैं हूं सो मैं हूं यह मैं नहीं इस प्रकार के विभाग त्याग करे सब ही ब्रह्म है. ऐसे निश्चय करके आत्मा की पूजा का व्रत धारण करे ॥ ९३ ॥ हे मुने! चाहे पदार्थ का त्याग करे और अनचाहे का भी त्याग करे. और दोनों को एक समान करे इस प्रकार करके आत्मा की पूजा करे ॥ ९४ ॥ हे मुने! ना किसी की वांछा करे. ना किसी का त्याग करे. सब को देव गति करके स्वभाव से प्राप्त भये को जाने जैसे नदियों के जल समुद्र के साथ मिलते हैं तैसे भोग भूमि को मिलती है इस में तुच्छ वडी वस्तु विषें उदासीन नहीं होना ॥ ९५ ॥ हे मुने! जगत् में अनेक पदार्थ उदय होते हैं और पतित भी होते हैं. देश, काल और क्रिया योग से जो कुछ शुभ अशुभ प्राप्त होते हैं और नष्ट होते हैं जैसे आकाशनाश वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है तैसे असंग रहे रागद्वेष से असंग रहे आत्मपूजा के व्रत को धा-

रण करे ॥९६॥ हे मुने! यह आत्मा के पूजनका विधान कहा है इस में जैसा आत्मा कहा है. तिस प्रकार करके विधि करके आत्मा की पूजा करे एक आत्मस्वरूप के आनंद रस करके एक रस भावना करे. खट्टा, कडुआ, तीक्ष्ण, कसैला, मीठा, सलूना और रससहित और रसरहित यह इंद्रियों के जानने योग्य रसों की भावना नहीं करे. एक ज्ञानामृत करके एक रस होवे॥९७॥ हे मुने! तिस चैतन्य स्वरूप के ज्ञानामृत की एक रसता करके सब ही क्षण अमृत में हो जाता है इस में मन लीन होवे तो विकार रहित होता है. क्लेश दुःख से रहित होता है यही आत्मा का पूजन कहा है ॥९८॥ हे मुने! जैसे समदृष्टि पुरुष को पूर्ण चंद्रमा की नाईं आत्मज्ञान करके पूर्ण होने योग्य है तैसे निर्मल होने योग्य है स्वरूपानंद करके पूर्ण होने योग्य है सर्वज्ञ होय करके भी पाषाण की नाईं संसार दशा में जड होना योग्य है अंतःकरण में निर्मल होना योग्य है और बाहिर मूढों की नाईं संसार कार्य में आसक्त होने योग्य है ॥ ९९ ॥ हे मुने! सो पूर्ण ज्ञानी लोक व्यवहार की रंजनारूपी मलसे मुक्त होता है ज्ञान करके पूर्ण होता है और आत्मा की उपासना करता है ॥ ४०० ॥ हे मुने! तुम देशकाल की क्रिया करण कर्म करके उदय भये संपूर्ण वस्तु समूह के सुखदुःखों के भ्रम करके रहित हो करके अपने शरीर को चेतनेवाले सर्वात्मा ईश्वर की नित्य प्रति पूजन करो. और सदा शांत भई समस्त आशा जिस से ऐसी बुद्धि करके सावधान रहो ॥ १ ॥ हे मुने! आत्मा सब ही कार्य कारण भेद से रहित है और इंद्रिय मन के व्यवहार से परे है अंतःकरण में चित्कला करके व्याप्त है तिस को पूज्य पूज के भाव कहां है परंतु यह भ्रम तिस में कहां से उदित होता है यह कथन मात्र ही है ॥ २ ॥

श्रीवसिष्ठजी का प्रश्न ईश्वरजी प्रति.

हे महाराज ! हे ईशान !! जिस आत्मा को तुम ने बुद्धि संयुक्त इंद्रियों की अदृश्यता कही है तो हे महाराज! फिर पुरुष तिस को कैसे प्राप्त होते हैं. यह तुम कहो ॥ ३ ॥

ईश्वरजी वसिष्ठजी प्रति कहते हैं.

हे मुने! तिस को मुमुक्षुजन गुरु शास्त्र की युक्ति करके होते हैं तिस युक्ति को तुम श्रवण करो जो मुमुक्षु पुरुष होता है तिस में अविद्या का सात्त्विक अंश रहता है सो केवल सात्त्विक विद्या के भागवाले शास्त्रों करके और नामों करके श्रेष्ठ सात्त्विक विद्या करके अश्रेष्ठ अविद्या को दूर करता है. जैसे धोबी मलीन जल करके वस्त्रों को पहिले मलीन करके वस्त्रों की मलीनता को दूर करता है ॥ ॥४॥ फिर जैसे ताल वृक्ष का फल कठिन होता है, काकादि पक्षियों करके भेदा नहीं जाता है. जब पक करके आप ही पडे तो भिन्न होता है. तो काकादिक आवे अथवा नहीं आवे परंतु अकस्मात् पक्का तालफल वृक्ष से गिर पडा तहां अकस्मात् तत्काल काक आ गया उस को फल के रस का भोग प्राप्त भया. अब इस दृष्टांत को पहिले से युक्ति करके दार्ष्टांत के साथ मिलावते हैं ॥ ५ ॥ हे मुने! महावाक्य प्रमाण करके शुद्ध सतोगुण के भाग करके भई ब्रह्माकार वृत्ति करके अविद्या का पटल दूर होता है. तिस के साधन शम दमादिक हैं. अंतःकरण को शुद्ध करने से केवल शुद्ध सतोगुण के अविद्या अंश हैं सच्छास्त्र, सद्गुरु, सत्संग और ईश्वर के नाम गुण यह भी अविद्या के सतोगुणी अंश हैं इन करके श्रवण, मनन, निदिध्यासन होने करके श्रेष्ठ अविद्या के अंशभागों करके अंतःकरण को पट की नाईं छादन करनेवाली तामसी अश्रेष्ठ अविद्या को दूर करने वास्ते मुमुक्षु पुरुष अनेक जन्मों से निष्काम यज्ञ,दान, तप,ईश्वराधन क-

रके पुण्य संचय से पवित्र अंतःकरण होय करके गुरु शास्त्रोपदेश युक्ति श्रवणादिकों को करने से काकतालकी नांई अकस्मात् अविद्या दूर भई संते ब्रह्म को साक्षात्कार करके चिरकाल स्थित रहते हैं ॥६॥ हे मुने! चिरकाल अभ्यास करके अंतःकरण शुद्ध होने से अविद्या पटल दूर होने से स्वभाव करके शुद्ध चैतन्य को केवल आत्म विचार से अपने में ही सर्वगत, एकरस, अद्वितीय, अखंड, सत्, चित्, आनंद परमात्मा परब्रह्म को देखते हैं॥७॥ हे मुने! सो आत्मा केवल शास्त्रार्थों करके गुरुओंके वचनों करके नहीं जाना है किंतु आत्मबोध से जाना है। साधनों के चिरकाल अभ्यास से, सद्गुरुओं की सेवासे, सच्छास्त्रों के विचार से सच्छिष्यों के उपदेश से. सत्पुरुषों के सत्संग से; आचार अंतःकरण होने से अविद्या की निवृत्ति आत्मस्वरूप की प्राप्ति और ब्रह्मसाक्षात्कार होता है. केवल नाम मात्र कथा से नहीं होता है। जैसे दिन में लोकों का संचार स्वभाव करक आपही होता है आत्मविचारवाले को आत्मज्ञान और आत्मस्वरूप का लाभ आपही स्वभाव करके होता है ॥ ८ ॥ हे मुने! यही आत्मा का पूजन है इस को जान करके जो करे सो पुरुष यहां परमात्मा की आज्ञा के वशवर्त्ती हम लोक प्राप्त होवें हैं तिस परमपद को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

श्रीवसिष्ठजी का प्रश्न ईश्वरजी प्रति.

हे महाराज! इस जगत् को गंधर्वनगर की नांई और स्वप्न के नगर की नांई जानते हैं, तौ भी महादुःख से भी महादुःख देनेवाले समर्थ हैं इस दुःख के निवृत्त होने की किसी युक्ति को कहो ॥४१०॥

श्रीईश्वरजी वसिष्ठ प्रति कहते हैं

हे मुने! इस जगत् का दुःख वासना के वश से है जो जगत् वासना

में होवे तो वासना नष्ट नहीं होती है; और जगत् का दुःख भी निवृत्त नहीं होता है. और वासनासे जगत् दूर जावे तो जगत् का दुःख मृगतृष्णा के जल की नाईं तीन काल में असत्य प्रतीत होता है ॥ ११ ॥ हे मुने! इस कारण से वासना क्या है? किस को है? वासना में क्या तत्त्व है? हे मुने! जैसे स्वप्न के पुरुष का मृगतृष्णा के जल का पान करना कहीं भी सत्य प्रतीत नहीं होता है तैसे जगत् की प्रतीति वासना मात्र जाननी ॥ १२ ॥ हे मुने! जगत् की सत्यता में और देह-गेहादिकों की अहंता ममता में और मृगतृष्णा के जल में सत्य प्रतीति जो करे तिस पुरुष को उपदेश करनेवाले को धिक्कार है ॥ १३ ॥ हे मुने! तत्त्वज्ञानी विवेकी पुरुप को उपदेश करते हैं, और बालक को, विक्षिप्त पुरुष को, भ्रांतियुक्त पुरुष को, दुष्ट को, दुर्जन संगतिवाले को उपदेश नहीं करते हैं और जो कोई मूढ पुरुष को उपदेश करता है सो पुरुष सुवर्ण के रंग की नाईं सुंदर अपनी कन्याको स्वप्न में देखे पुरुष को देखता है ॥ १४ ॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी के प्रति कहते हैं.

हे रामजी! नीलकंठजी इतना कह कर मेरे को पुष्पांजलि दे अपने गणों करके संयुक्त आकाश को चढ जाते भये ॥ १५ ॥ हे रामजी! तिस त्रिलोकनाथजी के जानेसे मैं भी क्षणमात्र तिस का स्मरण करके तिनके कहे देवतापूजन को अंगीकार करता भया और लौकिक पूजन को त्यागता भया जैसे शांतवृत्तिवाला पुरुष लोकव्यवहार को त्याग देता है आत्मविचार को अंगीकार करता है ॥ १६ ॥ इति शिवगीता संपूर्णा ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी को कहते हैं.

हे रामजी! तदनंतर तिस काल से अब लग उसी क्रम करके ए-

काग्र हो करके आत्मा के अर्चन को करता ही रहाहूं ॥ १७ ॥ हे रामजी! ग्रहण करना और ग्रहण योग्य पदार्थ का संबंध संपूर्ण देहधारी जीवों को एक समान है परंतु योगी जन को आत्मस्वरूप में सावधान रहना ही आत्मपूजन कहा है ॥१८॥ हे रामजी! धन और बांधवों के वियोग से बहुत दुःख प्राप्त होने से भी इसी आत्मविचारदृष्टि को धारण करके हे शुभ व्रत करनेवाले! तू भी विचार को दृढ कर ॥ १९ ॥ हे तात! तू शुद्ध चिन्मात्ररूप है तेरे से जगत् भिन्न नहीं है इस से तेरे को त्याग करने और ग्रहण करने की कल्पना कही है ॥४२०॥ हे रामजी! सब ही चैतन्य है ऐसे ज्ञान को पा करके सुषुप्ति अवस्था की नाईं आत्मस्वरूप में मग्न होने की स्थिति को तू प्राप्त भया है परंतु अब से लेकर स्वरूपानंद की आसक्ति से परे शुद्ध चिन्मात्र तुरीयावस्थास्वरूप हो जाना श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

श्रीरामचंद्रजी का वचन—हे गुरुजी! आज से लेकर स्वर्ग की वांछा मैं नहीं करता हूं और नरक का द्वेष नहीं करता हूं जैसे मंदर पर्वत समुद्रमंथन से उपरांत अडोल रहे तैसे आत्मस्वरूप में एकाग्र स्थित रहूंगा ॥ २२ ॥ हे गुरुजी! तुह्मारी कृपा से अब मेरा मन संपूर्ण कल्पना के गलने से संकल्परहित भया है वांछा भी इस से गलित भई है और उदार निश्चययुक्त भया है त्रैलोक्य में जितनी ऐश्वर्य आनंदप्राप्तिकी प्रसन्नता होती है तिस से भी अति प्रसन्नरूप भया है अंतःकरण में ही आनंद पूर्ण भया है उत्तम से भी अतिउत्तम भया है ॥ ४२३ ॥

श्रीवसिष्ठजी का बचन—हे रामजी! जो तू केवल शरीर करेक अथवा इंद्रियों करके युक्त वर्तमान जैसा आवे तैसे अर्थ में वर्तनवाले असंग मन करके जो कर्म करे सो तैं ने नहीं किया है ति-

स कर्म से तू असंग है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! जैसे प्राप्त होने के क्षण में वस्तु तुष्टि करता है तैसे ही नहीं प्राप्त होने के क्षण में तुष्टि को नहीं करता है इस जगत् में इस प्रकार करके पदार्थ कौन नहीं भोगता है सब ही भोगते हैं परंतु वस्तु की प्राप्ति-अप्राप्ति में मन को असंग करने से पदार्थ भोगने का दोष नहीं है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! लोकव्यवहार ऐसा है पदार्थ वाहने में जैसी तुष्टि होती है तैसी पदार्थ की हानि में तुष्टि नहीं होती है ऐसे क्षण सुखवाली वस्तु में अज्ञान बालक प्रीति को धारण करते हैं विवेकी जन तिस में प्रीति को नहीं करते हैं ॥ २६ ॥ जिस की वांछा काल में तुष्टि होती है तिस के सुख-दुःख का कारण वांछा ही है और तिस की तुष्टि जो है सो तुष्टि में अंत को प्राप्त होती है तिस से भोगपदार्थों की वांछा का परित्याग करो ॥ २७ ॥ हे रामजी ! तुम अब आत्मज्ञानरूपी पर्वत के ऊपर चढे हो फिर अहंभावरूपी महागर्त में पडने के योग्य नहीं हो ॥२८॥ हे रामजी ! यहां कुछ पदार्थ फुरे नहीं और फुरे भी तौ भी जैसा फुरा तैसा चला जाय चित्त फुरणे नहीं फुरणेकी प्रतीतिसे रहित हो जावे तिस को तुम वासनारहित जानो सो ही समता और कोमलता कही है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष वासनारहित इंद्रियों करके कर्म करता है तो विकार को नहीं प्राप्त होता है जैसे आकाश पर्वतादिक प्राणियों के उत्पत्ति नाश में क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है ॥ ४३० ॥ हे रामजी ! ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों को अपनी शांत वृत्ति के अनुभव में अभाव करे तो फिर जन्म को नहीं पावेगा ॥३१॥ हे रामजी ! चित्तके फुरणे नहीं फुरने में संसार के उदय और क्षय होते हैं तिस से वासना के रोकने से और प्राणों के संयम से चित्त को फुरने से रहित कर ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! प्राण के उदय और लय होने से संसार के उदय प्रलय होते हैं तिस प्राण को संयम के अ-

भ्यास से उदयरहित करो ॥ ३३ ॥ हे रामजी! मूढता के उदय-प्रलय से कर्मों के उदय क्षय होते हैं तिस से गुरु शास्त्र और संयम करके मूढता को भी दूर करो ॥ ३४ ॥ हे रामजी! यहां चित्त उदय नहीं होवे सो अखंड स्वाभाविक सुख है सो स्वर्गादिक में भी नहीं है जैसे मारवाड के स्थल में शीतल गृह नहीं होता है ॥ ३५ ॥ हे रामजी! चित्त का उपदेश होना ही अखंड सुख है सो मनवानी में कहा नहीं जाता है क्षय वृद्धि से रहित है सो ना उदय होता है शांत भी नहीं होताहै ॥ ३६ ॥ हे रामजी! तत्त्वज्ञानी का चित्त चित्त नाम करके नहीं है सो चित्त के बल चैतन्यमात्र है नाम करके ही चित्त है अज्ञान करके चित्त बना है ज्ञान करके चैतन्यमात्र है मलसहित सुवर्ण तांबा भासताहै मलरहित होने से शुद्ध सुवर्णमात्र होता है ॥ ३७ ॥ हे रामजी! शिला में जैसे कमलों का वन नहीं होता है मारवाड की रेती में जैसे जल का प्रवाह नहीं बनता है तैसे शुद्ध चैतन्य में प्रपंच नहीं बनता है ॥ ३८ ॥ हे रामजी! परमात्मा चैतन्यमणि में जगत् के कोटी सैकडों हैं जैसे चिंतामणि पाषाण में जनों के कोटी मनोरथों के सैंकडो रहते हैं ॥ ३९ ॥ हे रामजी! परमात्मा चैतन्यरूपी आकाश में कोटी देहरूपी घडे उत्पन्न भी होते हैं नष्ट भी होते हैं तिन के बाहिर और अंदरभी चैतन्याकाश व्याप्त है तो भी तिन के साथ उत्पति-नाश को नहीं प्राप्त होता है जैसे आकाश में अनेक घडे उत्पन्न और नष्ट होते हैं तिन के साथ आकाश उत्पन्न नष्ट नहीं होता है ॥४४०॥ जो कुछ है सो संपूर्ण ब्रह्म ही है सर्व धर्म-कर्मों से रहित है और निर्गुण है और निर्मल है और निर्विकार है और आदि-अंत से रहित है और नित्य है और शांत है सर्वत्र समरूप है ॥ ४१ ॥

श्रीरामचंद्रजी का प्रश्न—हे महाराज! ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त

भया है जो तिस में विकार उत्पत्ति-नाशादिक धर्म नहीं हैं तो यह जगत् उत्पत्ति-नाशवाला कैसे भासता है तिस जगत् में विकार कैसे हैं ४२

श्रीवसिष्ठजी रामचंद्रजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! जिस की पहिले स्थिति नहीं है. जो स्वरूप करके वन जाना सो ही विकारादि नाम करके कहा है जैसे दुग्धादिकों का दधि आदिक वन जाना ॥ ४३ ॥ हे रामजी! जो दुग्धादिकों का दधि आदिक वन जाना है सो विकार कहा है कारण कि फिर दूध नहीं वनता सो भी यहां नहीं वनता है क्यों यह जगत् में आदि-अंत-मध्य में सब ही ब्रह्म ही जानते हैं और दूध के समान विगाड करके दधि की नाईं ब्रह्म से जगत् नहीं वना है कारण ब्रह्म तो सदा निर्विकार है॥४४॥ जो परिमाणु को समान ब्रह्म नित्य और निर्विकार परमाणुओं के संयोग से जगत् की उत्पत्ति माने तो यह भी नहीं वनता है क्योंकि आदि-अंत विभाग से रहित ब्रह्म में अंग-अवयवों का विकार नहीं है ॥ ४५ ॥ हे रामजी! ब्रह्म आदि-अंत में सम है जो जगत्रूपी विकारता तिस में देखी है सो केवल भ्रम करके फुरना मात्र है क्यों कि रज्जु विषें सर्प भ्रम की नाईं निर्विकार ब्रह्म में जगत् भ्रम मात्र है जैसे रज्जु के विकार से सर्प नहीं है तैसे ब्रह्म के विकार से जगत् भी नहीं वना है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! जो वस्तु आदि-अंत में एक जैसी दृष्ट होवे सो मध्य विषें भी तद्रूप होती है और जो आदि में और अंत में नहीं दृष्टि होवे केवल मध्य में ही रूप करके रज्जु विषें सर्प की नाईं प्रतीत होवे सो अज्ञान का विलास है भ्रममात्र है तिस कारण से यह जगत् ब्रह्म में केवल भ्रममात्र ही प्रतीत होता है वास्तव नहीं है ॥ ४७ ॥

श्रीरामजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति.

हे महाराज! सदा सर्वदा एक अद्वितीय निर्मल परब्रह्म विद्यमान

भये संते तिस में केवल फुरणे मात्र स्वरूप करके भ्रममात्र प्रतीत भई तो अविद्या का उदय कहां से है जिस से यह जगत् प्रतीत होता है ॥ ४८ ॥

श्रीवसिष्ठजी रामजी प्रति कहते भये.

हे रामजी! यह सब ही पूर्वकाल में तत्त्वविचार से ब्रह्म ही था अब भी ब्रह्म है आगे फिर भी ब्रह्म ही होवेगा अविद्या तो नहीं है यह हमारा निश्चय है ॥ ४९ ॥ हे रामजी! तत्त्ववेत्ता को नाममात्र ही अविद्या प्रतीत होती है सो केवल भ्रममात्र असत्य है, जो कदापि सत्य नहीं है तिस का नाम भी भ्रममात्र ही है ॥ ५० ॥ हे रामजी! जबलग मन प्रबोध को नहीं प्राप्त भया तबलग ही भ्रम है भ्रम गये बिना सैंकडों प्रबोध के ऊंचे सुनाये शब्दों करके भी बोध को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे रामजी! यह जीव युक्ति करके बोध कराय करके आत्मस्वरूप में युक्त किया जाता है युक्ति बिना नहीं कार्य होता है जो कार्य युक्ति करके सिद्ध होवे सो सैंकडों यत्नों करके नहीं सिद्ध होता है ॥ ५२ ॥ हे रामजी! जिस को आत्मतत्त्व का बोध नहीं भया है ऐसे दुष्टबुद्धि पुरुष को जो कोई सब ही ब्रह्म करके सुनाता है सो पुरुष काष्ठ के स्तंभ को मित्र जान करके अपने दुःख को सुनाता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी! जो तत्त्ववेत्ता पुरुषों ने मूढबुद्धियों को समझाने निमित्त यह अविद्या है, यह जीव है, यह संसार है इत्यादि कल्पना का क्रम किया है सो वास्तव कल्पनाक्रम नहीं है ॥ ५४ ॥ हे रामजी! इतनो काल तू आत्मतत्त्व को नहीं जानता था तिस से मैं ने युक्ति करके बोध युक्त किया है अब तू आत्मतत्त्व को जान रहा है तिस से जैसा समझाना है तिस को मैं कहता हूं ॥ ५५ ॥ हे रामजी! मैं भी ब्रह्म ही हूं तू भी ब्रह्मही है और त्रैलोक्य भी ब्रह्म ही है संपूर्ण दृश्य का स्थान भी ब्रह्म ही है दूसरी कल्पना कोई नहीं है अब तू जैसा

चाहे तैसा कर ॥५६॥ रामजी अपने अनुभव को कहते हैं हे गुरुजी ! तुह्मारी कृपा से जो जानने योग्य है सो सब ही मैं ने जाना है जो देखना है सो भी मैं ने सब देखा है अब परमतत्त्व करके मैं पूर्ण भया हूं तेरे कहे ब्रह्म ज्ञान के अमृत करके परिपूर्ण भया हूं ॥ ५७ ॥ हे गुरुजी ! तुह्मारा कहना अब पूर्ण भया है, यह मेरा अंतःकरण भी पूर्ण भया है तत्त्व की पूर्णता होने से आनंद भी पूर्ण भया है ब्रह्म-सत्ता करके पूर्ण भये विश्व से पूर्णता से पूर्णता ले करके फिर भी पूर्णता शेष रहती है ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! सर्वत्र पूर्ण भये परब्रह्म से नीचे और ऊपर शिर से नखाग्र पर्यंत पूर्ण भये इस जीवरूप को परमार्थ से पूर्ण भया ब्रह्म ही से आकाश से लेकर जगत् प्रकट होता है सो भी एक संग्रहरूप करके और भिन्न भिन्न व्यष्टिरूप करके भी प्रकट होता है ॥ ५९ ॥ 'सोयं देवदत्तः' इस का अर्थ जो पहिले परके साल में देखा था सो ही यह देवदत्त आज देखा है. तत्त्वमसि का अर्थ 'तत्' सर्वव्यापी सत्-चित्-आनंदरूप जगतसृष्टि-स्थिति-संहार का कर्ता और अविनाशी परब्रह्म, 'त्वं' तूं जीवात्मा, 'असि' सदा वर्तमान है ॥४६०॥ तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्यों से भया अहं ब्रह्म ऐसे ज्ञान करके मूलसहित उपाधि दूर करने से सर्वत्र पूर्ण भये ब्रह्म करके पूर्ण भया जो जीवभाव तिस में कल्पना करी पूर्णता तिस के लय होने से तिस जीवभाव की पूर्णता सो पहिले जो स्थित भई ब्रह्म तिस की पूर्णता सो ही शेष बाकी रहती है ॥ ६१ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी ! श्रीकृष्ण भगवान्‌जी ने कहा असंगतावाली मति को धारण करके पांडुराजका पुत्र अर्जुन नामा पांडव महामुनि नर का अवतार जीवने को जैसे चलावेगा तैसे तू भी अपने जीवने को सुख करके जीवन्मुक्त हो करके वर्तमान कर ॥ ६२ ॥

श्रीरामजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति.

हे महाराजी ! सो अर्जुन पांडुराज का पुत्र कब होवेगा श्रीकृष्ण भगवान् उस को असंगता को कैसे कहेगा इस को मेरे प्रति कहो ॥ ६३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! यह प्रपंचनाम करके कल्पित भया केवल सत्तामात्र आत्मा ही आत्मा विषें स्थित भया है कैसा है आत्मा आदि-अंत से रहित है जैसे आकाश में महा आकाश नाम करके स्थित है तैसे निर्मल आत्मा में यह संसार का भ्रम स्थित भयाहै जैसे सुवर्ण में और जल में कंकणादि भूषण और तरंग बुदबुदे नाम मात्र करके स्थित हैं॥६४॥तिस संसाररूपी जाल में देवता, ऋषि, यक्ष, गंधर्व, भूत, प्रेत, राक्षस,मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, कीट, तृण, वृक्षादिक प्राणियों की चौदह प्रकार की जाति वर्त्तमान है जैसे जाल में पक्षी लगे होते हैं ॥ ६५ ॥ तिस में यम चंद्रमा सूर्य इंद्रादिक देवता, पांच भूतों से बने संसार की मर्यादा वर्त्तमान करने वास्ते परमेश्वर की नियति से लोकपाल बने हैं ॥६६॥ हे रामजी ! तिन देवताओं ने इस जगत् में यह पुण्य है इस का ग्रहण करना यह पाप है इस का त्याग करना इस प्रकार की लोकमर्यादा वेदमर्यादा करके धर्म रक्षा वास्ते कल्पना करी है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! तिस धर्ममर्यादा में अब लग सब का चित्त हाथी के कर्णके अग्र की नाईं चंचल है तो भी जलप्रवाह में कहने जैसे यथा योग्य वर्त्तमान है ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! तिस में भगवान् धर्मराजा प्राणियों का संहार करने का अधिकारी है, चार युग प्रमाण समय गये संते पिछला किया प्राणियों के संहार का पाप दूर करने वास्ते कदाचित् आठ वर्ष कदाचित् दश वर्ष अथवा द्वादश वर्ष अथवा पंच वर्ष अथवा सप्तवर्ष अथवा सोलह वर्ष नियम धारण-

करके तप-यज्ञ करता है प्रजा के संहार से उदास हो जाता है तिस काल में मृत्यु प्रजा का संहार नहीं करता है ॥ ६९ ॥ तिस कारण से यह पृथिवी प्राणियों के समूह करके पूर्ण हो जाती है जैसे वर्षाकाल में तृण लतादिकों करके पूर्ण होती है जैसे हाथी मक्षियों करके घेरा जाता है ॥४७०॥ इस से उपरांत देवता पृथिवी का भार उतारने वास्ते अनेक युक्तियों करके वृद्ध भई प्रजा को क्षय को प्राप्त करते हैं ॥ ७१ ॥ हे रामजी! इस प्रकार करके अनेक सहस्र युग पीछे चले गये हैं, अनेक जगत् के सैंकडों हो गये हैं, अनंत भूत होगये हैं, अनेक प्राणी व्यतीत हो गये हैं ॥ ७२ ॥ हे रामजी! अब भी जो यम धर्मराज संपूर्ण पितरों का स्वामी है तिस करके कितने प्राणियों को क्षय को प्राप्त भये संते अब के युगों में बारा वर्ष प्रमाण यज्ञ लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारना है लोकों का संहाररूपी अपना कर्म त्यागना है ॥ ७३ ॥ तिस से यह पृथिवी प्राणियों के मरण बिना मनुष्यों करके पृथिवी भारी होवेगी जैसे बहुत वृक्षतृणों करके पूर्ण होती है सो पृथिवी प्राणियों के भार करके पीडित भई विष्णु के शरण को जावेगी जैसे स्त्री चोरों करके पीडत भई अपने भर्त्ता के पास शरण जाती है ॥ ७४ हे रामजी! तिस से उपरांत विष्णु भगवानजी दो स्वरूप करके पृथिवी में उतरेंगे एक नररूप करके और एक नारायण रूप करके तिस के साथ संपूर्ण देवताभी पृथिवी में उतरेंगे ॥ ॥७५॥ एकरूप करके वसुदेव के घर कृष्ण रूपी भगवान् होवेंगे और दूसरे देह से अर्जुन नामा करके पांडु के घर होवें गे ॥७६॥ हे रामजी! पांडुराजा का बडा पुत्र युधिष्ठिर राजा धर्म के अंश से होवेगा सो पांडुका पुत्र युधिष्ठिर चक्रवर्ती राजा होवेगा धर्ममर्यादा को पालने वाला होवेगा ॥ ७७ ॥ हे रामजी! पांडु का बडा भाई धृतराष्ट्र राजा होवेगा उस राजा का पुत्र दुर्योधन युधिष्ठर का भाई होवेगा और युधिष्ठिर का दूसरा

भाई पवन का पुत्र भीमसेन होवेगा सो दुर्योधन का महाशत्रु होवेगा जैसे नौला सर्प का शत्रु होता है ॥ ७८ ॥ सो युधिष्ठिर भीमादिक और दुर्योधन यह आपस में पृथिवी का राज्य अपने अपने करने चाहेंगे तिस राज्य के वास्ते युद्ध को करेंगे तिनके सहाय निमित्त अट्ठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करने वास्ते आ तयार होवेगी ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! विष्णुभगवान् कृष्ण अवतार हो करके अर्जुन नामा आपना स्वरूप नर का अवतार करके तिस सेना का क्षय करके पृथिवी का भार उतारेंगे ॥४८०॥ हे रामजी ! विष्णुभगवान् अर्जुन नामा अंश माया करके मनुष्यभाव को प्राप्त भया है सो माया के अधीन हो करके अपने बांधवों के स्वरूप के निमित्त हर्ष-शोकयुक्त होवेगा ॥ ८१ ॥ युद्धरूपी अपने धर्म को त्याग देवेगा विष्णुभगवान् अर्जुन नामा करके अपने देह को सर्वज्ञता कृष्ण नाम देह करके पृथिवी का भार उतारना रूपी अपने अवतार होनेका जो कार्य तिस के वास्ते अर्जुन को तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे ॥ ८२ ॥

श्रीभगवानजी का वचन अर्जुन प्रति.

हे अर्जुन ! यह आत्मा जन्म को नहीं लेता है मृत भी नहीं होता है फिर भी यह उत्पन्न हो करके नहीं होवेगा यह जन्मरहित है और नित्य है और अनादि है और सब से प्रथम पुराना है शरीर के मारने में भी मृत नहीं होता है ॥ ८३ ॥ हे अर्जुन ! जो कोई इस को मारनेवाले को जानता है जो कोई इस को मृत भये को जानता है सो दोनों ही कुछ भी नहीं जानते हैं कारण यह किसी को मारता नहीं है न किसी करके मृत होता है ॥ ८४ ॥ हे अर्जुन ! यह आत्मा अंतरहित है और सदा एकरूप है और सत्तामात्र रूप है और आकाश से भी सूक्ष्म है और परमेश्वर है सो क्यों किसी करके नष्ट होता है ॥ ८५ ॥ तिस से हे अर्जुन ! आत्मा कैसा है अनंत है और-

इंद्रियों करके प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं होता है इस से अव्यक्त है और आदि-उत्पत्ति से रहित है और मध्य से भी रहित है तिस आत्मा को तू अंतःकरणवृत्ति करके देख तूभी ज्ञानस्वरूप है और जन्मरहित है और नित्य है और निर्विकार है ॥८६॥ हे अर्जुन ! तू मेरा स्वरूप है वृथा ही धारणकिये अभिमान को त्याग कर । तू जरा-मरण से रहित है आप अविनाशी आत्मा है॥८७॥हे अर्जुन ! जिस को देहादिक में अ-हंकार नहीं है और कर्मफलों करके जिस की बुद्धि लिप्त नहीं होती है सो पुरुष संपूर्ण इन लोकों को मार करके भी मारनेवाला नहीं है और ह-त्यादोष करके बद्ध भी नहीं होता है॥८८॥हे अर्जुन ! जो फुरना मन से प्रकट होती है सो ही अनुभव में आवे है तिस से यह हमारा शत्रु है मैं इस को मारनेवाला हूं यह पदार्थ मेरा है ऐसी फुरने को मन से त्याग दे अपने पराये भेदवाली दृष्टि करके तू भया है तिस से तू अपने आप को नष्ट भया हूं ऐसे मानता है इस करके ही तू पराधीन है और सुख-दुखों करके पीडित भया है ॥८९॥ हे अर्जुन ! नेत्र अपने रूपविषयको देखता है और कर्ण अपने शब्दविषय को सुने है त्वचा अपने स्पर्शवि-षय को देखे है जिह्वा अपने रसविषय को लेवे है. मैं कौन हूं ऐसी भ्र-मदृष्टि की स्थिति कहांहै आप तू सब से असंग है ॥४९०॥ हे अर्जु-न ! मन भी अपने संकल्प की रचना में लगा है इस में मैं करता हूं ऐसी कल्पना ही एक आत्मा को क्लेश करती है ॥ ९१ ॥ हे अर्जुन ! देह, इंद्रियां, मन यह सब बहुते आपस में मिलके अपने अपने कार्य को करते हैं और एक आत्मा केवल अभिमान करके लोक में उपहास वास्ते पकडा जाता है ॥ ९२ ॥ हे अर्जुन ! योगी पु-रुष अंतःकरण को शुद्ध करने वास्ते देह करके मन करके बुद्धि क-रके केवल इंद्रियों करके कर्म फलके संग को त्याग करके भी कर्मों को करते हैं ॥ ९३ ॥ हे अर्जुन ! पुरुष उत्तमबुद्धिभी होवे और बहुत

शास्त्र को जाननेवाला भी होवे तौ भी देह-गेहादिक में ममता-अहंकाररूपी मल करके युक्त होवे तो कुबुद्धि पुरुष की नाईं नहीं शोभता है ॥ ९४ ॥ हे अर्जुन! जो पुरुष ममतारहित होवे और अहंकाररहित होवे सुख-दुःखों को समान जाने और क्षमायुक्त होवे सो भावे शुभ कार्य करो भावे दुष्ट कार्य को करो तौ भी दोष-गुण करके युक्त नहीं होता है ॥ ९५ ॥ हे पांडुपुत्र! यह रणमंडल तेरे को अपने कर्म को क्षत्रीधर्म को उत्तम क्षेत्र महातीर्थ की नाईं प्राप्त भया है इस में क्रूर मति करके भी तू युद्धरूपी अपने धर्म को करेगा तौभी यह क्षत्रीधर्म का युद्ध भी तेरे को परम कल्याण को और परम सुख को और परम ऐश्वर्य के उदय को देवेगा ॥ ९६ ॥ हे अर्जुन! अपने धर्म का कर्म मूर्ख पुरुष को भी कल्याण देता है और श्रेष्ठबुद्धि को अपना धर्म कर्म क्यौं कल्याण नहीं देवे और जौ अहंकार से रहित होवे सो पुरुष अपने कर्म करके पतित होवे तौ भी दोष करके लिप्त नहीं होता है ॥ ९७ ॥ हे अर्जुन! तू अपने धर्म के कर्मयोग में स्थित हो करके कर्मों को करता रहे और अहंकार को और कर्मफल की वांछा के संग को त्याग कर जो पुरुष कर्मफल की असंगता को प्राप्त भया है सो कर्म करता है तौ भी कर्म फल करके बद्ध नहीं होता है ॥ ९८ ॥ हे अर्जुन! तू शांत परब्रह्मस्वरूप हो करके अपने किये कर्म को ब्रह्मरूप कर और अपने आचार ब्रह्म को अर्पण कर इस प्रकार करके क्षणमात्र में ब्रह्म ही होवेगा ॥ ९९ ॥ हे अर्जुन! संपूर्ण अर्थों को ईश्वर को अर्पण कर ईश्वररूप वन और उपाधिरहित हो आप भी ईश्वरता कर के सब भूतों का आत्मा वन अपने स्वरूप करके पृथिवी को शोभायमान कर ॥ ६०० ॥ सर्व संकल्पों को संन्यास कर सदा समदृष्टि वन मन करके शांति को धारण कर अंतःकरण में कर्मसं-

न्यास करके युक्त हो कर्म को करता ही रहे और फल की आश-
से मुक्तमति बनो ॥ १ ॥

अर्जुन का प्रश्न श्रीकृष्ण महाराज प्रति.

हे कृष्ण ! संन्यास का और ब्रह्मार्पण का और ईश्वरार्पण का औ-
र कर्मसंन्यास का और ज्ञान का और योग का भिन्न भिन्न विभाग
जैसा है तिस को मेरी मोह की निवृत्तिके वास्ते क्रम करके कहो॥२॥

श्रीभगवान्जी अर्जुन प्रति कहते हैं.

हे अर्जुन ! संपूर्ण संकल्पों की शांति भई संते विशेष करके घनी
वासना सब शांत हो जावे और ब्रह्मस्वरूप भावना का कोई आ-
कार उदय होना तिस को ब्रह्म परता कहते हैं ॥ ३ ॥ तिस के उ-
द्योग करने को ज्ञान कहते हैं तिसी को कुशलबुद्धि योग भी कहते हैं
संपूर्ण जगत् और हम भी ब्रह्म हैं इस को ब्रह्मार्पण कहते हैं ॥ ४ ॥
और कर्मों के फलों का तो त्याग है तिस को ब्रह्मवेत्ता संन्यास कहते
हैं संपूर्ण संकल्पों का जो त्याग है तिस को असंगता कहते हैं ॥ ५ ॥
हे अर्जुन ! संपूर्ण कर्मों के कल्पनाजाल को एक ईश्वर को अर्पण क-
रने की भावना कर और कर्म करने के समय में कर्त्ता कर्म करने
की सामग्री में ईश्वर विना दूसरे की भावना गल जावे जिस में सो ई-
श्वरार्पण कहा है ॥ ६ ॥ हे अर्जुन! तू मेरे विषें मन को कर और
मेरा भक्त हो मेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला हो मेरे को नमस्कार कर
इस युक्ति करके तू मेरे को ही प्राप्त होवेगा अपने आप को मेरे विषें
परायण कर ॥ ७ ॥

अर्जुन का प्रश्न श्रीभगवान् प्रति—हे श्रीकृष्णजी!
तुह्मारे दो रूप हैं एक पररूप है जो सनातन है दूसरा अपर है जो
देखने श्रवण करने में नहीं है सो पररूप तुह्मारा कैसा है तिस को

मैं किस काल में आश्रित हो रहा मोक्ष सिद्धि वास्ते कब उस को मैं आश्रित करूं ॥ ८ ॥

श्रीभगवानजी कहते हैं—हे अर्जुन! पहिले कहा है फिर भी जो मैं तेरे हित की कामना करके कहता हूं तिस को तू श्रवण कर तू मेरे वचन के अर्थ में प्रीति को धारण करता है ॥ ९ ॥ मेरे दोनों ही रूप हैं एक सबके समान दृश्य है एक पर है जो मन, वाणी और इंद्रियोंके गोचर नहीं है जो हस्त-पादादियुक्त और शंख-चक्र-गदा-पद्मादि धारनेवाला है सो अपर रूप है सगुण है ॥ ९१० ॥ जो मेरा पररूप है सो आदि-अंत से रहित है और निर्गुण है सो ब्रह्म कहा है परमात्मा कहा है इत्यादि नाम करके कहा जाता है ॥ ११ ॥ हे अर्जुन! जब लग तू बोध को नहीं प्राप्त भया और देहादिकों के आत्मा ज्ञान से रहित है तब लग मेरे चतुर्भुज रूप की पूजा में तत्पर रहे ॥ १२ ॥ हे अर्जुन! तिस क्रम से ज्ञान पावेगा तो तिस रूप को तू जानेगा सो रूप मेरा आदि-अंत से रहित है जिस को जान करके जन्म नहीं प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ तिस से तू सर्व भूतों विषें स्थित भये आत्मा को जान सर्व भूतों को आत्मा विषें जाने योग करके बुद्धि को युक्त कर सर्वत्र समदृष्टि हो ॥ १४ ॥ हे अर्जुन! जो पुरुष सर्व भूतों में स्थित भये आत्मा को एकरूपता धार करके भजता है सो सर्व प्रकार करके संसारदशा में वर्त्तमान है तोभी फिर जन्म को नहीं पावता है॥ १५ ॥ हे अर्जुन! जैसे घडे अनेक सहस्र हैं परंतु आकाश तिन के बाहिर और अंदर एक जैसा व्याप्त है तैसे ही त्रैलोक्य अनेक सहस्र हैं मैं आत्मरूप करके बाहिर और अंदर एक ही व्याप्त भया हूं ॥१६॥ हे अर्जुन! अनेक प्रतिबिंबों में दर्पण के समान साक्षिरूपवाले आत्मा को प्रतिबिंबों के नाश भये संते भी नष्ट भये मेरे को देखता है सो ही देखता है ॥ १७ ॥ हे अर्जुन! जो पुरु-

प मान और मोह से रहित भये हैं जिन्होंने इंद्रिय संगों के दोष जीते हैं और आत्मज्ञान में नित्य स्थित भये हैं सुखदुःखों के द्वंद्वसंगों से मुक्त भये हैं सो पुरुष मूढ नहीं हैं तत्त्ववेत्ता हैं ऐसे ब्रह्मज्ञ तिस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे अर्जुन ! जो इंद्रियों की मात्रा शब्द-स्पर्शादिक हैं तिन के जो स्पर्शसंग हैं सो शीत-उष्ण के, सुखदुःखों के देनेवाले हैं और आगम-निर्गमवाले हैं तिन को तू दृढता करके सह ले तिनके आधीन मत हो ॥ १९ ॥ हे अर्जुन ! असत्य पदार्थ को सत्तारूपी भावना ही होती है और सत्य पदार्थ का असत्यरूपी अभाव नहीं होता है तिस से सुखादिक सत्य नहीं हैं और आत्मा सदा सत्य है और सर्वव्यापी है ॥ ४२० ॥ हे अर्जुन ! तू मान का त्याग मद को त्याग शोक को भय को सुख-दुखों को त्याग यही द्वैत के रूप हैं और असत्य हैं तू एक सत्यरूप हो ॥२१॥ यह पुरुषों की अक्षोहिणी के क्षय करके अपने अनुभव के स्वरूप ब्रह्म कर-विस्तार भये को जान केवल शुद्ध ब्रह्म को ही ब्रह्म में एक कर ॥२२॥ हे अर्जुन तू सुख-दुःख को नहीं जानता हुआ लाभ-खर्च को जीत-हार को एक समान करता हुआ युद्ध को कर ब्रह्म की एकता को प्राप्त हो तू ही ब्रह्मता का एक समुद्र है ॥२३॥ हे अर्जुन ! जो तू करता है जो तू भोजन करता है जो होम करता है जो देता है जो आगे करेगा तिस को सब आत्मा जान करके युद्ध में स्थिर हो ॥ २४ ॥ हे अर्जुन ! सब के अंत में जो जैसे भाववाला होता है सो तिस भाव को प्राप्त होता है तू ब्रह्म सत्य है इस भाव को प्राप्त हो इस से ब्रह्म की सत्यतावाला हो ब्रह्म को ही प्राप्त होवेगा ॥ २५ ॥ हे अर्जुन ! जो कोई कर्म करने में अपने कर्म करने के अहंकार को त्याग करके अकर्म क्या कर्म संग रहित जानता है और अकर्म में क्या नहीं कर्म करने में कर्म को क्या अपने वर्णाश्रम का कर्म अवश्य करना ऐसे देखता

है सो मनुष्यों में बुद्धिमान है संपूर्ण कर्म करने में युक्त है ॥ २६ ॥ हे अर्जुन ! मेरे को कर्म का फल होवे इस प्रकार कर्म फल का निमित्त कारण तू मत होवे कर्म के त्याग में तेरी बुद्धि का संग नहीं होवे कर्म अवश्य कारण इस प्रकार कर्म योग में स्थित हो करके कर्मों को करता रहे और कर्म फल के संग को त्याग कर ॥ २७ ॥ हे अर्जुन ! अहंकार द्वारा फल करके कर्म करने में आसक्ति को त्याग करके, और कर्म नहीं करने की बुद्धि को त्याग करके समता को धारण करके अपनी रुचि करके, सुख करके वर्त्तमान रहो ॥ २८ ॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्मफल के प्रसंग को त्याग करके नित्य ही संतोष करके तृप्त है और ममता से रहित है सो भावे अनेक कर्मजाल में प्रवृत्त होवे तौ भी कुछ नहीं करता है बंध से रहित है ॥ २९ ॥ हे अर्जुन ! आसक्ति किस को कहें हैं मैं कर्त्ता हो सो नहीं कर्म करनेवाले को भी होवे है सो कब होवे है जब मन संकल्प वासना करके मूढता युक्त होवे है तिस से मन की मूढता को त्याग देवे ॥ ३० ॥ हे अर्जुन ! कर्म करने में अपने को कर्त्ता नहीं मानने से कर्म का भोक्ता नहीं बनने से समता एकता होती है समता एकता से अनंतता होती है अंतरहित होने से ब्रह्मता विस्तारसहित होती है ॥ ३१ ॥ हे अर्जुन ! तिस से तू भी अनेक चित्ततारूपी मल को त्याग करके परमात्मा की एकता को प्राप्त होवे तो भावे शुभ कार्य को करता है भावे अशुभ कार्य को करता है तो भी तू कर्ता नहीं है ॥ ३२ ॥ हे अर्जुन ! जिस पुरुष के संपूर्ण कार्यों के आरंभ फलकामना के संकल्प से रहित भये हैं तिस के कर्मबंधन ज्ञानरूपी अग्नि करके दग्ध हो जाते हैं तिस को तत्त्ववेत्ता पुरुष पंडित कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे अर्जुन ! तू सुख दुःखादि द्वन्द्वों से रहित हो नित्य ही आत्मतत्त्व में स्थित हो और पदार्थ की प्राप्ति के उद्यम से रहित हो जैसी प्राप्ति होवे तिस

करके वर्त्तमान हो इस प्रकार से संसार के सब जीवों का भूषण की नाईं शोभा करनेवाला हो ॥ ३४ ॥ हे अर्जुन ! जो कर्म करनेवाली इंद्रियों को कर्म नहीं करने से संयम कर्त्ता है और मन करके तिन के भोगों को चाहता है सो मूढ तपस्वी है उस का तप करना झूंठा आचार है सो पाखंडी है ॥ ३५ ॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष मन करके इंद्रियों को भोग पदार्थों से रोक करके कर्मेंद्रियों करके कर्मयोग को फल की आसक्ति से रहित कर्त्ता है सो विशेष करके उत्तम पुरुष है ॥३६॥हे अर्जुन ! जैसे समुद्र संपूर्ण नदियों के जलों करके भरा जाता है संपूर्ण जल तिस में प्रवेश करते हैं तौ भी अपनी मर्यादा के स्थान से बाहिर नहीं चढता है तैसे ही जिस पुरुष को संपूर्ण कामभोग प्राप्त होते हैं और नहीं भी प्राप्त होते हैं तिन की प्राप्ति करके हर्षशोक को नहीं प्राप्त होता है सो पुरुष शांति को प्राप्त होता है जो पुरुष कामभोगों की कामना करता है तिस को शांति नहीं प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! तत्त्ववेत्ता पुरुष कामभोगों को त्याग भी नहीं करे और अंतःकरण में भोगों की भावना को भी नहीं करे भोगों की प्राप्ति में समवृत्ति रहे जैसा भोग मिले तैसे करके वर्त्तं जावे ॥ ३८ ॥ हे महाबाहो ! देह के नाश भये संते आत्मा का कुछभी नष्ट नहीं होता है आत्मा का नाश ही नाश कहा है सो आत्मा नष्ट नहीं होता है केवल स्वरूप को विस्मरण ही आत्मा कहा है ॥३९॥ हे अर्जुन ! असत्य पदार्थ का सत्तारूपी भाव नहीं होता है और सत्य पदार्थका असत्यतारूपी अभाव नहीं होता है तत्त्ववेत्ता पुरुषों ने इन दोनों का अंतर जाना है ॥९४०॥ हे अर्जुन ! अविनाशी तिस को जान जिस करके यह संपूर्ण विश्व व्याप्त भयाहै तिस अविनाशी को नाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है ॥४१॥ हे अर्जुन ! यह देह सदा अविनाशी देह धारण करनेवाले आत्मा के हैं सो अंतवाले हैं प-

ह कैसा है आत्मा अविनाशी है और स्थूल-सूक्ष्मतादि प्रमाण से रहित है और नित्य है तिस से तू अपने शुद्धरूपी क्षत्री धर्म को निःशंक कर ले ॥ ४२ ॥

अर्जुन का प्रश्न—हे महाराज! जो देह अनित्य है और आत्मा नित्य है तो मैं नष्ट भया हूं ऐसी स्थिति मर्यादा मनुष्यों की कैसे करी और लोकों को स्वर्ग और नरक यह कैसे स्थित भये हैं॥४३॥

श्रीभगवानजी कहते हैं—हे अर्जुन! पृथिवी और जल और तेज और पवन और आकाश मन और बुद्धि यह सूक्ष्म अंशों करके सहित सूक्ष्म शरीर करके जीव देहों में स्थित रहता है ॥४४॥ सो जीव सूक्ष्म शरीर करके सहित वासना करके खेंचा जाता है जैसे रज्जु करके गौ का बच्छा खेंचा जाता है सो ही शरीर में रहता है जैसे पिंजरे में पक्षी रहता है ॥ ४५ ॥ हे अर्जुन! कर्ण और नेत्र और त्वचा और जिह्वा और नासिका यह जीव शरीर से इन को ले करके जाता है जैसे पवन पुष्प से सुगंधी को ले जाता है तिस करके स्थूल शरीर ही प्राणचेष्टा से रहित होता है तिस से इस को मर गया है ऐसे कहते हैं ॥ ४६ ॥ हे अर्जुन! वासनासहित होना ही इस का देह है दूसरा देह कोई नहीं है जो वासनारूपी देह युक्तिविचार से क्षीण होता है तिस के क्षय भये संते परमपद प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ हे अर्जुन! पिछले काल में भयी वासना का मूल अब के यत्न करके पुरुषार्थ करके जीता है जैसे मूल खोदने से वृक्ष गिर जाता है ॥ ४८ ॥ हे अर्जुन! भावे पर्वत फूट करके गिर जाये भावे प्रलयकाल के पवन चले तौ भी शास्त्र में कहा अपना पौरुष नहीं त्यागना विचारवाली बुद्धिकरके युक्त भये पुरुष को अपना पौरुष ही करना ॥४९॥ हे अर्जुन! जो पुरुष वासनारहित नहीं भया है और पापकर्म भी करता है सो

सब प्रकार करके बद्ध भया है जैसे पिंजरे में पंछी चारों तर्फ से घिरा होता है इस कर्म को मैं त्याग देता हूं इस कर्म को आश्रय करता हूं मूढमन का यही निर्णय है और ज्ञानी पुरुष की सदा एक समान स्थिति है ॥ ५५० ॥ हे अर्जुन! जो पुरुष माया करके संसार के प्रवाह में आय पडे है तिस कर्म को कर्त्ते हैं सिद्ध होने में नहीं सिद्ध होने में समचित्त रहते हैं सो जीवन्मुक्त होते हैं अंतःकरण करके सुषुप्ति अवस्था में है और लोकों को भी सुषुप्ति अवस्था की नांई भासते हैं हठ और दृढ किसी में नहीं करते हैं आत्मतत्त्व में मगन रहते हैं ॥ ५१॥ हे अर्जुन! सो पुरुष अपने अंतःकरण करके अचल स्थिति को प्राप्त होता है जैसे कछुआ अपने अंगों को संगे ले लेता है तैसे सब विषयों से इंद्रियों के स्वभाव करके खेंच लेते हैं ॥५२॥ हे अर्जुन! सुंदर चित्र है रूप करके सारा सब पूर्ण है सो चित्त में स्थित भया है तो आकाश में भी शून्य होता है कुछ कार्य नहीं करता है तैसे ही तत्त्ववेत्ता पुरुष को संपूर्ण जगत् आकाश में भी शून्य प्रतीत होता है कुछ भी नहीं करता है ॥ ५३॥ हे अर्जुन! जैसे मन असत्य पदार्थ को भी संकल्प करके मनोरथ द्वारा रच लेता है तैसे ही क्षण को कल्प बरोबर कर लेता है ॥ ५४ ॥ हे अर्जुन! जिस को वासना का बीज अत्यंत तुच्छ भी है चैतन्य सत्तारूपी पृथिवी में प्राप्त भया तो सो तुच्छ वासना बीज ही बडा संसार का कारण होता है ॥५५॥ हे अर्जुन! सत्यरूप परमात्मा का तत्त्वज्ञानरूपी अग्नि हृदयमें आरूढ भये करके वासना का बीज एक काल में दग्ध भया फिर उदय नहीं होता है ॥ ५६ ॥ हे अर्जुन! सो वासना बीज दग्ध भया तो पुरुष फिर पदार्थों में मगन नहीं होता है संपूर्ण सुख-दुःखों में लिप्त नहीं होता है जैसे कमल का पत्र जल करके लिप्त नहीं होता है ॥ ५७ ॥ हे अर्जुन! तू शांत अंतःकरण हो और भय से रहित हो और संपूर्ण आशा का

त्याग कर और वासनारहित हो निर्वाण बोध करके महामन के मोह को गलित कर जो कुछ मैंने तेरे प्रति पवित्र आत्मतत्त्व कहा है इस को भले प्रकार विचार करके सर्वात्मा एक शांतरूप हो करके स्थिरबुद्धि हो ॥ ५८ ॥

अर्जुन का वचन श्रीभगवान्‌जी प्रति.

हे कृष्ण ! तुह्मारे प्रसाद से मेरा मोह संपूर्ण नष्ट भया है और आत्मा के स्वरूप का स्मरण अब दृढ भया है अब संदेहरहित भया हूं अब मैं तुह्मारे बचन को करता हूं ॥ ५९ ॥

श्रीभगवानजी कहते हैं—हे अर्जुन ! जो आत्मस्वरूप जानने करके अंतःकरण की वृत्ति शांत हो जावे तिस का चित्त शांत हो जाता है तो जानना अंतःकरण में तत्त्वज्ञान बधा है ॥६०॥ हे अर्जुन ! जिस की प्राप्ति में यह सब ही घट-पटादिकों के ज्ञान तुच्छ हो जाते हैं तो वासना महा नीच भी है पद पद मोक्ष क्षण क्षण में उदय होती भी है तौ भी क्या करेगी ॥ ६१ ॥ हे अर्जुन ! जैसे अग्निके पर्वत को प्राप्त हो करके बर्फ का टुकडा क्षण में लीन हो जाता है तैसे शुद्ध चैतन्य तत्त्व को प्राप्त हो करके अविद्या लीन हो जाती है ॥ ॥ ६२ ॥ हे अर्जुन ! महातुच्छ रजोगुण से भई ऐसी वासना भोगों करके बंधन करनेवाली कहां है और जिस करके संपूर्ण विश्व का जाल अखंड व्याप्त हो रहा है ऐसा चैतन्य तत्त्वरूपी महा अग्नि कहां है जिस तत्त्वके किंचिन्मात्र स्मरण करके वासना सहित अविद्या अपने कार्यकारणसमूह के जालसहित दग्ध हो जाती है जैसे अग्नि के पास तृणसमूह दग्ध हो जाता है ॥ ६३ ॥ हे अर्जुन ! इस से तू अहंकार करके है स्थिति जिस की ऐसी वासना करके वृद्ध भई विषय रूपी विष को बधावनेवाली भोगाशारूप विषूचिका को संकल्प-विक-

ल्प का त्यागरूपी मंत्र करके दूर करके केवल परमात्मारूप बन कैसा है संपूर्ण भय निवृत्ति का स्थान है ॥ ६४ ॥

अर्जुन का वचन—हे भगवन्! मेरी बुद्धि सर्व प्रकार करके संपूर्ण मलों से रहित भई है और धीर भई है परम उदय को प्राप्त भई है तुह्मारे वचन करके सावधान भई है जैसे सूर्य के प्रकाश करी कमलिनी प्रकाशित होती है ॥ ६५ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी के प्रति कहते हैं.

अर्जुन इतना कह करके गांडीव धनुष को हाथ में ले कर श्रीकृष्ण महाराजजी है सारथी जिस के ऐसे रथ के ऊपर बैठ करके और संदेह करके रहित हो युद्ध की लीला को करेगा ॥ ६६ ॥ इति श्रीभगवद्गीता संपूर्ण.

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! ऐसी जो ज्ञानदृष्टि है सो पाप का नाश करने वाली है तिस को धारण करके निःसंग हो करके संन्यासयोग करके संपूर्ण कर्म को ब्रह्मार्पण कर ब्रह्मरूप करके स्थित हो ॥ ६७ ॥ हे रामजी! जितने जगत् के भाव हैं वे विचार बिना ही, सुंदर भासते हैं और कैसे हैं जिन का सत्तारूपी भाव है नहीं, विचार करके नष्ट होनेवाले हैं ॥ ६८ ॥ हे रामजी! जिस के हृदय में आत्मविचार का लेश नहीं है सुंदर व्यवहार भी करे तौ भी दर्पण में प्रतिबिंबित पुरुष की समान जड है तिस को मुक्ति का नाम भी नहीं है ॥ ६९ ॥ हे रामजी! आत्मस्वरूप का केवल बोध मात्र करके भोगवासना क्षीण होती है भोगों की भावना जो नहीं करनी यही परम तत्त्वज्ञान का लक्षण है ॥ ७० ॥ हे रामजी! तत्त्ववेत्ता पुरुष को इस कारण से भोग अभिमत नहीं है तत्त्ववेत्ता सर्व संसार के भोगों से परे स्वरूपा-

नंद करके तृप्त भया है, जिन के अंत में महादुःख है तिन भोगों की तत्त्ववेत्ता क्यों इच्छा करेगा ॥ ७१ ॥ हे रामजी! तत्त्ववेत्ता पुरुष का यही परम लक्षण है स्वभाव करके भोगों की वांछा नहीं करनी ॥ ७२ ॥ हे रामजी! जिस काल में यह जगत् की सृष्टि संपदा स्वप्न की सृष्टि संपदा की समान वास्तव करके नहीं भासे तब ब्रह्मलोक भी असत्य ही हो जाता है तिस की इच्छा नहीं रहती है ॥ ७३ ॥ हे रामजी! जगत् का विरोध भी नहीं भासे और उत्पत्ति भी नहीं भासे बंधन भी नहीं भासे, मुक्ति भी नहीं भासे, मुक्ति के साधन भी नहीं भासे और मुक्ति को चाहनेवाला भी नहीं भासे यही परमार्थता है ॥ ७४ ॥ जो जो भाव जैसा दृष्ट होवे सो तैसा ही विद्यमान होता है सो व्यवहार में सत्य भी भासता है और स्वप्नभ्रम की रीति जो है सो कदाचित् भी सत्य नहीं माननी सो कहने में भी असत्य है॥७५॥ हे रामजी! जगत् में सो नहीं है जिस में भ्रम नहीं है त्रैलोक्य में विचित्ररूप की वस्तु दृष्ट होती है॥७६॥हे रामजी! जल के मध्य अग्नि प्रज्वलित दृष्ट होती है जैसे समुद्र में वडवाग्नि है, अंबर में नगर दृष्ट होते हैं जैसे देवतों के विमान होवे, शिला में कमल दृष्टि होते हैं जैसे हिमाचल में वृक्ष हैं, एकस्थान में संपूर्ण पुण्य फल प्राप्त होते हैं जैसे कल्पवृक्ष में ॥ ७७ ॥ शिला वृक्षों की समान फलती है जैसे रत्नसमूह हैं, शिला के अंदर प्राणी होते हैं जैसे मींडक शिला में ही होते हैं, पत्थरों से जल निकसते हैं जैसे चंद्रकांतमणि से जल निकसे, असत्य भी भोग में आवे हैं जैसे स्वप्न में अपना मरण भोगा है, अकस्मात् विना आधार जल भी धारण कर दियाहै जैसे बादलों में जल है, वस्त्र की चांदनी की आकाश में जल रहता है जैसे देवताओं की गंगा है ॥ ७८ ॥ भारी शिला आकाश में उडती है जैसे परोंवाले पर्वत उडते थे, पत्थर से संपूर्ण पदार्थ मन के चाहे प्राप्त

होते हैं जैसे चिंतामणि पत्थर से, केवल देखने से मनोरथ फलते हैं जैसे स्वर्ग के बगीच्यों में, कहीं कहीं कोई चिंतन किये मनोरथ भी कभी भी सिद्ध नहीं होते जैसे मोक्ष उत्पन्न होवे ब्रह्म नष्ट होवे प्रपंच सत्य होवे भोग नित्य होवे ईश्वर की मर्यादा नष्ट होवे वेदप्रमाण नहीं होवे इत्यादि चिंतन किये भी फल से नहीं है ॥ ७९ ॥ हे रामजी! इस में तेरे प्रति एक पुराणा इतिहास कहते हैं जो एक भिक्षु को वर्तमान भया है, कैसा है भिक्षु कुछ मनन को धारनेवाला है ॥८०॥ तिस भिक्षु का मनसमाधि के अभ्यास से सूक्ष्म संपूर्ण स्वरूप धारने को समर्थ होता भया तिस को किसी काल में लीला वास्ते कल्पित किये जीवट नाम करके सामान्य जन ब्राह्मण राजालोक में हरिणी वल्ली भ्रमर हंस से ले कर ब्रह्मा परमहंस नारायण रुद्रपर्यंत क्रम करके स्वप्न का शत होता भया ॥ ८१ ॥ सो स्वप्न में रुद्र भया तब अज्ञान करके जो कुछ विलास किया तिस को संपूर्णता करके अपनी बुद्धि के विचार करके विचार करता भया ॥ ८२ ॥ हे रामजी! रुद्ररूप भया सो अखंड ज्ञानस्वरूप हो करके अपने सैंकडों स्वप्नों करके विस्मित भया आप ही एकांत बैठ के आप ही वचन कहता भया ॥ ८३ ॥ अहो आश्चर्य है यह माया आश्चर्यरूप है, फिर कैसी है विश्व को मोहित करनेवाली है, है असत्यरूप परंतु सत्यरूप ही भासती है जैसे मारवाड देश की रेति में जल भासता है ॥ ८४ ॥ इस माया में सहस्र वर्ष हो गये हैं चार युगों के सेंकडों व्यतीत भये हैं दिन और ऋतुओं के अनेक चरित्र भये हैं यह जगत् आकाश की नीलता के समान भया है इस का केवल नहीं फ़ुरना ही दूर करने का उपाय समर्थ हम को होवे॥८५॥यह माया असत्य भी है तो भी रूपवाली है चैतन्यसत्ता को सर्वगत है सो परमात्मा के विलास वास्ते क्या कुछ नहीं करेगी ॥ ८६॥ तिस कर के जो स्वप्न संसार में मेरे को

भये हैं तिन सब को उठ करके मैं देखता हूं. भले प्रकार अपने स्वरूप का दर्शन देखने करके अपने अंशरूप को एक कर लेता हूं८७

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सो रुद्ररूप भिक्षु ऐसा चिंतन करके जिस सृष्टि में सो भिक्षु भया है तिस सृष्टि को जाता भया जहां सो भिक्षु शरीर करके मृत मनुष्य जैसा शयन करके पडा है ॥८८॥ तहां जाय करके तिस भिक्षु के चित्त को चेतन करने करके संयुक्त करने से जाग्रत करता भया सो भिक्षु सावधान हो करके अपने स्वप्नभ्रम को स्मरण करता भया ॥८९॥ सो भिक्षु अपने को रुद्ररूप देख करके जीवभाव से लेकर परमहंस नारायण रुद्रभाव पर्यंत अपनी लीला की चेष्टा को विचार करके विस्मय को प्राप्त भया ॥ ९० ॥ हे रामजी! इस प्रकार के जितने स्वप्न के जो जो स्वरूप हैं तिन सब को अपना रुद्ररूप अंश देने करके बोधन करता भया शत प्रमाण स्वप्न शरीर सब ही रुद्ररूप होते भये सो शत प्रमाण रुद्रशतनाम करके होते भये रुद्ररूपशोभित होते भये ॥ ९१ ॥ इस प्रकार करके रुद्रोंके दश शत १००० होते भये महातेजस्वी होते भये सो पीछे हो गये हैं अब के संसार में एकादशवें रुद्रोंका शत स्थित है ॥९२॥ हे रामजी! तिस से जो जीवसमूह बोधरहित हैं सो आपस में अपने आत्मा को नहीं देखते हैं मन करके बोध को प्राप्त भये प्रेरण किये हुए आपस में मिलते हैं जैसे समुद्र में तरंग आपस में मिलते हैं ॥ ९३ ॥

श्रीरुद्रजी अपने अंशरूपी रुद्रों को कहते हैं.

अब तुम अपने स्थानों को सत्ता बीच ले जाओ तहां जा करके पुत्र-स्त्रीआदिकों के अपने अपने प्रारब्ध भोगों को भोग करके मेरे पास चले आओगे फिर तुम सब ही मेरे अंश होओगे और मेरे गण

होओगे मेरे पुरके भूषण होओगे तिस से उपरांत महाप्रलय होने से परमपद को हम सब प्राप्त होवेंगे ॥ ९४ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

सो रुद्र भगवान् तिन को ऐसे कह करके छिप जाते भये सो भी सब जीवट नाम जिस का ऐसा भिक्षु ब्राह्मण से लेकर अपने अपने स्थान में जाय करके अपनी स्त्री-पुत्रादिकों करके प्रारब्ध भोगों को भोग करके अपने अपने देहों को त्याग करके रुद्रलोक को प्राप्त हो करके रुद्रजी के गण होवेंगे किसी समय में आकाश में ताराओंके स्वरूप करके दृष्ट होते हैं ॥ ९५ ॥ हे रामजी! तपस्वी दो प्रकार के श्रेष्ठ मुनीश्वरों ने कहे हैं, एक काष्ठ तपस्वी होता है दूसरा जिवन्मुक्त कह्या है ॥ ९६ ॥ जो शुद्ध भावना से रहित और शास्त्रविधि से रहित शांति-शीलादिकों से रहित ऐसी शुष्क क्रिया-में दृढ निश्चयवाला और हठ करके इंद्रियों का जीतनेवाला है पंचाग्नि जलशय्या उर्ध्ववाहू इस प्रकार की घोर तपस्या को करनेवाला जो मुनि है सो काष्ठ तपस्वी कहा है ॥ ९७॥ और जो व्यवहार में संसारी लोक जैसा वर्तमान है तौ भी साधनों करके इंद्रियों को जीतनेवाला और अंतःकरण में आनंद करके पूर्ण है सो मुनि जीवन्मुक्त कहा है जिस को तत्त्वनिश्चय में दृढ भावना नहीं भई है और आनंदप्राप्ति विना शीतलतारहित है उसी कारणसे शुष्क है ऐसी भावनावाला है और तत्त्वज्ञान की साधनक्रिया में दृढ निश्चयवाला है और तत्त्व जानने वास्ते हठ करके इंद्रियों को जीत लेता है सो भी काष्ठ तपस्वी कहा है ॥९८॥ यह दो प्रकार के मुनियों के नाथों का जो मौनभाव है वह कैसा है चित्त का जो निश्चय है सो ही है स्वरूप जिस का सो भाव मौन शब्द करके कहा है ऐसे भाव करके ही मुनि कहे जाते हैं ॥९९॥ तिस मौन के स्वरूप को जाननेवाले चार प्रकार

करके कहते हैं एक इंद्रियों का मौन है एक वाणी का मौन है तीसरा काष्ठ मौन है चौथा सौषुप्त मौन है ॥ ६०० ॥ हे रामजी ! वाणी का जो संयम करना तिस को वाङ्मौन कहते हैं और बल करके इंद्रियों का संयम करना तिस को अक्ष मौन कहे हैं देह इंद्रियां मन की चेष्टा जो त्याग देनी तिस को काष्ठ मौन कहते हैं और सुषुप्ति अवस्था की समान संपूर्ण विश्व फुरना जो नहीं होना सो ही सौषुप्त मौन कहा है तिस को ही जीवन्मुक्ती कहते हैं ॥ १ ॥ हे रामजी ! तिस के स्वरूप को तुम मेरे से श्रवण करो वह कैसा है कर्ण में श्रवण करने से भूषण की समान आनंद को करता है इस में पूरक, रेचक, कुंभक, भेद करके तीन प्रकार का प्राणायाम भी नहीं करना बनता है इस में इंद्रिय भोग विषयों की वासना उदय नहीं होती है नष्ट भी नहीं होती जानने परती है इस का स्थूल-सूक्ष्मादि विभाग भी नहीं बनता है और अभ्यास भी नहीं करना बनता है और आदि-अंत के भेद से रहित है ॥ २ ॥ इस में ध्यान करने में भी आत्मा की एकाग्रता स्वरूपानंद में एक जैसी स्थित होती है ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह सौषुप्त मौन कहा है इस का अंत नहीं है सदा आत्मबोधसहित यह तुरीया पद है अथवा इसी को तुरीया से परे जानो ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति.

हे गुरुजी ! एक यह मेरे को संदेह है तिस को तुम कृपा करके दूर करो सदाशिवजी ईश्वर हैं, अपने भक्तों को ऐश्वर्यभोग देनेवाले हैं, सो शिवजी मनुष्यों के कपालों की माला को भूषण करके धारण करते हैं सदैव भस्म धारण करते हैं और नग्न रहते हैं और श्मशान में निवास करते हैं ऐसे जगत् में विरुद्धकार्य को किस कामना करके करते हैं ॥ ५ ॥

वासिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे महान् ! जो जगत् के ईश्वर है सो स्वभाव करके सिद्ध होते हैं-तिन को काम संकल्प नहीं होता है सो जीवन्मुक्त स्वरूप होते हैं तिन को कर्म क्रिया करने का नियम नहीं होता है क्रिया का नियम अज्ञानी पुरुष को ही कल्पित किया है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! अज्ञानी-पुरुष का चित्त ज्ञान विना स्वरूप के प्रकाश विना जड होता है तिस से क्रिया के नियम विना कुमार्ग में प्रवृत्त होने करके परमदुःख को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह संसाररूप स्वप्न है इस में एक वेताल ने एक राजा प्रति प्रश्न कहे हैं सो प्रसंग करके मेरे को स्मरण भये हैं सो शुभ को करनेवाले हैं तिन को तुम श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे रामजी ! विंध्याचल पर्वत की झाडी में एक वेताल था तिस का महाविशाल स्वरूप था सो वेताल महागर्व करके युक्त भया प्राणियों को मारने की इच्छा करके किसी एक देश में चला आता भया ॥ ९ ॥ उस का यह एक नियम था जो प्राणी अपना अपराध नहीं करे सो भावे अपने मुख के पास आवे तो क्षुधा करके पीडित भया है तो भी तिस प्राणी को नहीं भक्षण करे ॥ ६१० ॥ हे रामजी ! तहां एक राजा रात्रि में नगर की रक्षा करने वास्ते भ्रमण करता तिस वेताल को राजा प्राप्त भया तिस राजे को वेताल कहता भया ॥ ११ ॥

वेताल का वचन—हे राजन् ! मैं वेताल हूं महाभयानक हूं तू मेरे को प्राप्त भया है अब कहां जाता है ? अब तू नष्ट भया है मेरा भोजन तू बन ॥ १२ ॥

राजा का वचन वेताल प्रति—हे वेताल ! रात्रि में चलनेवाले तू मेरे को विना अपराध बल से खावेगा तो तेरा शिर सो टूक होय करके फूट जावेगा ॥ १३ ॥

वेताल का वचन—मैं तो को नहीं भक्षण करता हूं, मेरे को न्याय ही रुचता है, मैं तेरे से समान वार्त्ता को ही पूछता हूं, मैं तेरा न्याय का अर्थी हूं, मेरे न्याय के प्रश्न से संपूर्ण करने ॥ १४ ॥ मेरी संभावना के प्रश्नों को तू भली तरहसे कह दे राजा लोग न्याय करते हैं और अर्थी जनों के अर्थ पूरे करते हैं तिस से तुम न्याय कहो ॥१५॥ हे राजन्! ऐसा सूर्य कैसा है जिस की किरणें ब्रह्माण्डों के सहस्र सूक्ष्म किरण के सरीखे प्रकाशमान हैं ऐसा पवन कौन है ॥१६॥ जिस में महाआकाश की रेणु उडते हैं ऐसा पुरुष कोन है जो एक स्वप्न से दूसरे स्वप्नांतर में दुसरे ते तीसरे को तीसरे ते चौथे को इस प्रकार सैंकडों स्वप्नांतरों को जाता है फिर अपने स्वरूप को त्याग करता है तौ भी नहीं त्याग करता है ॥ १७ ॥ और ऐसा कौनसा अंडा है जिस में केले के स्तंभ की त्वचा को वाहिर के उतारने से उस के अंदर और त्वचा निकसती है तिस के अंदर और निकसती है तिस के अंदर और निकसती है उस के अंदर से भी और इस प्रकार करके अनेक त्वचा निकसती है ॥ १८ ॥ तैसे एक ब्रह्मांड के अंदर दूसरा दूसरे के अंदर से तीसरा तीसरे के अंदर चौथा इस प्रकार करके अनेक ब्रह्मांड जिस के अंदर से भी अंदर वर्त्तमान हैं ऐसा ब्रह्मांड कौन है अणु है जिस में ब्रह्मांड और आकाशादिक भूतों के समूह और सूर्य मंडल सुमेरु आदि पर्वतादिक वर्त्तमान हैं जिस के ऐसे कौन से अणु के परमाणुरूप है और अपने अंडभाव को त्याग ते नहीं हैं ॥ १९ ॥ और ऐसा कौन पर्वत जिस के एक परिमाणु में एकत्र होय करके अनेक त्रैलोक्य गौरी मनशिला धातु रूप करके स्थित है ॥ ६२० ॥ हे राजन्! यह मेरे प्रश्नों को तू नहीं पुरेगा तो दुर्बुद्धे तेरे को मैं खाय लेऊंगा तो तेरे को आत्मघात दोष आवेगा और तेरे राजमंडल को एक फल समान भक्षण कर लेऊंगा ॥ २१ ॥

राजा हँस करके कहता है.

हे वेताल! किसी काल में यह ब्रह्मांड चैतन्य परिपक्व फल जैसा होता है जिस के ऊपर दशगुण पृथिवी पृथिवी से दशगुण जल जल से दशगुण तेज, तेज से दशगुण पवन, पवन से दशगुण आकाश, आकाश से दशगुण अहंकार इस प्रकार ऊपर वस्त्र के वेष्टन की समान में लपेटने युक्त है॥ २२॥ तैसे फलों के सहस्र जिस में लगे हैं ऐसी एक शाखा है कैसी है? विशाल पत्र हैं जिस के तैसी अनेक सहस्र शाखा जिस में हैं ऐसा एक महावृक्ष है महाविस्तारवाला जिस की छाया का मंडल है तैसे वृक्षों के सहस्र हैं जिस में ऐसा एक वन है जिस में अनेक वृक्ष तृण शतादिकों करके भरा है॥ २३॥ तैसे वनों के जिस में सहस्र हैं ऐसा एक पर्वत का महाशिखर है अत्यंत ऊंचा है विशाल विस्तारयुक्त है तैसे शिखरों के सहस्र जिस में हैं ऐसा एक देश महाविस्तारयुक्त है तैसे देश सहस्र जिस में है ऐसा एक द्वीप है महानादियां महासरोवरों करके युक्त है तैसे द्वीपों के सहस्र जहां हैं ऐसा एक चौंतरा है अनेक रचनायुक्त है ऐसे चौंतरे सहस्र जहां है ऐसा महान् अंडा है ऐसे अंडों के सहस्रों के करंडियां जिस में तरे हैं ऐसा एक विशाल जलों करके भरा एक समुद्र है॥ २४॥ तैसे समुद्रों के लक्ष जिस में हैं ऐसा एक तरंग है तैसे तरंगों की अनेक कोटि जिस में है ऐसा एक महासमुद्र है तैसे महासमुद्रों के सहस्र जिस के उदर में जल की समान रहे हैं ऐसा महापुरुष एक है महाविशाल स्वरूपवाला है तैसे महापुरुषों के लक्षों की माला जिस के हृदय में शोभे है ऐसा संपूर्ण जीवों का प्रधानपुरुष है ऐसे प्रधान पुरुषों के सहस्र जिस के मंडल में एक रोम सरीखे भासते हैं ऐसा महासूर्य है जिस के प्रकाश में ऐसी सैंकडों दृष्टि होती हैं॥ २६॥ हे वेताल! जैसी कल्पना मैंने तेरे प्रति

पीछे कही है सो संपूर्ण तिस की प्रकाशशक्ति है जिस के प्रकाश की छाया के ब्रह्मांड त्र्यसरेणु सरीखे महा अणुरूप हैं ॥ २६ ॥ माया है किरण जिस की ऐसा परमात्मा सूर्य है सो सब को प्रकाशमान करता है काल की सत्ता और आकाश की सत्ता और इन के प्रवाह की सत्ता संपूर्ण चैतन्यसत्ता और शुद्ध चैतन्यसत्ता यह संपूर्ण पवित्र है ॥२७॥ हे वेताल! परमात्मा रूपी महापवन है तिस में महा आकाशादिक रेणु चंचल होय करके चलती है और जगत् नामा महान् स्वप्न है तिस में अनेक स्वप्नांतर हैं तिन को जानता भी है तो भी अपने सच्चिदानंदस्वरूप को नहीं त्यागता है सो परब्रह्म है सदा शांत है और प्रकट होना, लय होना, वृद्ध होना, क्षय होना इन्हों से रहित है ॥ २८ ॥ जैसे केले का स्तंभ ऊपर से त्वचा उतराने से अंदर और और त्वचा को प्रकट करता है एकका ही अनेक बना है बाहिर से तैसे यह विश्व एक ब्रह्म का ही अनेक बना है असार भ्रमरूप फुरने के पदार्थ त्यागने से अंदर अंदर से सार से सार पदार्थ प्रतीत होता है ॥ २९ ॥ हे वेताल! यह चैतन्य अणुसे भी सूक्ष्मरूप है और अनंत है तिस के एक अंश के अणु में ब्रह्मांड, आकाश, समस्त भूतसमूह, सूर्य मंडल और सुमेरु परमाण, की समान प्रतीत होते हैं कैसे हैं रूपरहित जैसे हैं स्वप्न के ब्रह्मांड की समान॥६३०॥हे वेताल! नहीं प्राप्तव्य होने से यह पुरुष परम अणुरूप है और सब को सत्ता देने में सत्ता का महापर्वत है संपूर्ण विश्व तिस का अवयव अंगरूप है तो भी इस के नाश विषें नहीं नष्ट होने सें निरवयव है उस की यह त्रैलोकी केवल नाममात्र करके सत्तामात्र है इस को केवल ज्ञान मात्र को ही जान ॥ ३१ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सो वेताल तिस राजा के मुख से ऐसा वचन श्रवण करके परम शांति को प्राप्त होता भया अ-

चल ध्यान में स्थित होता भया अत्यंत क्षुधा जो लगी थी तिस को विसार देता भया ॥ ३२ ॥

अब भगीरथराजा के प्रसंग को सुनावते हैं.

हे रामजी! सो राजा भगीरथ संतजनों की सेवा वास्ते निरंतर-धनों को देता भया आप किसी से तृणमात्र भी नहीं लेता है जैसे चिंतामणि रत्न जो चाहे तिस को देता है आप पदार्थ के ग्रहण के फुरने से रहित है॥३३॥सो राजा यौवन को प्राप्त भया है तौ भी इस लोक की उलट पलट होती व्यवस्था को देखने का विचार करके यौवन में ही वैराग्य उदय होता भया जैसे मारवाड देश में लता प्रकट होवे ॥ ३४ ॥ सो राजा भगीरथ एक समय में उदास मन होय करके अपने तितल नामक गुरु को एकांत में संसार में भयभीत होय करके पूछता भया ॥३५॥ हे गुरुजी! संसार को प्राप्त करनेवाले जरामृत्यु और मोहरूपी सर्व दुःखों का अंत कैसे होता है ॥ ३६ ॥

तितल गुरु कहते हैं-हे राजन्! यह चित्त ज्ञान करके ज्ञेय चैतन्य वस्तु में एक निष्ठा को प्राप्त होवे तो जीव सर्वत्र परब्रह्मरूप को जानता है फिर संसारदुःख को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३७॥

तिस ज्ञान को हम अब कहते हैं—पुत्र और स्त्री-गृह और धनादिक इन से संग और प्रीति नहीं करनी सुख-दुःख की प्राप्ति में समचित्त रहना आत्मज्ञान में नित्य ही निष्ठा करनी तत्त्व-ज्ञान का अर्थ विचार और आत्मा की एकांत भावना करनी, निर्जन पवित्र देश में रहना, संसारिलोगों की संगति त्यागिनी यह ज्ञान कहा है. इस से विरुद्ध अज्ञान है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! सो ज्ञान कैसा है? राग-द्वेष को क्षय करनेवाला है. संसार रोग दूर करने की औषध है. सो ज्ञान देहादिक में अहंभाव की शांति भई संते होता है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! अपने पौरुष के यत्न करके और भोग समूह की

भावना त्यागने से आत्मा की सत्ता को सदा प्रकाशमान पा करके अहंकार लय को प्राप्त होता है ॥६४०॥ हे राजन्! जबलग लज्जा और स्नेह मोहादिकों का बंधनरूपी यंत्र नहीं टूटा, जिस से परे कुछ नहीं ऐसी ब्रह्मचैतन्य की सत्तामात्र जगत् के अभाव की शेष नहीं जानी तबलग अहंकार बना है ॥४१॥ हे राजन्! तू संपूर्ण संसार के सुख दुःख हर्ष शोकादि विशेषणों को शांत कर और जरा मरणादि भय से रहित हो, लोकेषणा पुत्रेषणा वित्तेषणा से रहित हो, और निष्किंचन पुरुष की समान सब से ममता को त्याग कर संपूर्ण संपदा को भी त्याग कर अहंकार को भी शांत कर और देह की रक्षा से रहित हो, लोक में भिक्षाटन करके सर्व त्याग को धारण करेगा तो ऊंचे से भी ऊंचे पद को पावेगा ॥ ४२ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! तितिल गुरु ने राजा भगीरथ को ऐसा कहा तो सो राजा केते दिन गये संते सर्व त्याग की सिद्धि वास्ते अग्निष्टोम यज्ञ को करता भया. एक धोती मात्र बाकी वस्त्र को ले कर सर्व त्याग करके अपने नगर से और राज्य से बाहिर निकस जाता भया. जहाँ अपने को नाम करके भी नहीं बुलावे और जाने भी नहीं तहां जाय रहता भया ॥ ४३ ॥ तहां जा करके ग्रामों विषैं वनों विषैं नदीतीरों विषैं आश्रमों विषैं पर्वतों की कंदराओं में निवास करता भया. और आत्मविचार में धैर्य करके सावधान होता भया. और तीन प्रकार की इषणा पुत्र, लोक, द्रव्य इन की इच्छा उस की शांत होती भई ॥ ४४ ॥ हे रामजी! सो राजा भगीरथ परम उपशम करके आत्मस्वरूप में विश्रांति को प्राप्त होता भया. पृथिवी अनेक नगरों देशों में कितना काल व्यतीत करके अपने नगर को आवता भया. वह कैसा है? नगर अपने वश में नहीं है, और शत्रुजनों करके आक्रांत किया है ॥ ४५ ॥ तिस नगर में प्रवाह करके

जो आगे आ जावे तिस मंदिर में चला जाता है. अनेक नगर के लो-कों के घरों में मंत्रियों के घरों में भिक्षाटन करता भया ॥ ४६ ॥

और जिस शत्रु ने राज्य लिया है, सो राजा को कहता भया.

हे महाराज ! अपने राज्य को ग्रहण करो. ऐसे कहने से भी राज्य को ग्रहण नहीं करता भया. जिस कारण से तिस ने सर्व त्याग किया है, सो भोजन मात्र से अधिक को नहीं लेता भया ॥ ४७ ॥ किसी काल में प्रशांतमन भया सर्व प्रकार करके प्रशांत भई बुद्धि जिस की और परम सुख को प्राप्त भया. सो एक काल में आत्मानंद में मग्न भये तितिल गुरु के पास प्राप्त होता भया ॥४८॥ सो तितिल गुरु और राजा भगीरथ शिखा दोनों मुनियों की सभा में प्राप्त भये. आपस में ब्रह्मविचार करके काल को व्यतीत करते भये. अयाचित अन्नपान करके देह यात्रा को करते भये ॥४९॥ सो दोनों धनों को हाथी घोडे रथों को और अष्ट प्रकार के ऐश्वर्य को सिद्धजनों करके सेवित किया है तिस को भी तृण समान जानते भये ॥ ६९० ॥ सो दोनों मुनि होते भये. जो कुछ काल योग से सुख अथवा दुःख चला आता है, तिस को आनंद करके अंगीकार करते भये. और वह कैसे हैं? चाहना से रहित हैं समरस अवस्था में दोनों स-मान होते भये ॥ ९१ ॥ सो राजा भगीरथ किसी काल में किसी दे-श में कोई कितने राजे नष्ट हो गये. तब मंत्रियों ने प्रजा ने विनति करी तो लोकों के उपकार के वास्ते अपने पराये राज्य को करता भया. सप्तद्वीप पृथिवी का एक चक्रवर्ती होता भया. फिर महातप-स्या करके ब्रह्म लोक से गंगा को पृथिवीलोक में उतारता भया. तिस से उपरांत मनरूपी हंस को उपशम करके परम गति को प्राप्त भया ॥ ९२ ॥ इति श्रीभगीरथ राजा का प्रसंग ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! तुम भी मन करके यह संपूर्ण संसारजाल को त्याग करके मनरूपी पक्षी को अपने वश करके राजा शिखिध्वज की समान शांतवृत्ति होय करके सुख में अचलस्थिति को प्राप्त हो॥ ५३॥ हे रामजी! एक राजा शिखिध्वज मालव देश का होता भया. चूडाला तिस की रानी होती भई. सो दोनों उत्तम गुणों करके संयुक्त होते भये चिरकाल राज्यभोगों को अपनी इच्छा करके भोग करके फिर विचार को करते भये॥ ५४॥ इस संसार में ऐसा कौन स्थिर और सुंदर पदार्थ है. जिस को पा करके चित्त दुःखदशा करके संताप को नहीं प्राप्त होता है॥ ५५॥ सो राजा और रानी ऐसा मन में निर्णय करके संसाररोग की औषधरूपी वेदांतशास्त्र को चिरकाल विचार करके मन में निश्चय करते भये. संसाररूपी विषूचिका आत्मज्ञान करके शांत होती है. ऐसा निश्चय करके आत्मज्ञान में परायण होते भये॥ ५६॥ हे रामजी! इस में अनंतर सो चुडाला रानी तत्त्वज्ञ पुरुषों के मुख से सुंदर पदों करके शास्त्रों के अर्थों को संसार से तारनेवाले को सुन करके इस प्रकार करके अपने आप को ऐसे विचार करती भई॥ ५७॥ संसार के कार्यों को करती हुई, अथवा नहीं करती हुई. निरंतर अपने में विचार करती भई मैं देखूं तो सही मैं आप कौन हैं यह मोह किस को प्राप्त भया है. और कहां से उठ खडा भया है॥ ५८॥ जो मैं देह को आत्मा जानूं तो देह तो जड है और मूढ है. यह आत्मा नहीं है. किस से जिस से बालपने से हो मैंने अनुभव करके जाना है यह कर्मेंद्रियों करके कर्म करे है. तो मैं कर्मेन्द्रियों को आत्मा जानूं तो कर्मेन्द्रियां भी आत्मा नहीं हैं जिस से कर्मेन्द्रियां देह के अंग हैं. और ज्ञानेंद्रियों की प्रेरण करी हुई कर्म करने में प्रवृत्त होवे हैं॥ ५९॥ तो ज्ञानेंद्रियां आ-

त्मा हैं नहीं ज्ञानेंद्रियां भी जड हैं जिस से मन की प्रेरणा करी हुई प्रवृत्त होवें यह भी शरीर के अवयव हैं. जैसे लाठी करके बल करके लोक काम करे हैं तैसे प्रवृत्त होवे हैं. तो मन आत्मा है सो भी नहीं जिस से मन भी जड है जैसे खमानी करके पत्थर फेंकिया है तैसे मन बुद्धि ने प्रेरण किया हुआ संकल्प करे है ॥ ६० ॥ तो बुद्धि निश्चयरूप है सो बुद्धि आत्मा है नहीं सो बुद्धि भी जड है सो भी अहंकार प्रेरण करी निश्चय करे है जैसे पृथिवी को खोदने के मार्ग करके नदी चले है ॥ ६१ ॥ तो अहंकार आत्मा है सो भी नहीं जिस से अहंकार भी जड है मुर्दे के सरीखा जैसे बालक ने अपने भ्रम करके यक्ष कल्पन किया है सो बालक को ही डरावे है तैसे अहंकार भी जीव ने कल्पन किया है. जो जीव आत्मा है सो भी नहीं सो जीव भी चैतन्य का अंशरूप करके हृदय में स्थित है अनात्मपदार्थ के हृदय में स्थित भया है. और अत्यंत सूक्ष्म है और किसी परमात्मा चैतन्य करके अपने जीवभाव को करे है ॥ ६२ ॥ अहो इति महा आनंद है. अब मैं ने जाना है जिस करके देहादिकों को चेते है और जड पदार्थों में जीवभाव को कर्ता है, परंतु जड पदार्थों के नाश में नाश को नहीं प्राप्त होता है. जिस चैतन्यरूप करके प्रकाशा है जिंस के चेतने विना जड पदार्थों से मुक्त नहीं होता है. सो परमात्मा चैतन्य मैं ने अब जाना है ॥ ६३ ॥ यह जीव जो है सो असत्य और जड जो देहादिक हैं और चिदाभास इन के संबंध से अपना जो चैतन्यता स्वरूप है तिस को आप शुद्धचैतन्य स्वरूप भी है अपने स्वरूप को त्याग करके जडरूप हो जाता है जैसे जल के महा सरोवर में प्राप्त भया अग्नि अपने प्रकाश रूप को उष्णता गुण को त्याग देता है ॥ ६४ ॥ यह जो मन बुद्धि आदि कहो सो चिदा-

भास कर सब ही असत्य हैं. भ्रम करके सिद्ध भये हैं जैसे भ्रम करके एक चंद्रमा के दो चंद्रमा की प्रतीत होती है तैसे दूसरे चंद्रमा के स्थान हैं ॥६५॥ सत्यरूप एक महाचैतन्य परमात्मा है. जिस को महासत्ता कहते हैं. सो सदा अज्ञानादि कलंक से रहित है. सर्वत्र सदा समान है. अहंकार से रहित स्वरूपयुक्त है ॥ ६६ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सो चूडाला अपने विवेक के घने अभ्यास से और घने आत्म स्वरूप के उदय से कांति करके अत्यंत शोभित होती भई जैसे लता नई प्रगट होती है सो फल और नवदलों के उदय होने से शोभित होती है ॥६७॥ हे रामजी! राजा शिखिध्वज तिस चूडाला को देखता भया है. उत्तम है अंग जिस के तिस को अपूर्व शोभा युक्त भई को देख करके मंदहास करके युक्त वचन को कहता भया हे प्रिये! तू अब फिर नये यौवन को प्राप्त भई जैसी शोभे है. बारंबार उत्तम शृंगार रचनायुक्त जैसी शोभती है.अपनी शोभा करके संपूर्ण जगत् को शोभायमान करती है ॥६८॥ हे प्रिये! मानो तैं ने अमृतपान किया है अथवा मानो उत्तम वस्तु को प्राप्त होई है. मानो आनंद समुद्र में मगन भई है ॥६९॥ हे प्रिये! चक्रवर्ती राज्य से और चिंतामणि से त्रैलोक्य के इंद्रपदवी से तेरे को क्या अधिक वस्तु प्राप्त भया है ऐसी आनंद करके अत्यंत शोभा को प्राप्त अपने आनंद के कारण को मेरे प्रति कह दे ॥ ६७० ॥

चूडाला रानी का वचन—हे राजन्! मेरे स्वामिन्! मैं इस जगत् को कुछ स्वरूप करके युक्त भये को अथवा कुछ स्वरूपरहित भये को कुछ भी नहीं जानती हूं तिस कारण से मैं अत्यंत शोभा को प्राप्त भई हूं ॥ ७१ ॥ हे स्वामिन्! भोगों को भोगने करके अथवा नहीं भोगने करके हर्ष नहीं करती हूं और शोक भी नहीं करती हूं

मेरे को भोग पास प्राप्त भये भी दूर गये जैसे हैं तिस से आनंदयुक्त भई हूं ॥ ७२ ॥ हे नाथ! यह मैं हूं, यह मै नहीं हूं, सत्य मैं हूं, असत्य मैं हूं, संपूर्ण मैं हूं, मैं कुछ नहीं ऐसे संकल्प से रहित होने करके आनंदयुक्त मैं भई हूं ॥७३॥ हे नाथ! निश्चय करके उत्तम शास्त्रों की विचारदृष्टि करके उत्तम बुद्धि करके राग-द्वेष से रहित भई हूं, सखीजनों के साथ क्रीडा भी करती हूं तिससे सुखी भई हूं ॥७४॥ हे नाथ! जो कुछ मैं नेत्रों करके देखती हूं सो यहां जगत् में सत्य कुछ दृष्ट नहीं होता है, तिस परमात्मा चैतन्य को मैं भली तरह से देखती हूं तिस से चिरकाल परम उदय को प्राप्त भई हूं ॥ ७५ ॥

वसिष्ठजी रामजी प्रति कहते हैं—हे रामजी! सो चूडाला रानी आत्मस्वरूप में विश्रांत भई राजा को आत्मज्ञान का मार्ग कहती भई सो राजा तिस के वचनों के अर्थ को नहीं जान करके शिखिध्वज राजा कहता भया ॥ ७६ ॥ हे प्रिये! तू संबंधरहित वचनों को कहती है. तू अज्ञान है, बालबुद्धि है, राजभोगों को भोगने योग्य है, राजकन्या है, भोगों को भोग ऐसे वचन कहने को तू योग्य नहीं है ॥७७॥ हे प्रिये। जो कोई कुछ प्रत्यक्ष पदार्थ को त्याग करके जो देखने भोगने में नहीं आवे तिस को विचारे और प्रत्यक्ष भोग को असत्य कहे सो कैसे शोभा को पावे है ॥ ७८ ॥ हे प्रिये! जो कोई भोगों को विना भोगे त्यागे, जो कुछ नहीं तिस में प्रीति करे सब कुछ त्याग करके अकेला रहे सो कैसे शोभता है ॥ ७९ ॥ हे प्रिये! जो कहे न मैं देह हूं मैं देह से और हूं यह सब कुछ नहीं ऐसा जिस का कहना है सो कैसे शोभता है ॥ ६८० ॥ हे प्रिये। जो मैं देखता हूं तिस को मैं नहीं देखता हूं तिस को मैं देखता हूं सो इस से और है ऐसा कहना जिस ने नहीं त्यागा है सो कैसे शोभता है ॥ ८१ ॥ तिस से हे प्रिये! तू बाला है और मूढ है और चंचल है ऐसे मत

कहो तू विलास भोगने योग्य है अनेक विलासवाले वचनों को कह और विलासयुक्त भोगक्रीडा को कर ॥ ८२ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—सो चूडाला रानी राजा को आत्मज्ञान से रहित देख करके दया करके तिस के द्वार वास्ते आधि और व्याधि से मुक्त होय करके आत्मज्ञान की योगसिद्धि से आकाश में उड जाने को समर्थ भी है तो भी राजा के उद्धार करनेवाले योगाभ्यास को करती भई ॥ ८३ ॥

श्रीरामजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति.

हे महाराज! इस देह में विनाश क्या है और उत्पात क्या है और आधि क्या है और व्याधि क्या है इस को तुम क्रम से कहो ॥ ८४॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! आधि और व्याधि ये दोनों दुःख के कारण हैं तिनकी निवृत्ति को तू सुख जान, तिनके क्षय को तू मोक्ष जान ॥ ८५॥ हे रामजी! ये दोनों आधि व्याधि किसी काल में इकट्ठे शरीर में होते हैं कदाचित् क्रम से होते हैं कदाचित् आगे पीछे होते हैं ॥ ८६ ॥ हे रामजी! देह के दुःख को व्याधि जानते हैं वासना के दुःख को आधि कहते हैं तिन दोनों की अपनी मूर्खता ही मूल है तत्त्वज्ञान से दोनों का क्षय होता है ॥ ८७ ॥ हे रामजी! तत्त्वज्ञान नहीं होने से और इंद्रियों के जीतने बिना और हृदय से राग-द्वेषों के नहीं त्यागने से और जडता से घने मोह को देनेवाली आधि प्रवृत्त होती है जैसे वर्षाऋतु में जलधारा होती हैं ८८ हे रामजी! भोगों की हृदय में निरंतर वांछा करने से और मूढता से चित्त के नहीं जीतने से दुःख करनेवाले क्रूर व्यवहार करके दुष्ट देश में भ्रमने से क्रूरकाल में व्यवहार करने से क्रूर क्रिया करने से दुर्जनों की संगतिदोष करके दुर्जनों की सेवा करने से नाडियों के मार्ग में

पवन के बढ़ने घटने से देह की व्याकुलता करते अत्यंत दुःख देने-वाली चित्त को व्याकुलता करनेवाली शरीर में व्याधि होती है ८९ हे रामजी! जैसे नदी के स्वरूप की वर्षाऋतु में और ग्रीष्मऋतु में क्षीणता और वृद्धि होती है तैसे आधि व्याधि ये दोनों पंच भूतों से बनी हुई शरीर में उदय होती है ॥९०॥ हे रघुकुल के धुरंधर! जैसे आधि व्याधि नाश को प्राप्त होती है तिस को तुम श्रवण करो, व्याधि दो प्रकार की है, एक साधारण है, एक सार है. व्यवहार की व्याधि सामान्य है जन्म की व्याधि सार है. जो प्राप्त हो गया भोग पदार्थ तिस करके शरीर का प्रयोजन करने से व्यवहार की व्याधि नष्ट होती है ॥ ९१ ॥ हे रामजी! जो व्याधि मानसी चिंता से भई है सो मानसी चिंता के नाश भयेसे नष्ट होती है और जन्मरूपी सम व्याधि जो है सो आत्मज्ञान विना नष्ट नहीं होती है ॥ ९२ ॥ हे रामजी! मानसी दुःख ही आधि कही है सो संकल्परूप है और वासनामय है सो जैसे रज्जू का ज्ञान करके रज्जू का सर्प नष्ट होता है तैसे ही सब का अधिष्ठान आत्मा को जानने से वासनासहित मानसी आधि नष्ट होती है ॥ ९३ ॥ हे रामजी! जैसे वर्षाऋतु में बढ़ी जो नदी सो अपने तट के वृक्षों के मूलों को उखाड देती है आत्मज्ञान संपूर्ण आधि व्याधि के मूल कारण अविद्याको दूर कर देता है ॥ ९४ ॥ और जो मानसी चिंता से व्याधि है सो मंत्रऔषधी कर्मों करके चिकित्सा-शास्त्र में कहे उपाय करने से और आहार-व्यवहार का संयम से नष्ट होती है ९५ ॥

श्रीरामजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति—हे गुरुजी! आधिसे व्याधि कैसे होती है सो औषधी द्रव्यों करके और मंत्र की युक्ति करके और पथ्य करनेसे नष्ट होती है यह तुम मेरे प्रति कहो ॥९६॥

श्रीवसिष्ठजी रामजी प्रति कहते हैं–हे रामजी! चित्त व्याकुल होने से देह भी क्षोभ को प्राप्त होता है तब यह प्राणी क्रोध को प्राप्त भया अपने आगे मार्ग-कुमार्ग को कुछ नहीं देखता है वेग करके युक्त भया जैसे बाण करके पीडित भया मृग वेग करके जल्दी चला जाता है तैसे बहुत वेग की गति करके व्याकुल होता है तब तिसके देह के प्राण-पवन क्षोभको प्राप्त भये तो अपने समान चलने के मार्ग को त्याग उलटे चलते हैं जैसे हाथी के प्रवेश करने से नदी के किनारे में जल चढ आवते हैं ॥९७॥ प्राण के उलटे चलने से देह की नाडी उलट जाती है जैसे राजा की व्याकुलता करके लोक में जाति के धर्म उलटे हो जाते हैं ॥ ९८ ॥ हे रामजी! इस देह में कोई नाडियां प्राण-पवन करके पूर्ण होती है कोई खाली होती है प्राण बिगडने में नाडी बिगड जाती है जैसे वर्षा ऋतु में नदियां बिगड जाती हैं ॥ ९९ ॥ हे रामजी! प्राण का संचार बिगडने से अन्न विकार करके कम पचे है कबहूं नहीं पचे है कबहूं बहुत पचे है इस प्रकार करके अन्न खाया हुआ देह में दोष करने वास्ते होवे हैं॥७००॥ हे रामजी! इस प्रकार करके मानसी चिंतारूपी आधि से व्याधि होवे है तिस से आधि के नाश से व्याधि का नाश होवे है और जैसे मंत्रो करके व्याधि नष्ट होवे है तिस क्रम को तुम सुनो ॥ १ ॥ हे रामजी! जैसे हरडा भक्षण करनेसे स्वभाव करके मल को पचाय करके उदर से निकास देतो है तैसे प्राणायाम करके मात्रा लवपल घडी आदिक मंत्रो के आवर्त्तन करनेसे व्याधि शरीर से निकस जाती है ॥ २ ॥ हे रामजी! भावना के वश से और श्रद्धा करके उत्तम क्रिया करके साधुजनों की सेवा करके मन निर्मल जानीया है जैसे कसोटी में सुवर्ण शुद्ध जानीया है ॥ ३ ॥ हे रामजी! मन शुद्ध होने से देह में आनंद बधता है जैसे पूर्ण चंद्रमा उदय होने से मंदिरमें निर्म-

लता शोभती है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! मन की शुद्धि से मंत्र क्रम करके प्राणपवन यथा योग्य देह में चलते हैं और भोजन किये सबही अन्नों को पचाय देते हैं अन्न पचने से व्याधि नष्ट होती है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यह शरीरादिक आत्मा नहीं है इन में जो आत्मभावना है सो ही हृदय में अज्ञान का अंधकार है सो अज्ञानरूपी अंधकार है सो सूर्य–चंद्र–अग्नि के प्रकाश से दूर करना दुःख करके भी बनता है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! सत्तारूप आत्मा की दृढ भावना जो है सो मूढों को भी आनंद को प्राप्त भया करती है जो नहीं होवे तो भी तत्त्ववेत्ता को भी मूढ की समान दुःख को प्राप्त करती है यह अपनी भावना विष को अमृत करती और अमृत को विष करती है ॥७॥ हे रामजी! यह देह सत्य भावना करके देखा होवे तो फिर देह को करता है और असत्य भावना करके देखा होवे तो आकाश की समान शून्य हो जाता है ॥ ८ ॥ हे रामजी ! सो चूडालारानी अपने भर्त्ता राजाशिखिध्वज को संपूर्ण यत्न करके बहुत करके आत्मज्ञानरूपी अमृत प्राप्त होने को बोधन करती भई तो भी राजा बोध को नहीं प्राप्त होता भया॥९॥ सो राजा चूडाला को आत्मज्ञान की युक्ति कहतो को ऐसे जानता भया यह मेरी राणी कामभोग की कला में चतुर है जो कहती है तिस ज्ञान में मूढ है और बाला है स्त्रियों को ज्ञान नहीं होता है ऐसे केवल जानता भया और आत्मज्ञान करके सिद्ध भई को नहीं जानता भया ॥ १० ॥ हे रामजी! सो चूडाला आप सिद्ध भई है परंतु राजा को आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं भई देख करके मन में विश्रांति को नहीं प्राप्त होती भई और अधिकार विना आत्मज्ञान की सिद्धि को राजा को नहीं दिखावती भई जैसे शूद्र को वेदोक्त यज्ञों की क्रिया नहीं दिखावते हैं ॥ ११ ॥

श्रीरामजी का प्रश्न वसिष्ठजी प्रति.

हे गुरुजी ! सो चूडाला रानी आत्मज्ञान की महा सिद्ध योगिनी है तिस के बोधन करने से भी राजा बोध को नहीं प्राप्त भया तो और कोई और किसी ने कैसे बोधन करना है ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी ! उपदेश का यही क्रम है कि, जो व्यवस्था मात्र कहनी शास्त्रद्वार करके आत्मज्ञान का मार्ग कहना और ज्ञान होने का कारण शिष्य की केवल शुद्ध बुद्धि है जो बुद्धि निर्मल नहीं होवे तो ज्ञान नहीं होता है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! विंध्याचल पर्वत की छाया में कोई एक महाकृपण किराड था तिस की एक कोडी मार्ग में गिर पडी सो किराड तिस कौडी को तीन दिन ढूंडता भया तिस को मार्ग में चिंतामणि हाथ लगी तिस की संपूर्ण कृपणता जाती रही तैसे ही गुरुमुख से शास्त्र का उपदेश श्रवण करनेसे भावना से एकाग्र होने से आत्मज्ञान भी प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! पदार्थ कुछ और ढूंडा है और सद्गुरु सेवासे और कृपासे कुछ पदार्थ प्राप्त होता है जैसे किराड एक कौडी को ढूंडता था सो चिंतामणि को प्राप्त होता भया हे रामजी ! सो राजा शिखिध्वज तप और तीर्थ दान करनेसे सुख को नहीं प्राप्त भया सो एक समय में पास बैठी चूडालारानी को वचन कहता भया ॥ १५ ॥

राजा शिखिध्वज का वचन रानी चूडाला प्रति.

हे प्रिये ! राज्य मैं ने चिरकाल भोगा है और ऐश्वर्य की संपदा भी चिरकाल भोगी है अब मैं वैराग्य करके युक्त भया हूं बन को जाता हूं ॥१६॥ हे रानी ! बन में गये से मुनिजनों को भोगसुख भी वश नहीं करते हैं और दुःख भी वश नहीं करते हैं आपदा और संपदा भी वश

नहीं करती है देशभंग और पदार्थों की हानी का मोह और युद्ध में प्राणियों का क्षय वनवास करनेवाले को दुःख नहीं करते हैं तिस से राज्य से भी वनवास करनेवाले को अधिक सुख को मैं जानता हूं १७ हे सुंदरी! जैसे एकांत वन रहनेवाले को सुख होता है. तैसा सुख स्वर्ग में चंद्रमंडल में ब्रह्मा–विष्णु–रुद्रलोकों में नहीं होता है॥१८॥ हे रानी! जो तू मेरा प्रिय चाहती है तो मेरे वन जाने में विघ्न को नहीं करने योग्य है. जिस कारण से उत्तम कुल की स्त्रियां भर्त्ता के मनोरथ करने में स्वप्ने में भी विघ्न नहीं करती हैं ॥ १९ ॥

रानी चूडाला राजा शिखिध्वज प्रति कहती है.

हे नाथ! योग्यकाल में किया कार्य शोभता है. अयोग्य काल में किया नहीं शोभता है जैसे वसंत ऋतु में वृक्षों को पुष्प शोभा करते हैं और शरदऋतु में फल शोभा करते हैं॥ ७२० ॥ तिस से हे राजन्! वृद्धावस्था करके जर्जर देहवाले पुरुषों को वनवास शोभता है. और तुह्मारे सरीखे युवा पुरुषों को वनवास करना मेरे को योग्यता विना नहीं रुचता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! अब तेरे को प्रजा पालने का समय है वन जाने का समय नहीं है. अब तू राजा हो करके प्रजा को पालना छोड करके वन को जावेगा तो राजा विना राज्य में पाप होने से सो पाप तेरे को प्राप्त होवेगा ॥ २२ ॥ हे राजन्! जो राजा समय की मर्य्यादा को उलंघन करके वर्त्तमान होवे तिस को प्रजा और मंत्री सेवक रोक लेते हैं अयोग्य कार्य को नहीं करने देते हैं ॥ २३ ॥

शिखिध्वज राजा का वचन रानी चूडाला प्रति.

हे रानी! अब तेरा कहना हो रहा अब मेरे चाहे कार्य में विघ्न मत कर, मेरे को अब दूर एकांत वन में गये को समझ ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी के प्रति कहते हैं.

हे रामजी! एक दिन में अर्धरात्रि में शय्या पर सो गई चूडाला को त्याग करके "मैं चोरों को मारने को जाता हूं" ऐसे पहरेवाले चाकरों को कह करके "हे राज्यलक्ष्मी! तेरे को मेरी नमस्कार है" इस प्रकार राज्यलक्ष्मी को भी त्याग करके बन को चला जाता भया ॥ ॥ २५ ॥ हे रामजी! तिस से उपरांत चूडाला रानी जाग्रत भई राजा को नहीं देखती भई चाकरों से भी राजा की खबर नहीं पाई तब योगसिद्धि करके आकाश में चढ करके एकाकी बन में जाते राजा को ध्यान करके देखती भई आप नहीं गई ॥२६ ॥ सो राजा भी अपना द्वादश राजमंडल को त्याग करके जहां आप को कोई नहीं जाने तहाँ जा करके एक कुटि में निवास करता भया ॥ २७ ॥ हे रामजी! सो राजा तहां बैठ करके नियम करता भया दिन के प्रथम प्रहर में संध्या-जप को करता भया, दूसरे में पुष्पों का संग्रह करके देवता पूजन करता भया, तीसरे में फल-मूल का भोजन करता भया, चौथे पहरमें सत्संग शास्त्रश्रवण को करता भया, सायंकाल में संध्या-जप करता भया इस प्रकार का सात्त्विक तप करते राजा को अष्टादशवर्ष काल होता भया, तिस के पीछे चूडाला राज्य को पालन करती भई ॥ २८ ॥ हे रामजी! तिस से उपरांत चूडाला रानी अपने पति को निष्काम सात्त्विक तप करने से निर्विकार शुद्धअंतःकरण भये को ध्यान करके जानती भई ॥ २९ ॥ तिस को आत्मज्ञान का उपदेश करने को तिस के पास जाती भई मुनिपुत्र का स्वरूप धारण करके राजा के आश्रम में प्राप्त भई. राजा तिस को देख करके आदर-सत्कार को करता भया ॥ ७३० ॥ फिर राजा नामगोत्र को पूछता भया हे मुनिपुत्र! तेरा नाम और जन्म गोत्र क्या है ऐसा सुन करके मुनिपुत्र रूपका अपना जन्म नाम गोत्र को कहती भई ॥

॥ ३१ ॥ हे राजन्! एक समय में सुमेरु पर्वत में नारदजी जाते भये तहां देवताओं की गंगा में रंभातिलोत्तमादि अप्सरा स्नान करती थीं तिन्हों के वस्त्ररहित देहों को देखते नारदजी का वीर्यपात होता भया सो वीर्य नारदजी ने स्फटिक के कमंडलू में गुप्त किया तिस से मेरा जन्म भया है पिता नारद है और पितामह मेरा ब्रह्मा है तिन दोनों ने प्रीति करके वेदशास्त्रसहित संपूर्ण ज्ञान दिया और कुंभ मेरा नाम किया ॥ ३२ ॥ जो तुम पूछो सो नारदजी सदा ब्रह्मचारी हैं तिन का वीर्य पात कैसे भया तो श्रवण करो. परमात्मा का स्वरूप सदा निर्मल है और सदा सत्य है लवमात्र कर के भी विस्मरण हो जावे तो भी तिस में विकारसहित विश्व उदय भया भासता है जैसे वर्षाऋतु में वादल उदय होते हैं ॥ ३३ ॥

शिखिध्वज का वचन—हे मुनिपुत्र! आज से महात्मा सज्जनों की गिनती में आया हूं अमृत के प्रवाहसरीखे वचन कहनेवाले तेरे साथ जो मेरा समागम भया है ॥ ३४ ॥ हे मुनिपुत्र ! जितने जगत् में राज्यलाभादिक उत्तम भाव हैं सो तैसे आनंद को नहीं करते हैं जैसे सज्जनों का समागम आनंद करता है ॥ ३५ ॥ तिस से उपरांत चूडाला ने मुनिपुत्र के स्वरूप करके प्रश्न किया तू कौन है? किस वास्ते तुह्मारा तप है? ऐसा प्रश्न किये सते राजा शिखिध्वज कहता है ॥ ३६ ॥ हे मुनिपुत्र! तू सर्वज्ञ है संपूर्ण तेरे को विदित है तोभी तेरी आज्ञा से मैं अपने वृत्तांत को कहता हूं मैं राजा शिखिध्वज हूं मैं राज्य को त्याग करके यहां वन में चला आया हूं हे तत्त्ववेत्ताजी ! तेरे दर्शन से मैं अति प्रसन्न भया हूं जन्म से अब कृतार्थ भया हूं ॥ ३७ ॥ हे तत्त्वज्ञ! इस संसार में वार वार सुख होते हैं और वार वार जन्ममरण होते हैं तिस कारण से मैं वहुत संताप को प्राप्त भया हूं वन में आया हूं ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं चारों दिशा-

ओं में फिर करके भ्रमा हूं मेरे को चित्त की विश्रांति नहीं प्राप्त होती है जैसे निर्धन पुरुष निधि प्राप्त भये बिना चारों दिशा भ्रम करके विश्रांत होता है ॥ ३९ ॥ हे मुनिपुत्र! चित्त की विश्रांति वास्ते वन में आ करके यह अखंड नियम क्रिया को मैं करता भी हूं तो भी दुःखसमूह को प्राप्त होता हूं मेरे को अमृत भी विषरूप भया है ॥ ७४० ॥

चूडालारानी का वचन—हे राजन्! मैं पहिले अपने पितामह ब्रह्माजी को पूछता भया हे पितामह! क्रिया और ज्ञान में जो मुख्य कल्याण को करे तिस एक को निश्चय करके कहो ॥ ४१ ॥

ब्रह्माजी का वचन—हे पुत्र! ज्ञान ही परम कल्याण का साधन है तिस करके मोक्ष हो जावे कर्म तो वृथा है कर्म जो कहा है सो ज्ञानरहित पुरुषों को कालक्षेप वास्ते कहा है ॥ ४२ ॥ हे पुत्र! जिन्हों को ज्ञानदृष्टि नहीं भई है तिन को कर्म ही आश्रय है जैसे जिस पुरुष के पास शाल दुशाला नहीं है सो अपने कंबल वस्त्र को नहीं त्यागता है उस को कंबल ही दुशाला है तैसे जिस को ज्ञान नहीं भया है तिस को कर्म से ही कल्याण है ॥ ४३ ॥ जिस की सर्वत्र ब्रह्मभावना से मूढता दूर भई है तिस को वासना उदय नहीं होती है जैसे चतुर पुरुष को मारवाड देश में जल समुद्र की भावना नहीं होती है ॥ ४४ ॥

चूडाला रानी का वचन—हे राजन्! ज्ञान ही परम कल्याण को देता है ऐसे महात्मा ब्रह्मादिक कहते हैं तू क्यों अज्ञानवान् बना है. कहता है यहां हमारा कमंडलु है, दंड है, यहां हमारा आसन है इस प्रकार करके अनर्थ के विलास में क्यों आसक्त भया है ॥ ४५ ॥ हे राजन्! तू ऐसा विचार क्यों नहीं करता है कि मैं कौ-

न हूं यह संसारदुःख कैसे भया है और शांत कैसे होवेगा ऐसे विचार विना मूढ कैसे रहा है ॥ ४६ ॥ यह बंध कैसे है और मोक्ष कैसे होता है ऐसे प्रश्नों को करता तू तत्त्ववेत्ता पुरुषों के चरणों की सेवा करता क्यों नहीं शोभा को लेता है ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! जिस युक्ति करके मुक्ति होती है सो युक्ति समदृष्टिवाले संतजनों की सेवा करके और प्रश्न करने करके प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥

राजा शिखिध्वज आनंद के आसूं छोडके कहता हैं.

हे मुनिपुत्र ! आज महा आनंद भया है तैं ने मेरे को चिरकाल से बोधन किया है ऐसी ही मेरे को अपने घर में रानी चूडाला ने कहा है परंतु मैं ने स्त्री जान कर के तिस का कहा नहीं माना मैं मूर्खता से तिस को भी त्याग कर के चला आया हूं ॥ ४९ ॥ हे मुनिपुत्र ! तू मेरा गुरु है, तू मेरा पिता है, तू मेरा मित्र है, हे सुंदरसुखवाले मैं तेरा शिष्य हूं तेरे चरणों को नमस्कार करता हूं कृपा करो जो कुछ उत्तम जानते जिस के जानने में फिर शोचना नहीं बने जिस करके मैं आनंद को प्राप्त होऊं तिस ब्रह्म का उपदेश मेरे को करो ॥ ५० ॥ हे मुनिपुत्र ! घटादिकों के ज्ञान अनेक हैं आपस में भिन्न हैं जो ज्ञान में परम ज्ञान है और संसार से तारनेवाला है सो कौनसा ज्ञान है तिस को कहो ॥ ५१ ॥

चूडाला का वचन—हे राजन् ! जो तैं ने मेरा वच मानना होवे तो मैं कहूं. जैसा ज्ञान मेरे को है तैसा मैं कहती हूं. और जैसे वृक्ष के ऊपर काक बोले हैं वृक्ष को काकभाषा का कोई ज्ञान नहीं है तैसे मेरा कहना वृथा नहीं होवे तो मैं कहूं ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! आप ने प्रश्न किया और कहनेवाले ने उत्तर कहा, श्रवण करनेवाले वचन को

नहीं श्रवण करे तो उस कहनेवाले की उत्तम बानियां निष्फल होती हैं जैसे अंधेरे में नेत्रों की दृष्टि निष्फल होती है॥ ५३॥

शिखिध्वज का वचन—हे ब्रह्मन् ! जो तू कहेगा सो मैं वेद की विधि वाक्य के समान विचार बिना ही तुरंत ग्रहण करूंगा यह मेरा वचन सत्य है॥ ५४॥

चूडाला का वचन—हे राजन् ! जैसे बालक पिता के वचन को निमित्त कारण को विचारने बिना ही ग्रहण करता है तैसे तू भी मेरे वचन को ग्रहण कर॥ ५५॥ श्रवण करने उपरांत बुद्धि से शुभ जात करके भावना कर जैसे संगीत के श्रवण को त्याग करके हितकारी मित्र के वचन को श्रवण करते हैं तैसे और प्रसंग वार्त्ता श्रवण को त्याग करके सुन॥ ५६॥ हे राजन् ! मैं तेरे प्रति कथा के क्रम करके वचन को कहता हूं कैसा है मेरा चरित्र जैसे मैं ने इस करके बोध पाया है और उदय होती जो बुद्धि है तिस को विचार करके चिरकाल के दृढ बोध को करनेवाला है और संसारसमुद्र से तुरत तारनेवाला है महा बोधवाली बुद्धि को आनंद करनेवाला है॥ ५७॥ हे राजन् ! कोई एक पुरुष द्रव्य उपार्जन में महाचतुर था और आत्मज्ञान से रहित था तिस पुरुष को चिंतामणि सिद्ध करने के वास्ते प्रवृत्त भये संते किसी सिद्ध ने चिंतामणि देकर कहा भाई यह चिंतामणि प्राणांत कष्ट करके महायत्न करके सिद्ध होनेवाली है सो पुरुष इस को ले करके विश्वास नहीं करता भया क्या जानिये सितावी मणि सिद्ध होवेगी या नहीं ऐसे विचारने से वह मणि तिस के हाथ से उड गई फिर तिस वास्ते महा यत्न करणे लगा तब लोकों ने हँस करके काच की मणि दई कहा यह चिंतामणि है सो तिस को ले करके अपने घर से संपूर्ण द्रव्यादिक लुटाइ देता भया और झूठी मणि पा करके अपने द्रव्य के नाश को प्राप्त भया तब तिस को महा आपदा प्राप्त भई॥ ५८॥

हे राजन् ! जौनसी आपदा अपनी मूर्खता से होती है तिस के तुल्य जरामरणादिक दुःख नहीं होते हैं तिससे संपूर्ण आपदा की शिरोमणि अपनी मूर्खता सब के शिर पर चढी है जैसे संपूर्ण मनुष्यों के शिर पर केशों का भार सदा ही चढा रहता है ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! यह एक और वृत्तांत मेरा कहा सुन कैसा है महा रमणीक है बुद्धि को उत्तम बोध करनेवाला है और मैं ने अपने वृत्तांत के समान अनुभव किया है ॥ ७६० ॥ एक विंध्याचल की झाडी में महागजराज था तिस के पकडने के वास्ते एक महावत यत्न करता भया तालवृक्ष के ऊपर चढ करके संगलीयों के जाल को पसारत भया हाथी ने संगलियां तोड दीनी वज्र के समान दातों करके तालवृक्ष भी तोड दिया फिर महावत को भी मारने लगा फिर सो गजराज दया करके महावत को अपने शिर पर चढा करके जहां महावत की इच्छा ले जाने की थी तहां गया तिस महावत ने बडे ठोए में गेर करके महादुःख दिये, सो हाथी अपनी मूढता करके आप ही महादुःख को भोगता भया ॥ ६१ ॥ तिस से हे राजन् ! जो संपूर्ण शास्त्रार्थ में कुशल पुरुष था, धन के उपार्जन के करता था सो तू है. और चिंतामणि क्या है जो तैं ने सर्वत्याग किया है सो, कैसा है संपूर्ण दुःखों का अंत करनेवाला है अब तू शुद्ध बुद्धिवाला भया है ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष शुद्ध सर्व त्याग करके सर्व सार मोक्ष को सिद्ध नहीं करता है तिस को सर्व त्याग करके और चिंतामणि करके क्या प्राप्त होवेगा ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! तैं ने पुत्र, स्त्री, धन, बांधव युक्त राज्य को त्यागा है, तेरे को सर्वत्याग भया है तिस में केवल अहंकार शेष रहा है. अब तू तिस अहंमति को भी त्याग दे ॥ ६४ ॥ जो कोई सुख करके सिद्ध होनेवाले और प्रमाण से रहित ऐसे अखंड आत्मानंद को त्याग कर दुःख करके साधने योग्य तु-

च्छ सुख को साधने चाहता है सो आत्मघाती है और महादुष्ट कहा है ॥ ६५ ॥ हे राजन्! तू महादुःखों करके भरे हुए ऐसे राज्यबंधन से मुक्त भया है, अब अपनी अहंमति करके वनवासरूपी दृढ बंधन करके बद्ध भया है ॥ ६६ ॥ हे राजन्! अब तेरे को शीतवातादि सहने की दूनी चिंता भई है तिस से जो ज्ञानरहित पुरुष हैं तिन्हों को संसारदुःखों के बंधन से भी वनवास महादुःख को देनेवाला है ॥ ॥ ६७ ॥ हे राजन्! तू वनवास करके अपने को ऐसा जानता है कि मेरे को चिंतामणि प्राप्त भया है मेरे जानने में तेरे को एक स्फटिक का खंड भी नहीं प्राप्त भया है ॥ ६८ ॥ हे राजन्! जो विंध्याचल की झाडी में हाथी है सो संसार में तू है, तिस के दो दांत हैं सो तो ज्ञान-वैराग्य है जो हाथी को पकडने चाहता महावत है सो तो अज्ञान है, जो महावत ने तिस हाथी के ऊपर आरोहण किया है सो अज्ञान ने तेरे को आक्रांत कर लिया है सो बडे टोये में गेर करके हाथी को पीडा दी है सो ही अज्ञान करके संसारदुःख तेरे को भये हैं सो हाथी महाबलवान है और निर्बल महावत ने खेंच करके हाथी को दुःख से भी दुःख की दशा को प्राप्त किया है सो तेरे को मूर्खत्व ने महादुःख में प्राप्त किया है जो महावत ने हाथी को वज्र बराबर दृढ संखलियों करके बांधा है सो तेरे को ही अज्ञान ने आशापाश करके बांधा है ॥ ६९ ॥ हे राजन्! आशा जो है सो लोहे की संखली से भी बडी दृढ है तिस से लोहे की संखली किसी काल करके टूट जावे आशारूपी संखली तृष्णा करके दृढ बांधती है ॥ ७७० ॥ हे राजन्! जो हाथी संखली तोड देता भया सो तैं ने भोगों का खानरूप निष्कंटक राज्य बंधन को त्यागा है जो सुख करके हाथी ने संखलियां तोडी हैं सो तैं ने भोगों की आशा का त्याग किया है जो हाथी ने महावत को चरण से पकड कर-

के पृथिवी में गिराया है सो तैं ने राज्य त्याग करके अज्ञान दूर किया है जैसे हाथी ने तालवृक्ष को जोर करके कंपायमान किया है तैसे तैं ने भोगाशा का त्याग करके अज्ञान को शिथिल किया है ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! जब विवेकी पुरुष भोगों का त्याग करके स्थित होता है तब अज्ञान कंपायमान होता है जैसे वृक्ष के छेदने में तिस वृक्ष का पिशाच कंपायमान होता है ॥७२॥ जब तू वन को आया तब तैं ने अज्ञान को जीत लिया है फिर वनवास के अभिमान करके उदय होने लगा है तिस को मन से अहंकार को त्यागरूपी खड्ग करके छेदन कर ॥ ७३ ॥ जब से तू वनवास की साधना में आसक्त भया है तब से टायेरूपी मोह में गिरा है ॥७४॥ हे राजन्! सो तेरी रानी चूडाला कैसी है राजनीति को जाननेवाली और परमतत्त्व को जाननेवाली है उस ने जो ज्ञान तेरे को कहा था सो तैं ने क्यौं अंगीकृत नहीं किया ॥ ॥ ७५ ॥ सो चूडाला तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ है सो जो कुछ करती है और जो कुछ कहती है सो सत्य है आदर करने योग्य है ॥ ७६ ॥ जो तैं ने तिस का वचन नहीं किया तो तेरा सर्व त्याग करना अच्छी तरह नहीं भया सब कुछ तेरा किया झूंठ है ॥ ७७ ॥

राजा का वचन—मैं ने राज्य त्यागा है, घर त्यागा है, और देश त्यागा है, स्त्रियां त्यागी हैं, भोग त्यागे हैं मेरा सर्वत्याग कैसे नहीं बना है ॥ ७८ ॥

चूडाला का वचन—हे राजन् ! धन, घर, राज्य, पृथिवी, राजछत्र और बांधव यह तेरे साथ नहीं है तिस से सो तेरे नहीं है जो कुछ तेरा है सो तैं ने त्यागा है सर्व त्याग तेरे को कहां से भया है ॥ ७९ ॥ हे राजन्! जो त्यागना है सो तैं ने त्यागा नहीं है तिस को त्यागा तो शेष तू अकेला रहेगा तो शोकरहित होवेगा ॥ ७८० ॥

राजा का वचन—राज्य तो मेरा नहीं क्यौं सो मेरे को वन में नहीं है अब वन में पर्वत वृक्षादिक मेरे पास हैं तिन्हों को भी मैं त्यागता हूं ॥ ८१ ॥

चूडाला का वचन—पर्वत की छाया, वन, कंदरा, वृक्ष, और स्थान यह तेरे नहीं है क्यों यह तेरे से आगे बने हैं तिस से तेरे साथ यह नहीं हैं तैं ने सर्व त्याग कहां से किया है ॥ ८२ ॥

राजा का वचन—जो वन पर्वतादिक मेरे नहीं है यह आश्रम ही मेरा सब कुछ है और कैसा है बावडी स्थान कुटिया संयुक्त है इस को भी मैं त्याग करता हूं ॥ ८३ ॥

रानी का वचन—हे राजन्! वृक्ष बावडी स्थान कुटियादिक भी तेरे साथ नहीं है तिस से यह तेरे नहीं है सर्वत्याग तैं ने कैसे किया है ॥ ८४ ॥

राजा का वचन—जो कुटिया भी मेरी नहीं तो कमंडलु और पूजा के बर्त्तन और कंथा भूर्जवस्त्र यह मेरे हैं इन्हों को भी मैं त्याग देता हूं ॥ ८५ ॥

वसिष्ठजी का वचन—हे रामजी! शिखिध्वज ऐसा कह करके जो कुछ कमंडलु कंथादिक वनवास की सामग्री थी तिस को अग्नि में जला देता भया ॥ ८६ ॥

राजा का वचन—अब मैं वनवास की वासना को त्याग करके सर्व त्यागी भया हूं. हे देवपुत्र! अब मेरे को आनंद भया है तैं ने यह चिरकाल से बोध कराया है ॥ ८७ ॥ जैसे जैसे यह बंधन के पदार्थ घटते जाते हैं तैसे तैसे मेरा मन परम आनंद को प्राप्त होता है अब शांतमन भया हूं निर्वाण को प्राप्त भया हूं सब बंध मेरे यक्ष को प्राप्त भये हैं अब मैं ने सर्वत्याग किया है ॥ ८८ ॥

कुंभ नामा मुनिपुत्र का रूप करके चूडाला कहती है.

हे राजन् शिखिध्वज ! तू कहता है मैं ने सर्व त्याग किया है ऐसे मत कहो तैंने कुछ नहीं त्यागा है जो त्यागना है सो नहीं त्यागा है. सर्व त्याग के आनंद के स्वरूप को मत दिखावे ॥ ८९ ॥

राजा कहता है—हे मुनिपुत्र ! यह देह इंद्रियरूपी सर्वसमूह का निवास है और रक्तमांसअस्थियों का स्वरूप बना है सर्व त्याग के यह शेष रहा है तिस से उठ कर निःशंक हो करके बडे गंभीर ठोये में गेर करके सर्व त्यागी होता हूं ॥ ७९० ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! राजा ऐसा कह उठ करके बडे गर्त में पडने वास्ते खडा भया वेग से जब पर्वत से गिरने लगा९१

तब कुंभक वचन कहता भया—हे राजन् ! देह ने तेरा अपराध नहीं किया है इस को अपराध विना क्यों गेरता है तू अज्ञानी है जैसे बडा बैल निरपराध बच्चे को मारता है देहत्याग से सर्वत्याग नहीं बनता है ॥ ९२ ॥ जिस ने यह देह क्षोभ को प्राप्त कर दिया जैसे मतवारे हाथी ने वृक्ष कंपित कर दिया है तिस पापी मन को जो तू त्यागेगा तो महा त्यागी बनेगा तिस के त्यागने में देहादिकों का त्याग आप ही हो जावेगा तिस को नहीं त्यागने से देह फिर नष्ट और नये उत्पन्न होवे गे ॥ ९३ ॥

राजा का प्रश्न—हे कुंभक ! यह किस करके चलायमान है और जन्म कर्मों का कौन बीज है ? तिस को तुम कहो ॥ ९४ ॥ जो सब दुःखों का मूल है जो सर्व प्रकार करके सर्वबंधरूप बना है जिस को सर्व संसार के कारणरूप भये संते सर्व त्याग नहीं बनता है सो ही सर्वस्व है तिस के त्याग में सर्व त्याग करा जाता है तिस को मेरे प्रति कहो॥९५॥ सर्व क्या है ? सर्वगत क्या है सर्व सर्वदा प्रकार

करके त्यागने योग्य क्या है? सो सर्व करके क्या कह्या है? हे तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ! तुम मेरे प्रति तिस को कहो ॥ ९६ ॥

कुंभक कहता है—हे राजन्! सो सर्वगतरूप है जीव प्राणादि नाम करके प्रसिद्ध है सो न जड है और न अजड है सो चित्तस्वरूप करके कहा है ॥ ९७ ॥ हे राजन्! सब का बीज मन है जैसे वृक्ष का वृक्ष ही बीज होता है सब के बीज मन को त्यागने में सर्वत्याग होता है ॥ ९८ ॥ हे राजन्! चित्त के त्यागने में एक वार संपूर्ण द्वैत का त्याग होता है तो बाकी शांतरूप एक निर्मल चैतन्य रहता है ॥ ॥ ९९ ॥ हे राजन्! सर्व त्याग करना परमानंद है तिस विना संपूर्ण दारुण दुःख है ऐसा वचन अंगीकार करके जो चाहे सो कर॥८००॥ हे महाराज! सर्व त्याग संपूर्ण संपदा का आश्रय है यही लोक में प्रकट है जो पुरुष कुछ नहीं मांगे है तिस को लोक सर्वस्व देते हैं ॥ १ ॥ हे महाराज! चित्त का स्वरूप वासना को ही जानो चित्त शब्द वासना का नाम भेद कहा है तिस का त्यागना अत्यंत सुखाला है नेत्र के मीचने से भी सुखाला है राज्य से भी अधिक आनंद करता है पुष्प से भी सुंदर है ॥ २ ॥ हे राजन्! मूर्ख को तो मन का त्याग महा असाध्य है जैसे निर्धन पुरुष को चक्रवर्ती राज्य असाध्य है और तृण को सुमेरु बनना असाध्य है ॥ ३ ॥ हे राजन्! जो पुरुष मन को कहीं भी आसक्त नहीं करता है, अनेक प्रकार के कुतर्क के वाद को शांत करके स्थित रहा है सो पुरुष देह करके युक्त है तो भी तिस की चित्तरूपी लता छिन्न हो जाती है ॥ ४ ॥ हे राजन्! मैं कौन हूं मेरा क्या स्वरूप है इस प्रकार करके अपने स्वरूप का जो विचार करने में चित्तरूपी दुष्ट वृक्ष के दग्ध करने को अग्निरूप है ॥ ५ ॥

राजा का वचन—हे कुंभक! चित्तरूपी वृक्ष का अहंभाव मूल मैंने जाना है तिस को मैं त्याग करना नहीं जानता हूं जैसे जैसे

त्याग करता हूं तैसे तैसे फिर आ प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

कुंभ का वचन—हे राजन्! कारण से कार्य होता है और अहंभाव से संसार का अंकुर होता है इस कारण को ढूंढ़ करके मेरे प्रति कहो ॥ ७ ॥

राजा का वचन—हे मुने! अहंभाव महादोष है तिस के कारण को मैं जानता हूं कि इस का संवेदनही कारण है परंतु जैसे सो अहंभाव शांत होवे तिस उपाय को मेरे प्रति कहो ॥ ८ ॥

कुंभ का वचन—हे राजन्! तुम कारण को जानते हो तो अहंभाव का स्थान कहो तब मैं कारण और नहीं कारण को सब कहता हूं ॥ ९ ॥

राजा का वचन—चेतने योग्य और चेतन करने का स्वरूप जानने योग्य और जानने का स्वरूप तिन्हों का कारण पदार्थसत्ता है तिस में देहादिक का कारण है देहादिकों करके अहंभाव का संवेदन है ॥ ८१० ॥

कुंभ का वचन—हे राजन्! अहंभाव के संवेदन का कारण देहादिक पदार्थों की सत्ता है तो देहादिक पदर्थों की वस्तु सत्ता को असत्य करके फिर तेरे अहंभाव का संवेदन किस में स्थित है॥ ११॥

राजा का वचन—हे मुने! जिस का स्वरूप और क्रियादि कल्पना प्रत्यक्ष दृष्ट होती है सो देहादिक असत्यरूप कैसे है जैसे सूर्यादिकों का प्रकाश प्रत्यक्ष है तिस को अंधकार कहना नहीं बनता है. जिस के हस्त पादादिक अंग प्रत्यक्ष हैं क्रिया के फल के विलासवाले हैं सदा जिस का अनुभव होता है सो देह सत्यरूप कैसे नहीं है?॥ १२॥

कुंभ का वचन—हे राजन्! जिस कार्य का कारण नहीं है सो कार्य यहां कोई नहीं है तिस में अहंभाव का संवेदन भ्रममात्र है १३

राजा का वचन—हे मुनीश्वर! यह शरीर हस्त पादादि संयुक्त है नित्य ही प्रत्यक्ष लक्ष होता है, पिता कारण है तिस देह को तुम कारणरहित कैसे कहते हो? ॥ १४ ॥

कुंभ का वचन—हे राजन्! कारण के अभाव से कार्य नहीं रहता है तो तुह्मारे देह का कारण तुह्मारा पिता नहीं रहा तो शरीर तुह्मारा असत्य क्यों नहीं भया यह तुम कहो ॥ १५ ॥

राजा का वचन—हे मुनीश्वर! पिता और पितामह और पुत्रादिक तिन्हों का कारण सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा सर्व शरीरों का कारण क्यों नहीं है? ॥ १६ ॥

कुंभ का वचन—हे राजन्! जो तुम ने सर्व शरीरों का कारण ब्रह्मा कहा है सो भी अब प्रत्यक्ष नहीं है, तिस के नहीं होने से शरीर का अभाव क्यों नहीं भया सो तुम कहो ॥१७॥ हे राजन्! कारण जो होता है सो कार्य का बीज होता है सो कार्य के साथ रहता है, जैसे घटादिकों के मृत्तिकादिक कारण हैं सो तिन के साथ ही हैं, जो शरीर का कारण है सो अनित्य है तिस के कार्य शरीरादिक अनित्य हैं तिस ब्रह्मा का भी कथनमात्र है. शरीर के समान अनित्य शरीर का कारण और है सो कौन है? अविद्या ज्ञान करके निवृत्त होती है तिस के निवृत्त होने से देहादि बंध सब निवृत्त होते हैं ॥१८॥

राजा का वचन—हे भगवन्! मैं अब बोध को प्राप्त भया हूं तैं ने युक्ति करके युक्त उत्तम वचन कहा है कारण के अभाव से कर्त्ता भी नहीं है यह सब ब्रह्म ही है ॥ १९ ॥ कर्त्ता के अभाव से जगत् नहीं है सो जगत् किस करके भासता है और पदार्थों को देखनेवाला कौन है इस कारण से चित्तादिक भी इस के बीज नहीं है और अहंतादिक भी कोई नहीं है ॥ ८२० ॥ ऐसे होने से मैं शुद्ध

भया हूं और बोध को प्राप्त भया हूं और शिवरूप भया हूं तिस से मेरे आत्मा को मेरी नमस्कार है मेरे से परे और कुछ भी नहीं है ॥ ॥ २१ ॥ इस प्रकार करके वस्तु पदार्थ जानने से यह सब असत्य ही भासता है आदि अंतमें मैं हूं आकाश के समान शांत भया हूं॥२२॥ जगत् के पदार्थों की विभाग दृष्टि और देश, काल, दिशा और संपूर्ण कला के समूह यह सब ही चिरकाल करके शांत हो जाते हैं. एक शांतरूप ब्रह्म ही अविनाशी है ॥ २३ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी! सो राजा शिखिध्वज इस प्रकार करके विश्रांति को प्राप्त होता भया क्षणमात्र शांतमन होता भया जैसे पवन से रहित दीपक अचल प्रकाशमान होता है ॥ २४॥

कुंभ का वचन–हे राजन्! अब तू अज्ञानरूपी निद्रा से जाग्रत भया है. शांत शिवरूप स्थिर भया है. तेरे को जगत् के अस्त होने से और नहीं अस्त होने से कोई कार्य नहीं है ॥ २५॥ अब तेरे को आत्मस्वरूप का प्रकाश भया है और अनिष्टपदार्थ सबही नष्ट भये हैं चित्त की संकल्परचना से मुक्त भया है. अब तू जीवन्मुक्त भया है॥ २६ ॥

राजा का वचन–हे मुनीश्वर! मेरा मोह नष्ट भया है और आत्मस्वरूप की स्मृति भई है मैं तेरे प्रसाद से संदेह रहित भया हूं२७

कुंभ का वचन–हे राजन्! यहां जगत् ही नहीं है तहां अहं और त्वं ऐसा भावनावाला संसार कहां है कहांसे उदय भया है और कैसा है और किस प्रकार होता है?॥२८॥यह संसार नाम करके सब ही स्थितिरहित है केवल चितवना मात्र रूप है जैसे आकाश नीलवर्णवाला भ्रम करके भासता है ॥ २९ ॥ मैं राजा हूं ऐसा जो संकल्प है सो अखंड बंधन वास्ते है मैं कोई नहीं ऐसा संकल्प निर्मल मोक्ष वास्ते है

॥ ८३० ॥ यह विचार केवल नाम मात्र करके कह्या है और केवल असत्यरूप है सो सत्यरूप कैसे होवे तिस से यह भ्रम मात्र है॥३१॥ जो पुरुष दोनों हाथ उठा करके आप ही कहे मैं शूद्र हूं सो ब्राह्मण कैसे होवे है तिस से अपनी संकल्प की कल्पना करके अपने को बंध माने है सो संकल्प त्यागने से निवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ हे राजन्! इच्छा और नहीं इच्छा यह दोनों बंध मोक्ष की शक्ति हैं इन करके बंध मोक्ष होते हैं जैसे चंद्रमा अपनी किरणों के प्रकाश विना दृष्ट नहीं होता है ॥ ३३ ॥ तिस से हे मित्र! तेरा कुछ नष्ट नहीं होता है न कुछ बढता है तू आकाश समान निर्मलरूप है और केवल अनंतरूप है ३४

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सो शिखिध्वज राजा ऐसा कुंभ के वचन को सत्य जान करके अपने में आत्मतत्त्व की भावना करता भया आप ही तिस में क्षणमात्र गमन करता भया ॥ ३५ ॥ क्षणमात्र निश्चलमन होय करके नेत्रों को मूंद लेता भया वानी को शांत करके मौन धारण करता भया जैसे शिला में प्रत्यक्ष लिखी भई अंग प्रत्यंग वाली पुतली निश्चल होती है तैसे निश्चल होता भया ॥ ३६ ॥ हे रामजी! तिस से उपरांत क्षणमात्र मे ध्यान से जाग्रत भये राजा को कुंभ कहता भया हे राजन्! मैं तेरे प्रश्न करता हूं तू इस शुद्ध और विशाल और प्रकाशमान ऐसे आत्मपद मैं विश्रांत भया है कि नहीं? ॥ ३७ ॥

राजा कहता है—हे भगवन्! तेरे प्रसाद से मैंने महती ऐश्वर्य भूमिका रूपी महापदवी देखी है कैसी है सब के ऊपर विराज मान है ॥ ३८ ॥ हे भगवन्! जिन्हों ने जानने योग्य तत्त्ववस्तु जानी है ऐसे महात्मा संतजन तिन्हों का सत्संग महा आनंद को करनेवाला है अमृतरूप है और प्रमाणरहित है और मोक्ष फल को देनेवाला है सो कहां से मिलता है महा दुर्लभ है सो अब मेरे को भया।

है ॥ ३९ ॥ जो मैं ने जन्म से निश्चय करके नाम करके भी नहीं पाया सो अमृत आज तेरे समागम से आपही पाया है ॥ ८४० ॥ अब मैं पूछता हूं यह ज्ञानरूपी अमृत मैंने जैसा अब पाया है तैसा पहिले क्यों नहीं पाया जैसा आत्मस्वरूप का आनंद अब स्वाद में आया तैसा पहिले क्यों नहीं आस्वादन में आया ॥ ४१ ॥

कुंभक कहता है—हे राजन्! जब मन उपशम को प्राप्त होवे और भोगों की इच्छा को त्यागे संपूर्ण इंद्रियों का वासनारूपी मल नष्ट हो जावे तब सद्गुरों के उपदेश की उक्तियां चित्त में स्थित होती हैं जैसे मलरहित निर्मल श्वेतवस्त्र में केसर के जल के रंगवाली बूंद शोभे हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! आज तू नष्टदोष भया है आज ही ज्ञान की कथा का श्रोता भया है आज ही उपदेश के योग्य भया है आज ही मैं ने बोध को प्राप्त किया है॥४३॥ हे राजन्! आज तेरे शुभ और अशुभ कर्मों का संपूर्ण क्षय भया है तिस से ही सत्संग के संग करके ज्ञान के उपदेश की सिद्धि तेरे को भई है ॥ ४४ ॥ हे राजन्! मुझे आज पर्वत में जा करके इंद्र की सभा में आये हुए पिताजी नारदजी को देखना है मैं तहां जाता हूं इतना कह करके कुंभ चला गया फिर तीन दिन उपरांत आया और सिंहनाद करके समाधि से उठे हुए राजा के पास अंदर प्रवेश करके राजा को उठाय करके राजा को साथ ले करके और वन को दोनों चले गये ॥ ४५ ॥ सो राजा और कुंभ दोनों मित्र वन में विचरण करते भये किसी काल में विभूति लगा करके दिगंबर रहते भये कब ही चंदन का लेपन करते हैं कब ही नग्न हो रहते हैं कब ही दिव्यवस्त्रों को धारे हैं कब ही अनेक रंग के वस्त्र धारे हैं कब ही भूर्जपत्र धारते हैं कब ही पुष्पमाला को धारते हैं ॥ ४६ ॥

इस से उपरांत कुंभ राजा को कहता भया.

हे राजन्! मेरे को दुर्वासा मुनि के शाप से स्त्रीभाव होना है ऐसा कह करके स्त्रीरूप धारण करके राजा के साथ विवाह करके फिर किसी समय में राजा को इंद्ररूप धारण कराके कहा हे राजन्! स्वर्गको चल ॥ ४७ ॥ तब राजा कहता भया हे देवराज! मैं स्वर्ग के संपूर्ण समाचार को जानता हूं मेरे को सर्वत्र स्वर्ग है यह स्वर्गादिक भोग अनित्य हैं मैं आत्मविचार के आनंद करके सर्वत्र स्वर्ग से भी अधिक आनंद को भोगता हूं मेरा मन भोगवांछा से रहित भया है तिस से मैं सर्वत्र आनंद युक्त रहता हूं ॥ ४८ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! इस से उपरांत चूडाला रानी सर्व शृंगारयुक्त अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखावती भई वह कैसा रूप दिखावती भई अपनी माया के संकल्प से सुंदर पुरुष को रचती भई उस पुरुष ने व्यभिचार करके भोगी जब राजा ने देखी तो भयभीत हो करके राजा को कहती भई ॥ ४९ ॥ हे राजन्! तैं ने वन में आने से मेरा त्याग किया है तिस से मैं यौवन में कामरूपी अग्नि को नहीं सह सकी तिस से मैं ने यह व्यभिचार किया है ॥५० हे राजन्! मैं अबला हूं धैर्य विचार से रहित हूं स्त्री हूं स्त्रियां भर्त्ता का वियोग चिरकाल सह नहीं सकती हैं बालक की समान मूढबुद्धि हूं तिस से मैं ने व्यभिचाररूपी अपराध किया है इस को तू क्षमा करने योग्य है तू मेरा नाथ है मैं तेरी स्त्री हूं महात्मा लोगों में महत्त्व का सार क्षमा होती है ॥ ५१ ॥

राजा का वचन—हे बाले! मेरे में क्रोध नहीं है जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होता है परंतु व्यभिचार करनेवाली स्त्री का अंगीकार करने में साधु लोग निंदा करते हैं तिस से तेरे को मैं नहीं चाहता

हूं ॥८२॥ पन मित्रता करके वनों में पहिले की समान रागद्वेषरहित होइ करके इकट्ठे मिलके आनंद से रमण करेंगे ॥८३॥ ऐसा विचार करते हुए तब चूडाला मन में विचार करती भई अहो आज बहुत आनंद भया है अब यह राजा समदृष्टि को प्राप्त भया है और ज्ञानवान् भया है रागद्वेष से रहित भया है और क्रोध से भी रहित भया है और जीवन्मुक्त भया है ॥ ८४ ॥ अब इस राजा को राज्यभोग भी अपने वश में नहीं करेंगे महासिद्धि भी वश नहीं करेगी सुख और दुःख, आपदा और संपदा भी अपने वश में नहीं करेगी॥८५॥

इस से उपरांत चूडाला अपने शुद्धरूप को दिखा करके कहती भई.

हे राजन्! अपने पहिले वृत्तांत को ध्यान करके देख, तब राजा ध्यान करके अपने पहिले वृत्तांत को देखता भया ॥८६॥ राजा चूडाला के प्रसंग करके तत्त्वज्ञ भया तिस को तत्त्वज्ञानसंयुक्त शुद्धस्वरूप जान करके आनंद करके आलिंगन करता भया ॥ ८७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सो राजा आनंद के अश्रुजल छोड करके स्नेह को प्रकट करता हुआ और समागम की इच्छा को भी प्रकट करता हुआ चूडाला के साथ चिरकाल तक आलिंगन करता भया जैसे नकुल नकुली के साथ आलिंगन करता है८८ हे रामजी! तिन राजारानी के आलिंगन में हर्ष करके जो आनंद का भाव होता भया सो वासुकी की १००० हजार जिह्वा करके भी कहा नहीं जाता है ॥ ८९ ॥

राजा कहता है—हे कल्याणि! अरुंधती, इंद्राणी, पार्वती, लक्ष्मी, और सरस्वती! यह सब ही तेरे शील के, गुण संपदा के, सुंदरता के तुल्य यत्न करके भी नहीं होती हैं ॥ ८६० ॥ जैसे भर्त्ता

को उत्तम कुल की स्त्रियां प्रेम करके तारने को समर्थ होती हैं तैसे शास्त्रों के अर्थ और गुरुसेवा और मंत्र देवतादिक तारने को नहीं समर्थ होते हैं ॥ ६१ ॥ हे कल्याणि! तैं ने जो मेरे ऊपर उपकार किया है तिस का तेरे प्रति उपकार के उत्तररूपी उपकार करने को मैं कैसे समर्थ होऊं तू तो इच्छा से रहित और संसारसमुद्र को पार तर गई है ॥ ६२ ॥

चूडाला कहती है—हे महाराज! तुम फलरहित शुष्क कर्मजाल में व्याकुल थे सो तुम को देख करके तुम्हारे वास्ते मैं वारंवार दुःखी होती भई ॥ ६३ ॥ हे महाराज! मैं तुम को बोध करने के स्वरूप करके अपने को आत्मज्ञान दृढ करने करके अपना अर्थ सिद्ध किया है तिस से तुम क्यों इतनी मेरी स्तुति और गौरव को करतेहो ॥६४॥ हे प्राणनाथ! हे महाबुद्धे! इस प्रकार मैं ने तुम्हारा आत्मज्ञान दृढ किया है अब कहो तुम्हें को क्या रुचता है ॥ ६५ ॥

राजा कहता है—हे प्रिये! अब मैं विधि को नहीं जानता हूं और निषेध को भी नहीं जानता हूं तू जो कहेगी तिस को मैं जान लेऊंगा ॥ ६६ ॥

चूडाला कहती है—हे राजन्! हम पृथिवी के आदि-अंत-मध्य में राजे हैं एक मोह को त्याग करके फिर राजा होवेंगे ॥ ६७ ॥ हे राजन्! तू तिस नगर में अपने आसन के ऊपर स्थित हो करके राज्य करेगा और संपूर्ण स्त्रियों में शिरोमणि मैं ही तेरी रानी होऊंगी ६८

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—सो राजा ऐसा चूडाला का वचन सुन के हँस करके मधुर वचन को कहता भया ॥ ६९ ॥

राजा कहता है—हे विशालनेत्रे! जो तेरे को भोगों की इच्छा है तो योगसिद्धि कर स्वर्ग के भोगों की संपदा हमारे अधीन नहीं है

क्या ? हम फिर राज्य को भोगने से स्वर्ग में क्यों निवास नहीं करेंगे ? ॥ ८७० ॥

चूडाला कहती है—हे राजन्! अब राज्यभोगों की इच्छा नहीं है और संपदा में भी वांछा नहीं है जो काल के स्वभाव करके आ जावे तिस करके ही मन की स्थिति करना चाहती हूं ॥ ७१ ॥

राजा कहता है—हे विशालनयने ! तैं ने समानबुद्धि करके योग्य वचन कहा है हम को अब राज्य करके क्या अर्थ है और घर त्यागने में भी क्या अर्थ है ? ॥ ७२ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! तिस से उपरांत राजा और रानी अपने संकल्प करके कल्पना करके सात समुद्रों के जल करके पूर्ण रत्नकलशों करके आपस में अभिषेक राज्यतिलक को धारण करके मतवारे महागज के ऊपर चढ करके वडी सेना साथ ले करके अपनी नगरी को प्राप्त हो करके सात दिन नगर में महाउत्सव करते भये ॥ ७३ ॥ तिस से उपरांत दश हजार वर्ष राज्य करके राजा शिखिध्वज चूडाला रानी के साथ देह धारणा से विरक्त होता भया ॥ ७४ ॥ सो राजा शिखिध्वज चूडाला रानी संयुक्त भय से और चिंता से रहित होता भया. अभिमान और रागद्वेष से रहित भया. अपने वर्णाश्रमधर्म को करता भया भोग भोगता भया परंतु आसक्तिसे रहित होता भया, इस प्रकार करके समदृष्टि हो करके मृत्यु को भी अपने वश करता भया. दश हजार वर्ष राज्य को करता भया ॥७५ ॥ हे रामजी! सो राजा शिखिध्वज इस प्रकार करके संपूर्ण राज्यों का चक्रवर्त्ती राजा हो करके चिरकालपर्यंत राज्य का पालन करके आत्मस्वरूप में मग्न भया. परमपद को प्राप्त होता भया तैसे हे रामजी! तू भी जो समय करके प्राप्त होवे तिस का-

र्य को करता हुआ शोकादिक से रहित हुआ आप ही सावधान हो करके भोग मोक्ष की संपदा को भोग ॥ ७६ ॥

॥ इति शिखिध्वजोपाख्यानम् ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! जैसे राजा शिखिध्वज बोध को प्राप्त होता भया तैसे बृहस्पति का पुत्र कच भी तत्त्वज्ञान करके आत्मस्वरूप के बोध को प्राप्त होता भया तिस क्रम करके तू भी बोध को प्राप्त हो ॥ ७७ ॥ हे रामजी! सो कच बाल्यावस्था जब गई तब ही विद्या पढके पदों के पदार्थ को जाननेवाला और संसार तरने में समर्थ भया बृहस्पति को वचन कहता भया ॥ ७८ ॥

कचका प्रश्न—हे भगवन्! हे पिताजी!! तुम संपूर्ण धर्मों को जाननेवाले हो इस से मेरे प्रति कहो कि यह संसार नामक पिंजरा से जीवरूपी पक्षी का कैसे निकलना बनता है ॥ ७९ ॥

बृहस्पतिजी का वचन—हे पुत्र! यह संसार समुद्र है इस में महामोह बडा,मकर है सो जीवों को संसार समुद्र में डुबा देता है तिस से जीवरूपी पक्षी सर्व त्याग कर उड करके सुख से रहै॥८०॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—सो कच अपने पिता के वचन को सुन करके सर्वस्व को त्याग करके एकांत वन में चला जाता भया॥ ॥८१॥ हे रामजी! तिस कच के वन को जाने से बृहस्पतिजी को पुत्र-शोक नहीं होता भया कारण महात्मा पुरुष संयोग में और वियोग में समानचित्त होते हैं. एक वर्ष के अनंतर बृहस्पति कच को देखने वास्ते वन में जाते भये तब कच ने पिता को प्रश्न किया ॥८२॥ हे पिताजी! सर्वत्याग किये भी मन मेरा विश्रांत नहीं भया तब बृहस्पति कहते भये यहां भी तू सर्वस्व को त्याग कर, तिस से उपरांत कंथा कमंडलू दंडादिक भी कच ने त्याग दिये तब तीन वर्ष उपरांत बृहस्पति फिर

कच के पास प्राप्त भये तो फिर कच ने पूंछा महाराज चित्त विश्रांत नहीं भया तो बृहस्पतिजी कहते भये ॥ ८३ ॥

बृहस्पति का वचन—हे पुत्र! चित्त ही सर्वस्व है तिस के त्यागने से विश्रांति को प्राप्त होवेगा चित्त के त्यागने को ही त्यागी पुरुष सर्वत्याग कहते हैं ॥ ८४ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! ऐसा कह करके बृहस्पति चले गये तब कच ने चित्त का स्वरूप नहीं जाना तिस के जानने वास्ते स्वर्ग में जा करके अपने पिताजी से पूंछा ॥ ८५ ॥

बृहस्पति कहते भये—हे पुत्र! यह चित्त अपने घर के समान स्वरूपवाला है चित्त को जाननेवाले लोक कहते हैं अंतःकरण के अनेक वासनाजाल का सूक्ष्म जो स्वभाव है तिस को चित्त कहते हैं ॥ ८६ ॥ इस का त्यागना कठिन है ऐसा प्रश्न किये ते पिता कहते भये हे पुत्र! पुष्प के तोडने से और नेत्र के निमीलने से अहंकार का त्यागना सुखाला है इस में खेद कुछ नहीं है ॥ ८७ ॥ इस चित्त का भाव अहंकार के बल करके अज्ञान से भया है तत्त्व-वस्तु जानने से नष्ट होता है. वस्तु चैतन्यमात्र जानने से अहंकार नहीं रहता है जैसे रज्जु ज्ञान से सर्प का भ्रम नहीं रहता है ॥ ८८ ॥ हे पुत्र! चैतन्यवस्तु एक ही है, आदि-अंत से रहित है, निर्मलता करके पूर्ण है, आकाश से भी असंग है, केवल सत्तामात्र है ॥ ८९ ॥ हे पुत्र! यह पुरुष है, यह मैं हूं, यह तू है, ऐसे झूंठी प्रतीति को त्याग कर यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसा है, यह हम हैं यह तुम ही ऐसा जो भेदवाला ज्ञान है सो तुच्छ है और तुच्छ स्वरूपवाला है, देश काल करके नष्ट होनेवाला है ॥ ॥ ९० ॥ जो देश-काल-वस्तु के भेद से रहित है और निर्मल है

और सदा प्रकाशमान है सर्व पदार्थों में एक रूप है सो चिन्मात्र रूप तू है ॥ ९१ ॥

श्रीवासिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! सो कच इस प्रकार का पिता से उत्तम उपदेश को पा करके सो बृहस्पति का पुत्र तिस उपदेश को धारण करके जीवन्मुक्त होता भया ॥ ९२ ॥ हे रामजी! जैसे कच ममता से रहित होता भया और अहंकार से रहित भया और संदेहग्रंथि से रहित भया और शांतबुद्धि होता भया तैसे तू भी निर्विकार हो करके स्थित हो ॥ ९३ ॥ हे रामजी! अहंकार को असत्य जान और आत्मविचार से सर्व भूतों में मित्रभाव को धारण कर अहंकार सहे के शृंग के समान असत्य है तिस के त्याग और ग्रहण कहां बनते हैं ॥ ९४ ॥ हे रामजी! द्वैत की भावना और अद्वैत की भावना तिन दोनों को त्याग करके जो इन्हों से शेष शुद्ध चैतन्य सत्ता मात्र रहे तिस में स्थित हो करके अखंड सुख में मग्न रह मायापुरुष के समान वृथा दुःखी मत होओ ॥ ९५ ॥ हे रामजी! जो तुम कहो गे कि सो माया पुरुष कौन है तो तुम सुनो एक पुरुष माया के यंत्र का बना है सो बालक की समान तुच्छबुद्धि भया और मूढ भया और केवल मूर्खतायुक्त भया ॥ ९६ ॥ सो एकांत में गया तहां शून्यस्थान में रहा तिस से दूसरा तहां और कोई नहीं था जो कुछ है सो आप ही है ॥ ९७ ॥ तिस को तहां आप वृद्धि को प्राप्त होने का संकल्प होता भया सो ऐसा चिंतन करता भया मैं आकाश का हूं और आकाशरूप हूं आकाश मेरा है और एकाग्र हो करके आकाश की रक्षा को करता हूं ऐसा चिंतन करता हुआ आकाश की रक्षा को एक मंदिर को करता भया तिस से ऐसी दृढबुद्धि को करता भया मैं ने आकाश की रक्षा करी है ॥ ९८ ॥ इस से उपरांत कि-

तने काल करके सो तिस का आकाशरूपी घर नष्ट होता भया तब सो मायापुरुष विलाप करता भया हे मेरे घरके आकाश तू कैसे नष्ट भया है. मैं ने तेरी रक्षा करी तू मेरे को त्याग करके क्षणमात्र में कहां गया है ऐसे सब प्रकारके विलाप करता भया ॥ ९९ ॥ फिर सो दुर्बुद्धि तिस की रक्षा के वास्ते कुहा करता भया कुहे का नाश भये से फिर विलाप करता भया. एक कुंड बनावता भया तिस के विनाश में विलाप करता भया. फिर माटी का कोहल बनावता भया तिस के विनाश में भी विलाप फिर करता भया. चार द्वार का कोट बनावता भया तिस के विनाश में भी विलाप करता भया. इस प्रकार करके आकाश की रक्षा के वास्ते अनेक उपाय करता भया. उपाय के विनाश में बहुत विलाप करता भया ॥ १०० ॥ हे रामजी ! सो माया का पुरुष कौन है वह अहंकार है सो आधार विना आकाश की समान शून्य में ही रहता है अनात्मा पदार्थों को आत्मा जान करके तिन्हों की रक्षा के वास्ते नाना प्रकार के देहों को सृष्ट करता है तिन्हों के नाश में व्याकुल हो करके शोक करता है ॥ १ ॥ हे रामजी ! जैसे माया का पुरुष अहंकार अज्ञानरूपी अनात्मपदार्थ की रक्षा करता हुआ तिस की रक्षा के उपायरूपी मंदिरादिक स्थानीय देहादिकों के नाश में क्लेश को प्राप्त भया है तैसे तू भी क्लेश को धारण मत कर ॥ २ ॥ हे रामजी ! जो आकाश से भी विशालरूप है और शुद्ध है और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और अखंड है और आनंदरूप है ऐसा आत्मा नष्ट कैसे होता है और ग्रहण कैसे होता है रक्षा करने में कैसे शक्य होता है ॥ ३ ॥ हे रामजी ! देह के क्षय होने करके केवल हृदयाकाश मात्र नष्ट होता है और प्राणी वृथा शोक करते हैं. कहते हैं कि मैं मरगया हूं, मेरा आत्मा नष्ट भया है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! जैसे घटादिकों के नाश भये संते आ-

काश अखंड रहता है तैसे देहादिकों के नाश भये संते आत्मा निर्लेप रहता है ॥ ५ ॥ आत्मा मृत नहीं होता है. जन्म नहीं लेता है और कदाचित् किसी प्रकार करके भी आत्मा हानि-वृद्धि को नहीं प्राप्त होता है यह केवल ब्रह्म ही जगत् के रूप करके भासता है ॥ ६ ॥ सो ब्रह्म सत्य है केवल सत्तामात्र है और शांतरूप है आदि-अंत-मध्य से रहित है. भावरूप अभावरूप से रहित है और अद्वैत मात्र रूप है ऐसे जान करके सुखी रहो ॥ ७ ॥ हे रामजी! यह अहंकार संपूर्ण आपदा की खान है और असत्य है और पराधीन है जलदी नाश होनेवाला है अविवेक का निधि है और महादुष्ट है और अज्ञानरूप है. इस को आत्म स्वरूप के बोध करके त्याग करके शेष रही जो आत्मसत्ता तिस में सावधान हो करके उत्तम पद को प्राप्त हो ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! तुम महा कर्त्ता हो और महा भोक्ता हो और महा त्यागी हो संपूर्ण मन की शंका का परित्याग करा अखंड धैर्य को धारण करो ॥९॥ हे रामजी! यह तीन व्रत पहिले समय में शिवजी ने अपने भृंगी गण को कहे हैं. इन व्रतों करके भृंगीगण भी चिंताज्वर से रहित होता भया॥१०॥शुभ और अशुभ कार्य में पापपुण्य की शंका करके जिस की बुद्धि लिप्त नहीं होती है सो महा कर्त्ता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष सर्वत्र स्नेहबंधन से रहित है कार्य करने में इच्छारहित वर्त्तमान है सो भी महाकर्त्ता कहा है वह कैसा है साक्षी की समान असंग है ॥१२॥ जो पुरुष कटु रस को सलूने को तीक्ष्णरस को शुद्ध को और नहीं शुद्ध को चाहे को अथवा नहीं चाहे को ऐसे अन्नपान को समान वृत्ति करके भोजन करता है सो महाभोक्ता कहा है ॥ १३ ॥ जो पुरुष आपदा को और संपदा को, मोह को और आनंद को श्रेष्ठ को अथवा अश्रेष्ठ को सम बुद्धि करके भोगता है सो महाभोक्ता है

॥१४॥ जो पुरुष! ऐसे निश्चयवाला है कि न मेरा देह न मेरा जन्म है. योग्य और अयोग्य कर्म भी मेरे को नहीं हैं ऐसे विचारवाले को महात्यागी कहते हैं ॥ १५ ॥ जिस ने धर्म और अधर्म मन का चाहिया संकल्प अंतःकरण से त्यागिया है सो महात्यागी कहा है॥१६॥ हे रामजी! जो पुरुष उत्तम विश्रांति को चाहता है और दुःखरूपी रत्नों की खान ऐसे जन्ममरणरूपी समुद्र को तरने चाहता है तिस को ऐसी मति तरने का उपाय है. कैसी मति है मैं कौन हूं और यह जगत् क्या है कैसे उदय भया है और भोगों करके मेरा क्या प्रयोजन ॥ १७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! इक्ष्वाकु राजा ने पिता मनु वैवस्वत को प्रश्न किया हे पिता! यह जगत् क्या है तो मनु कहता भया, यह जो कुछ जगत् दृष्ट होता है हे राजन्! सो सत्य कुछ भी नहीं है जैसे गंधर्वनगर असत्य है और जैसे मारवाड की रेती में जल की प्रतीति असत्य है ॥ १८ ॥ हे राजन्! यहां कुछ सत्य दृष्ट नहीं होता है तहां जो कुछ शेष सत्तामात्र जैसा प्रतीत होता है सो अविनाशी है सो सत्यरूप आत्मा है ॥ १९ ॥ हे राजन्! जैसे राहु दृष्ट नहीं होता है परंतु चंद्रमंडल में ग्रहण करके दृष्ट होता है तैसे असत्यरूप दृश्य करके सत्यरूप अदृष्ट आत्मा प्रतीत होता है ॥ ९२० ॥ हे राजन्! आत्मा केवल गुरु करके भी प्रतीत नहीं होता है केवल शास्त्रों करके भी प्रतीत नहीं होता है सो आत्मा केवल अपनी निर्मल बुद्धि करके प्रतीत होता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! जैसे मार्ग में मुसाफिर रागद्वेष से मुक्त भई बुद्धि करके देखा है तैसे ही यह इंद्रिय देहादिक रागद्वेष से रहित बुद्धि करके देखने योग्य है ॥ २२ ॥ हे पुत्र! इन्हों में आदर नहीं करना और सत्ता का निश्चय नहीं करना यह केवल पदार्थ भावनामात्र से देखे हुए केवल नाम

मात्र रहते हैं और सुखरूप हो जाते हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र! यह देहादिक केवल नाममात्र पदार्थ हैं सत्य नहीं हैं इन्हों की भावना को दूर से त्याग करके शीतल अंतःकरण हो करके केवल आत्मविचार में स्थित रहो ॥ २४ ॥ हे पुत्र! जैसे निर्मल भये जलाशयों में सर्वत्र शीतलता और निर्मलता है तैसे ही आत्मा सर्वत्र पदार्थों में सत्तामात्रता करके व्याप्त है ॥ २५ ॥ हे पुत्र! जैसे माता अपने कुचों के नीचे अपने कुच्छड में सुप्त भये बालक को विस्मरण करके मेरा पुत्र कहां गया है पुत्र के वास्ते रोदन करती है तैसे यह लोक सत्तामात्र सर्वस्व व्याप्त भये आत्मा के वास्ते लोक अज्ञान से भये मोह से भ्रांत भया दुःख को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ हे पुत्र! यह माया महाआश्चर्यरूप है सर्व जगत् को मोहित करनेवाली है जिस माया करके अपने अंगों में सर्वत्र व्याप्त भये आत्मा को नहीं जानता है॥ ॥२७॥ हे पुत्र! यह जगत् चैतन्यता का दर्पण है ऐसी जो भावना करता है सो पुरुष ब्रह्मकवच आच्छादित भया है ॥२८॥ हे पुत्र! जगत् के सर्वभावों की भावना त्यागने करके कर्म जालके वन को छेद कर के परम सूक्ष्मरूप आत्म भावना को धार करके शोकरहित स्थित रहो ॥ २९ ॥ हे पुत्र! शास्त्रों करके सत्संगो करके पहिले बुद्धि को विशाल कर जो पुरुष नया योग करने लगा है तिस की यह पहिली भूमिका है ॥ ९३० ॥ दूसरी तत्त्वविचारणा है, तिसरी असंभावना है चौथी पदार्थों की विलापनी भावना है पांचवी शुद्ध ज्ञानस्वरूप है जिस में आधे सुप्त भये और आधे जाग्रत भये जैसा पुरुष जीवन्मुक्त स्थित होता है इस में किंचित् प्रपंच का भान भी होता है और शुद्धचैतन्य का बोध प्रत्यक्ष प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ और छटी स्वसंवेदनरूपा भूमिका होती है यह केवल घने आनंद के स्वरूपवाली होती है इस में जीवन्मुक्त को सुषुप्ति जैसी गाढ आनंद में

स्थिति होती है ॥ ३२ ॥ जिस में तुरीयावस्था करके उपशम होता है सो केवल मुक्तिरूप है ऐसी सातवी भूमिका होती है इस में समता और सौम्यता केवल होती है ॥ ३३ ॥ पहिली तीन भूमिका जाग्रत अवस्था जैसी है जिन्हों में प्रपंचभावना प्रतीत होती है और चौथी भूमिका स्वप्नावस्था जैसी है जिस में वासना लय होती है परंतु प्रपंच स्वप्न जैसा प्रतीत होता है ॥ ३४ ॥ जिस में केवल गाढी आनंद की भावना होती है सुषुप्तिकी समान पांचवी भूमिका है जिस में आनंद की संवेदनाभी नहीं होती है अपनी पराई प्रतीत नहीं होती है सो छ-ठी भूमिका तुरीयावस्था जैसी होती है ॥ ३५ ॥ और सातवी भूमि-का तुरीयातीत केवल चैतन्यमय होती है जो मनवाणी करके चिंतन में कहने में नहीं आवती है ॥ ३६ ॥ हे पुत्र! इस सातवी भूमिका में तत्त्वज्ञ पुरुष निर्लेप होता है. रजोगुण के भाव मंद होते हैं और रागादिकों से रहित है वासना मूलसहित शांत होती है अपने को नि-र्मल चिदाकाश मान करके शोक रहित होता है ॥३७॥ हे राजन्! जीव को संपूर्ण कला अभ्यास विना शांत होती है और यह ज्ञान की कला एक वखत होवे तो दिन दिन उदय होती जाती है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! जो करी जाती कर्म संपदा है, जो पीछे करी है, सो दे-हरूपी सिंवल वृक्ष से रूई की ढेरी सरीखी ज्ञानरूपी पवन करके उड गई वह कहां गई है ऐसे लक्षित नहीं होती है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! यह संसाररूपी अरहट है इस में चिंतारूपी रज्जु बनी है तिस में जीवरूपी घडिआ हैं सो कभी नीचे जावें हैं कभी ऊपर को आवें हैं तिस से तू भी संसाररूपी अरहट में चिंतारूपी रज्जु करके घडी सरीखा मत बांधा जावें ॥ ९४० ॥ ऐसी भावना करके क्या है ब्रह्मा, इंद्र, विष्णु, वरुण, यह जो कुछ करने चाहते हैं सो सब कुछ मैं करता हूं और चैतन्यरूप हूं ऐसी भावना को धारण कर ॥ ४१ ॥

हे पुत्र! जो पुरुष चैतन्यमात्रता को प्राप्त भया है और मृत्यु संसार को लंघ गया है, तिस को जो परमानंद होता है सो किस के बरोबर कहा जाता है ॥ ४२ ॥ हे राजन्! जो शुद्ध चैतन्य का स्वरूप है सो सर्वत्र व्याप्त है और अखंड है इस को जब जाने तब ही संसारसमुद्र तरा जाता है. और परमेश्वररूप होता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष जैसे तैसे वस्त्र करके अपने को आच्छादन करे जो जो मिल जावे तिस तिस को भोजन करे जहां होवे तहां निद्रा को करे. सो पुरुष चक्रवर्ती से भी अधिक आनंद को भोगता है ॥ ४४ ॥ हे पुत्र! जो पुरुष संपूर्ण शास्त्रों के अर्थ के विचार करके शांत भया है, चंचलता से रहित भया है अनेक प्रकार के काव्य शास्त्रों के रस से निवृत्त भया है, जिसके संपूर्ण संकल्प विकल्प उपद्रव शांत भये हैं सो समदृष्टि और समचित्त हो करके अखंड सुख में मग्न होता है ॥ ४५ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! सो इक्ष्वाकू राजा अपने पिता वैवस्वतमनु का वचन करके आत्मविचार करके परम आनंद को प्राप्त होता भया ॥ ४६ ॥ हे रामजी! जो पुरुष! आत्मविचार करके वर्णाश्रम आचार के बंधन से मुक्त भया है, सो पुरुष जैसे पिंजरा से सिंह निकल जाता है, तैसे संसाररूपी जाल से मुक्त होता है ॥४७॥ हे रामजी! सो पुरुष लोगों के समान जो मैं विहार करता हुआ देह का छेदन करना और पूजन करने करके कुछ नहीं जानता है, जैसे चंद्रमा आकाश में है और जल के साथ प्रतिबिंब होने और गुप्त होने करके उदय अस्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ हे रामजी! जिस से लोक दुःखी नहीं होता है. लोक से सो दुःखी नहीं होता है. राग द्वेष भय और आनंदों करके संयुक्त नहीं होता है और रहित नहीं होता ॥ ४९ ॥ हे रामजी! ऐसा महात्मा पुरुष किसी के प्रमाण में नहीं आता है. जो तुच्छ बुद्धि पुरुष है सो बालकों के भी प्रमाण में

आजाता है ॥ ९० ॥ हे रामजी ! सो पुरुष भावे मुक्तिपुरी काशी में शरीर को त्यागे, भावे दुष्टस्थान चंडाल के घर में शरीर को त्यागे, जिस समय में तिस को ज्ञान प्राप्त भया तिस समय में मुक्त भया है, जिस से सो निर्मलचित्त हो गया है ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ऐश्वर्य विभूति को चाहे तिस को ऐसा पुरुष पूजनीय है, वंदनीय है और यत्न करके देखने योग्य है ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! ऐसा फल यज्ञों करके तीर्थों करके, तपों करके दानों करके परम पवित्र नहीं प्राप्त होता है जैसा फल तत्त्वज्ञों की भक्ति करके होता है कैसे हैं तत्त्वज्ञ क्षीण भया है संसाररोग जिन्हों का और आत्मवेत्ता हैं ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! तू ग्रहण करने योग्य पदार्थों की भावना को मत कर और मैं ग्रहण करता हूं ऐसी भावना को भी मत कर संपूर्णभावना को त्याग करके जो शेष रहे तिस में एकाग्रचित्त रहो ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! जो तू कर्म करता है, भोजन करता है होम करता है दान करता है; तिस का न मैं करता हूं न मैं भोक्ता हूं इस प्रकार करके मुक्तमति हो ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! संत जन पीछे भये का शोच नहीं करते हैं, आगे होनेवाले का चिंतन नहीं करते हैं, वर्त्तमान जैसा होवे तैसे ग्रहण की इच्छा नहीं करता है सब को अखंड संसार के प्रवाह में अनित्य मानते हैं ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! हम लोग जो मुनि हैं सो समशील भये हैं. और वन में निवास करते हैं. हम को अहंकार कुछ नहीं करता है जो देहाभिमान करनेवाले को दुःख देनेवाला है ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! जितने इंद्रियों के कर्म हैं तिन्हों को अहंकार करके युक्त मन ही करता है सो अहंकार और मन मेरे गलित हो गये हैं ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्था को मैं नहीं जानता हूं तुरीया में ही मैं स्थित हूं तिस में यह दृश्यमान जगत् नहीं है॥ ९९॥

हे रामजी! मनु राजा से बाण करके वेधा मृग मुनि के सामने वन को गया तिस के पीछे व्याध गया तिस ने मुनि को पूछा हे महाराज! तुम ने मृग देखा है? तब सो मुनि व्याध को कहता भया ॥ ९६० ॥ हे व्याध ! जो नेत्र इंद्रिय देखती हैं सो कहती नहीं, कर्ण इंद्रिय कहती है सो देखती नहीं, ऐसा मुनि का वचन व्याध ने नहीं समझा सो व्याध फिर गया ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! जाग्रत अवस्था में चित्त घोररूप होता है, स्वप्न में शांतरूप होता है और सुषुप्ति में मूढरूप होता है तीनों से रहित होवे तो मृतरूप होता है ॥ ६२ ॥ हे रामजी! वेदांत शास्त्रों का यह सिद्धांत है सो और संपूर्ण शास्त्रों में गुप्त है सो क्या है ना तो कोई अविद्या है और ना कोई माया है संपूर्ण क्रम से रहित शांत परब्रह्म ही है ॥ ६३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते भये—ऐसा वचन मनु वैवस्वत ने अपने पुत्र इक्ष्वाकू को कहा है सो हम ने तुम को कहा है अब जो तुह्मारी इच्छा होवे सो कहो ॥ ६४ ॥

वाल्मीकिमुनिजी भरद्वाज प्रति कहते हैं.

हे भरद्वाजजी! ऐसा सुन के श्रीरामचंद्रजी आत्मस्वरूप के आनंद की समाधि में स्थित होते भये ॥ ६५ ॥

श्रीभरद्वाजजी का प्रश्न—हे गुरुजी! श्रीराम जब समाधि में स्थित भये फिर वसिष्ठजी ने व्यवहार में कैसे तत्पर करे, यह तुम मेरे को कहो ॥ ६६ ॥

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—हे भरद्वाज! यह जितने संसार के भाव हैं, सो संपूर्ण अविद्या से भये हैं क्षणमात्र में उदय होते हैं और ज्ञानरूपी समुद्र में लय हो जाते हैं ॥ ६७ ॥ हे भरद्वाज! तू भी केवल ज्ञानरूपी अमृतसमुद्र में मग्न हो जा. वह कैसा है ज्ञाना-

मृतसमुद्र प्रशांत भई है अमृत की लहर जिस में ऐसा निश्चल है. और द्वैत के खारे समुद्र में क्यों मग्न होता है ॥ ६८ ॥ हे भरद्वाज! यह जगत् बालबुद्धिवाले को ब्रह्म ही रूपांतर को प्राप्त भया प्रतीत होता है. और तत्त्व विचार की बुद्धिवाले एकरूप ब्रह्म को देखते हुए सुख को पा कर स्थित भये हैं ॥ ६९ ॥ जिन पुरुषों का चित्त देवता की ब्राह्मणों की भक्ति करके संयुक्त भया है और गुरु की सेवा की श्रद्धा करके युक्त भया है, और उत्तमशास्त्रों को प्रमाण करके मानते हैं. तिन्ह के ऊपर ईश्वर की कृपा से आत्मज्ञान दृढ होता है ॥ ९७० ॥ हे भरद्वाज! जबलग तेरा चित्त शुद्ध नहीं भया तबलग सगुण ईश्वर को भज जब चित्त शुद्ध होवेगा तब निराकार में स्वभाव करके ही तेरी स्थिति होवेगी ॥ ७१ ॥

भारद्वाज का वचन—हे गुरुजी! तुह्मारे प्रसाद से यह संपूर्ण जाना है वैराग्य से परे मित्र नहीं. और संसार से परे शत्रु नहीं है ॥ ७२ ॥

विश्वामित्रजी का वचन वासिष्ठजी प्रति.

हे वसिष्ठजी! हे महाभाग! तुम ब्रह्माजी के पुत्र हो सब से तुम महात्मा हो. तुम ने अपनी शक्ति देने करके अपना गुरुभाव दिखाया है. जो कोई दर्शन से और स्पर्श करने से शब्द सुनावने से कृपा करके शिष्य के शरीर में ज्ञान का चमत्कार दिखावे सो उत्तम गुरु कहा है ॥ ७३ ॥ हे वसिष्ठजी! यह रामचंद्रजी आप स्वभाव करके विरक्त है. केवल चित्त की सो विश्रांति को चाहता था सो तुह्मारे साथ संवाद करने से चित्त की विश्रांति को प्राप्त भया है॥७४॥ हे वसिष्ठजी! गुरु के वाक्य से बोध जो होना है तिस का कारण शिष्य की निर्मल बुद्धि है जिस के मन वाणी देह के मल परिपक्व नहीं

भये हैं सो निर्मल बुद्धि की समान बोध को कैसे प्राप्त होवे ॥७५॥ हे रामजी! अब कथा को समाप्त करके व्यवहारकार्य करनेवास्तें उठने योग्य है. वसिष्ठजी विश्वामित्र को प्रश्न करते भये हे विश्वामित्रजी! यह श्रीरामचंद्र पहिले देवता थे अथवा मनुष्य थे ॥ ७६ ॥

विश्वामित्रजी का वचन—हे वसिष्ठजी! यहां यही विश्वास करो यह रामचंद्रजी परम पुरुष है पूर्णस्वरूप है परमानंदरूप है सब में समान सत्तायुक्त है साक्षात् विष्णुरूप है ॥ ७७ ॥

श्रीवसिष्ठजी का वचन—हे रामजी! हे रामचंद्रजी!! यह विश्राम का समय नहीं है लोकों को आनंद करने वास्ते संसार व्यवहार में तत्पर हो ॥ ७८ ॥ ऐसा वचन सुन के भी श्रीरामचंद्रजी नहीं उठे. तव वसिष्ठजी ने हृदय में प्रवेश करके उठाया ॥ ७९ ॥

तब श्रीरामचंद्रजी कहते भये—हे गुरुजी! अब मेरे को विधि से कार्य नहीं है. और निषेध से भी कार्य नहीं है तुह्मारे प्रसाद से मैं पूर्ण भया हूं तौ भी गुरुओं का वचन अवश्य करना योग्य है ॥ ॥ ९८० ॥ वेदशास्त्र में आगमशास्त्र में और पुराणशास्त्र में धर्मशास्त्र में भी कहा है जो गुरुजी का वचन है सो विधि है. जो गुरुनिषेध-है, सो निषेध है ॥ ८१ ॥ ऐसा कह करके श्रीरामचंद्रजी गुरुओं के चरण शिरपर रख करके सब को कहते भये हे सभा में बैठे संपूर्ण लोक! मेरा वचन सुनो. मैं निश्चय करके कहता हूं. आत्मज्ञान से परे ज्ञान नहीं है. आत्मवेत्ता गुरुओं से परे दूसरा गुरु नहीं है ॥ ८२ ॥

सिद्ध, मुनि, देवता, ऋषि सब कहते हैं.

हे रामजी! हमारे सब के मन में ऐसा ही विचार था, परंतु तुह्मारे प्रसाद से तुह्मारे संवाद से अब दृढ निश्चय भया है. हे रामचंद्र! हे महाराज!! तुम सुखी रहो तुह्मारे को नमस्कार है ॥ ८३ ॥ ऐसा कह करके सब

ही वसिष्ठजी की आज्ञा ले करके अपने घर को जाने लगे. तब रामचंद्रजी के शिर पर पुष्पों की वर्षा होती भई ॥ ८४ ॥

वाल्मीकजी कहते हैं—हे भरद्वाज ! यह श्रीरामचंद्रजी की आत्मज्ञान की सिद्धि तुह्मारे प्रति मैं ने कही है जैसे राजा रघु को सिद्धि भई थी. यह कैसी है? वचन रचना की रत्नमाला है. संपूर्ण कविकुलों करके सेवने योग्य है. और योगी जनों को भी सेवने योग्य है. यह सद्गुरुओं की कृपाकटाक्ष से प्राप्त होती है. और मुक्ति के मार्ग को देती है ॥८५ ॥ जो पुरुष यह वसिष्ठरामजी के संवाद को श्रवण करता है सो भावे कैसा होवे श्रवण से ही मुक्त होता है और परब्रह्म को प्राप्त होता है॥ ८६ ॥ भावे मोह करके मलिन बुद्धि होवे, रागद्वेष युक्त होवे महापातक युक्त होवै संपूर्ण दोषों करके युक्त होवे, सो पुरुष इस के श्रवण से सर्व दोषों से मुक्त होता है. शांति को प्राप्त हो करके ब्रह्मज्ञान को प्राप्त है जो इस का उत्तम अधिकारी होवे सो कैसे मुक्त नहीं होवे॥ ९८७॥

॥ इति श्रीवासिष्ठसारे निर्वाणप्रकरणस्य पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

वासिष्ठसार

निर्वाणप्रकरण उत्तरार्धम्।

श्रीवसिष्ठजी फिर श्रीरामचंद्रजी को सर्वसार उपदेश करते हैं.

हे रामजी! संसारकल्पना को जाननेवाले ज्ञानी पुरुष पदार्थों के रस की भावना को ही संसारकल्पना को कहते हैं तिस पदार्थरस को अभावना को संकल्प का त्याग करना कारण कहा है ॥ १ ॥

मैं भुजा उठा करके कहता हूं संकल्प का त्याग ही परम कल्याण का मूल है तिस को अंतःकरण करके क्यों नहीं सेवते हैं ।।२।। हे रामजी! मोह का माहात्म्य महाआश्चर्यरूप है जिस करके संपूर्ण दुःखों को हरनेवाला तत्त्वविचार नामा चिंतामणि अपने हृदय में भी है तौ भी तिस को लोक त्याग देते हैं ॥३॥ हे रामजी! जो झूठे ज्ञानी हैं सो संकल्पत्याग को नहीं जानते हैं और वृथा ही कर्म का त्याग करते हैं, सो पशु हैं. और अज्ञानी हैं तिन्हों को कर्मत्यागरूपी पिशाचनी भक्षण करती है ॥ ४ ॥ हे रामजी! जो पुरुष मोक्षलक्ष्मीरूपी स्त्री के वश भये हैं सो जैसे कामी पुरुष सुंदर स्त्री के वश होते हैं तैसे आधे सुप्त भये आधे जाग्रत भये हैं आनंदरूपी निद्रा के वश भये अपने को नहीं जानते हैं हम कहां हैं और कौन हैं ऐसे स्वरूपानंद में मग्न होते हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी! जिस को उपशम की प्राप्ति भई है तिस को अपना घर कुटुंब धनसहित वन सरीखा होता है. सो पुरुष ममतारहित होता है. और जिस को उपशम की प्राप्ति नहीं भई है, तिस को ममता संकल्प करके निर्जन वन भी कुटुंबसहित घर जैसा होता है ॥ ६ ॥ हे रामजी! जिस ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य यह छः शत्रु जीते हैं. स्वभाव करके ही दूर किये हैं. ऐसा उत्तम ज्ञानी पुरुष जो है सो ज्ञान वैराग्यादि उत्तम गुणों का पात्र होता है, और षट् शत्रुओं को नहीं जीतता है, सो मनुष्यों में गदहा है. तिस को तत्त्वज्ञान वैराग्यादि महागुण नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी! शुद्ध चित्तवाले को अल्प उपदेश भी विस्तार करके लग जाता है. जैसे तैल में जल की बूंद विस्तार को प्राप्त होती है, और मलिन चित्तवाले को उपदेश नहीं लगता है. जैसे तपे हुए लोहे को जल की बूंद नहीं लगती है ॥ ८ ॥ हे रामजी! मैं ने भुशुंड काक को प्रश्न किया था, हे महाराज! तुम तत्त्वज्ञान के विचार से चिरंजीवी

भये हो. परंतु जो तत्त्वज्ञान से रहित है और मूढ बुद्धि है ऐसा भी तुम ने कोई चिरंजीवी जाना तो कहो ॥ ९ ॥

इतना सुन के भुशुंड काक कहते भये.

हे मुने! एक कोई विद्याधर होता भया. वह कैसा है? तत्त्वज्ञान से रहित और संसारसुखों को भोग करके वृद्ध भया हुआ लोकालोकाचल पर्वत के शिखर में निवास करता भया शुष्क विचारवाला सो विद्याधर वहुत प्रकार के तप करके और यम-नियम करके चार कल्प पर्यंत स्थिर आयुषवाला होता भया ॥ १० ॥ सो चौथे कल्प के अंत में विवेकयुक्त होता भया. संसार को असार जानता भया मेरे को प्रश्न करने को आता भया ॥ ११ ॥ आ करके पूछता भया, हे महाराज! जो सब का आधार है और दुःख क्लेश से रहित है क्षय वृद्धि से रहित है, और आदिअंत राहित जो पद है तिस को मेरे प्रति कहो ॥ १२ ॥ इतने में जडता करके सोया जैसा रहा हूं अब मैं आत्मा की प्रसन्नता से वोधयुक्त भया हूं ॥ १३ ॥ संसार में अनेक प्राणी केवल जन्म-मरण को भोगते हुवे जीर्ण हो गये हैं. अधर्म के वास्ते कुछ करते हैं न मोक्ष के वास्ते कुछ करते हैं जैसे मच्छर कमल में रहते हैं ॥१४॥ हे महाराज! मैं ने कुवेर की वगीची की भूमिका देखी है वह कैसी है प्रफुल्लित है कुंजलता जिन्हों में और जहां के कल्पवृक्षों के ऊपर मन की चाही ऐश्वर्य संपदा को देनेवाली कल्पलता चढी है ॥१५॥ मैं ने सुमेरु पर्वत के कुंजों में और विद्याधरों के नगरों में और विमानों की सुंदरमाला में और मंद सुगंध शीतल पवन जहां चलती है तिन में चिरकाल विहार किये हैं. और देवताओं की सेना साथ चलती है, दिव्य स्त्रियों की भुजारूपी लता में विहार किये हैं मुक्तामणि के हारों करके युक्त मन को हरनेवाला रूप और शील जिन का ऐसी अंगनासहित लोकपालों की पुरियों में विहार किये

हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज! तिन में मेरे को सुंदर सुख करनेवाला कुछ अनुभव में नहीं आया है. संपूर्ण मन का विनाश होने करके दग्ध भये भस्म की समान वृथा मैं ने अब जाना है ॥ १७ ॥ जो कुछ मैं ने सुना है, स्पर्श किया है, सूंघा है, स्वर्गादिक में सो सब रसरहित भया है अब मैं क्या सेवन करूं! तिस को जल्दी कहो॥१८॥ जिस के प्राप्त भये फिर प्राप्त होने की शेष वांछा न रहे तिस की प्राप्ति में कष्ट करके भी यत्न को मैं करूं ॥ १९ ॥ जिस ने सुंदर स्त्रियें भोगसहित भोगी हैं तिस को तिन भोगों ने भोग लिया है भोगवाला भी मैं ने ऊपर की पदवी को चढता नहीं देखा है. और आकाश में उडता भी नहीं देखा है सब ही नरक को जाते देखे हैं ॥ २० ॥ यह दुष्ट इंद्रियों की सेना है शरीर के अंत पर्यंत जीवों को भ्रमावती है. जो इस के जीतने को उद्यम करते हैं सो ही महायोधा शूर वीर हैं ॥ २१ ॥ जो जितेंद्रिय पुरुष हैं सो ही महापुरुष हैं. बाकी के देहरूपी मांस के पिंजरा के काकों के बराबर हैं. मैं इन इंद्रियों को उडा करके भ्रमाया हूं जैसे महावन में चोरों करके अकेला मुसाफिर डराइ छुडाई भ्रमाया जाता है ॥ २२ ॥ हे महाराज! जैसे कोई महाआपदा में मग्न होता है ऐसे मैं भी आपदा में मग्न भया हूं और साधनों से रहित हूं मेरे को शील-दया के उदय करके उद्धारण करो तुम उद्धारण करनेवाले हो जो जगत् में उत्तम संतजन होते हैं सो त्रैलोक्य को जीतनेवाले होते हैं. तिन के समागम को परमशोक का हरनेवाला कहते हैं ॥ २३ ॥

काकभुशुंडजी कहते हैं—हे विद्याधरों में श्रेष्ठ! तू उत्तम शीलवाला है. दैवयोग से तेरे को संसारदुःख का बोध भया है. अब तेरा कल्याण का समय आया है. संसाररूपी कूए से चिरकाल से निकलने के योग्य है॥ २४॥ यह विश्व मारवाड की रेती में जल

की प्रतीति को समान वास्तव नहीं होने से दृश्यमान है, तौ भी असत्य है. जो कुछ यह भासता है, सो संपूर्ण ब्रह्म ही है. और कुछ नहीं है ॥ २५ ॥ जो पुरुष गुरुओं का वचन सुन करके मूलसहित संकल्पत्याग का यत्न करके उद्यम करते हैं सो ही संसार को जीतते हैं ॥ २६ ॥ हे विद्याधर! संकल्प का उदयमात्र जगत्‌रूपी चित्र दृष्ट होता है संकल्प के लय होने से लय को प्राप्त होता है जैसे चित्र रचनेवाले के संकल्प से चित्र होता है ॥ २७ ॥ जो पुरुष अन्नपानादिक में अनादर को प्राप्त भया है, तिस का यह पिछला जन्म है. तिस को नहीं होता है. सो पुरुष कर्म का त्याग नहीं करता है. कर्म तिस को आप त्याग कर जाते हैं जैसे पुराने पत्र वृक्ष से आप ही गिर जाते हैं ॥ २८ ॥ यह जगत् चित्त के संकल्प का चमत्कार है संकल्प नहीं करने से क्षय को प्राप्त होता है और अतिशय करके अपने हाथ के वस्तु जैसा अपने अधीन है जब चाहे तब ही त्याग कर ॥ २९ ॥ संपूर्ण शास्त्र आत्मा को जानने में अंग है वासनारहित पुरुष के अंग में लगते हैं जो इन को वारंवार जानता है फिर समबुद्धि होता है सो परमपद में स्थित होता है ॥ ३० ॥ हे विद्याधर ! जबलग पदार्थों के उदय के प्रति सुषुप्ति जैसी विस्मृति नहीं भई, तबलग अपने पुरुष के यत्न करके अभ्यास करता है ॥ ३१ ॥ हे विद्याधर! अविद्या का आधा भाग आपस में शास्त्र विचारण करके निवृत्त होता है और आधा भाग आत्मज्ञान के दृढ निश्चय करके निवृत्त होता है ॥३२॥ तिस से शास्त्र विचारने वास्ते जहां तहां ते वैराग्यसहित वीतराग, आत्मवेत्ता ऐसे तत्त्वज्ञ पुरुष को ढूंढ करके यत्न करके तिस का आराधन करे ॥३३॥ हे विद्याधर! तिस से उपरांत आधा अविद्या का भाग सत्संग करके निवृत्त होता है. आधे में आधा शास्त्र विचार करके निवृत्त होता है. चौथा भाग अपने निश्चय यत्न करके निवृत्त होता

है ॥ ३४ ॥ हे विद्याधर! संतजनों की संगति करके शास्त्रार्थ विचार करके अपने यत्न पूर्वक निश्चय करके अविद्यारूपी मूल क्षय को प्राप्त होती है. तिस से क्रम करके एक एक को सेवे अथवा एक बार इकट्ठे ही सेवन करे ॥ ३५ ॥ हे विद्याधर! जगत् के पसरने का कोई और देश नहीं है, काल भी और नहीं है, धारने का आधार भी नहीं है जैसे अंधेरा और प्रकाश आकाश में ही होते हैं, तैसे जगत् का उदय और क्षय एक अंतःकरण में ही है ॥ ३६ ॥ इस में तेरे प्रति पुरातन इतिहास को कहते हैं. जो त्रसरेणु के अंदर पहिले इंद्र का वृत्तांत भया है तिस को तू सुन ॥ ३७ ॥ एक कल्पांतर में इंद्र त्रैलोक्य का राजा होता भया सो इंद्र गुरुओं के उपदेश करके अपने अभ्यास से अज्ञानरूपी आवरण से रहित होता भया ॥ ॥ ३८ ॥ नारायण से लेकर महा पराक्रमी देवता तिस के साहाय्य करनेवाले होते भये. सो कहीं छिप जाते भये. तब इंद्र अकेला रहा महाशस्त्र-अस्त्रों करके दैत्यों के साथ युद्ध करता भया सो महा पराक्रमी दैत्यों से जीता गया. तिन से शिताबी भाग जाता भया ॥ ३९ ॥ तिन दैत्यों की दृष्टि जब भ्रम गई, तब छिद्र पा करके इंद्र सूर्य की किरणों में दृढ होता एक त्रसरेणु के किणके में सूक्ष्मरूप हो करके प्रवेश करके छिप जाता भया ॥ ४० ॥ इस से उपरांत युद्ध को विसार करके निवृत्ति को प्राप्त भया इंद्र तिस त्रसरेणु के अंदर मंदिर कल्पना करके निवास करता भया तिस मंदिर में बैठा इंद्र बाहिर नगर की कल्पना करता भया तिस के बाहिर अनेक देशन की कल्पन करता भया ॥ ४१ ॥ हे विद्याधर! तहां रहते भये इंद्र संपूर्ण त्रैलोक्य को कल्पना करके अपने इंद्रत्व के अधिकार को करता भया इस प्रकार करके तहां इंद्र के हजारों पुत्र पौत्र होते भये तहां आजतक तिस इंद्र का अंश राज्य में स्थित है

॥ ४२ ॥ तिस इंद्र के कुल के सब ही तहां इंद्र के अधिकार को करते भये तिस से उपरांत सो इंद्र तिस के पुत्र पौत्र कुटुंबादिक परम पद को प्राप्त होते भये ॥ ४३ ॥ हे विद्याधर ! जो इंद्र इस सृष्टिको त्रसरेणु में माया करके छिपा था, तिस के कुल का कोई यहां भी इंद्र के राज्य को करता भया तिस को भी बृहस्पति के वचन करके ज्ञान की प्राप्ति होती भई ॥ ४४ ॥ सो भी दैत्यों के साथ युद्ध करता भया संपूर्ण शत्रुओं को जीत लेता भया सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करता भया मन करके अज्ञान को तर जाता भया ॥ ४५ ॥ सो किसी कार्य के वश से कमल के नाल के तंतु में चिरकाल निवास करता भया और भी सैंकडों इंद्रभाव के वृत्तांतों को अनुभव करता भया ४६ ॥ सो इंद्र भी माया को जाननेवाला यह इच्छा करता भया. ब्रह्मतत्त्व को मैं देखूं सो ब्रह्म को देखता भया. वह कैसा है परब्रह्म ? सर्वशक्ति युक्त है. सर्व वस्तु में व्याप्त है सर्व काल में सर्व प्रकार करके सर्वत्र सर्व जनों ने देखा है ॥ ४७ ॥ फिर वह कैसा है ? सर्व दिशाओं में है हाथ पाँय, जिस के, सर्वत्र हैं नेत्र और मुख शिर जिस के, सर्वत्र श्रवणवाला है सब में व्याप्त हो करके स्थित भया है ॥ ४८ ॥ ध्यान करके सर्वत्र एकरूप को देखता भया. कैसा है ? उदार बुद्धियुक्त है, संपूर्ण सृष्टि को तिस में हमारी इस सृष्टि को भी देखता भया. तिस से उपरांत यहां के इंद्र का राज्य के अंत में फिर इंद्र होता भया जगत् के राज्य को करता भया. संपूर्ण वृत्तांतों का अनुभव करता भया ॥ ४९ ॥ इस प्रकार की माया करके अनेक इंद्रों के वृत्तांत भये हैं. यह माया अनेक प्रकार की प्रतीति को करनेवाली है सत्यपरब्रह्म के विचार करके लीन हो जाती है ॥ ५० ॥ हे विद्याधर ! जो पदार्थ सत्य नहीं हैं सो कदाचित् भी सत्य नहीं जानना तू केवल शांतरूप है सब के

लय होने में शेष रहनेवाला है अब तू बोध को प्राप्त भया है अब फिर मूलरहित भ्रांति को मत धारण कर ॥ ५१ ॥ हे विद्याधर! तू संपूर्ण कल्पनाकलंक से रहित है. शुद्धरूप है, आनंदरूप है, शांतरूहै, ईश्वर है, शुद्ध चैतन्य है, माया के विलास से आकाश शून्यस्वरूप है सो स्वरूप करके पर्वतप्रमाण दृश्यरूप होता है. संपूर्ण जगत् परमाणुरूप होता है आत्मविचार विना जीती नहीं जाती है ॥ ५२॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं.

हे रामजी! फिर भुशुंड काक मेरे को कहता भया हे वसिष्ठजी! ऐसे मैं ने कहते संते सो विद्याधर राजा शांत ज्ञानस्वरूप होता भया, समाधि में स्थित होता भया आत्मस्वरूप के ध्यान में एकाग्र होता भया ॥ ५३ ॥ सो आत्मस्वरूप को ध्यान मैं ने वारंवार करा है तिस से जो जो मैं ने कहा है तिस तिस से बोध की दृढता को पा करके फिर दृश्य पदार्थ में मग्न नहीं होता भया, और परम निर्वाण को प्राप्त होता भया ॥ ५४ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—इस से मैं ने कहा है निर्मल चित्तवाले पुरुष को किया उपदेश जल में तैलबूंद की समान विस्तार को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ यह त्यागने के योग्य है, यह ग्रहण करने के योग्य है ऐसी जिस के चित्त में कल्पना है सो पुरुष संसार से मुक्त नहीं होता है सर्वज्ञ है तो भी मूढ है ॥ ५६ ॥ हे रामजी! पूर्णज्ञानी सदा होने योग्य है और ज्ञानबंधु नहीं बने योग्य है मैं अज्ञानी को भला मान ज्ञानबंधु को भला नहीं मानता हूं ॥ ५७ ॥ हे रामजी! ज्ञानबंधु कौन होता है? ज्ञानबंधु तिस को कहते हैं जो पुरुष शास्त्रों को लोकों को सुनावता है आप भी पढता है कारागिर सरीखा उपजीविका वास्ते शास्त्र के प्रसंग को करता है, शास्त्र की विधि में आप

वर्त्तमान नहीं होता है, सो ज्ञानवंधु कहा है ॥ ५८ ॥ जो पुरुष अन्न वस्त्रमात्र प्राप्त होने से प्रसन्न भये हैं. शास्त्रों के फल को जानते हैं हम को शास्त्र आ गये हैं और मजूरी करनेवालों के समान अन्नवस्त्रलाभ वास्ते ही शास्त्रार्थ को जाननेवाले सो ज्ञानबंधु कहे हैं ॥ ॥ ५९ ॥ जो पुरुष शास्त्र में कहे प्रवृत्ति मार्ग को सिद्ध करनेवाले धर्म में प्रवृत्त होते हैं और निवृत्ति करके ज्ञान को देनेवाले शास्त्रार्थ में नहीं प्रवृत्त होते हैं सो ज्ञानवंधु कहे हैं ॥ ६० ॥ हे रामजी ! आहार वास्तेउत्तम कर्म को करना प्राण धारने वास्ते आहारभी करना तत्त्व जानने वास्ते प्राणधारणा भी करनी जन्म-मरणदुःख निवृत्त करने वास्ते तत्त्व जानने का अभ्यास करने योग्य है ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! माया के प्रवाह में जैसा बने तैसे कार्य को करता है. और कामना के संकल्प से रहित है. और रागद्वेष में जिस का अंतःकरण शून्य है सो पंडित कहा है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! जीव को केवल अहंता-ममता के फुरना मात्र कहते हैं. तिस का पसरना जगत् का रूप है. और आत्मा में निष्ठा करने को जगत् के लय को कहते हैं यह उपदेश की मुख्य भूमिका है ॥ ६३ ॥ हे रामजी! वैराग्य की वासना करके संपूर्ण जगत् को त्याग करके इस जगत् की माया की प्रकृति से उठ करके मंकि ब्राह्मण की समान कलंकरहित हो करके परम पदवी को चले जाओ ॥ ६४ ॥ हे रामजी! एक मंकि नामा ब्राह्मण होता भया सो मारवाड देश के मार्ग में चलता हुआ महागरमी करके तपा हुआ भी लोकों के ग्राम को प्रवेश करता हुआ मैं ने देखा ॥ ६५ ॥ हे रामजी तुह्मारे दादा राजा अज के यज्ञ कराने वास्ते मैं अपने आश्रम से आकाश मार्ग करके जाता था तब मैं मंकि ब्राह्मण को धूप करके व्याकुल भये को देख करके दया करके वचन कहता भया ॥ ६६ ॥

हे मारवाड की झाडी के मुसाफिर! तेरे को कुशल होवे, यह ग्राम नीचलोकों के वसनेवाला है इस में तेरा विश्राम नहीं बनेगा और खारी रेती पडने करके और महा उग्र धूप करके तृषा तो अत्यंत बढती जाती है ॥ ६७ ॥ परंतु इस ग्राम में प्रवेश करना भला नहीं. जिस कारण से महा अंधकारवाली कंदरा में सर्प बनना अच्छा है, पत्थरों में कीडा बनना अच्छा है, मारवाड देश की झाडी में लंगडा मृग बनना अच्छा है परंतु ग्राम के मूढजनों की संगति भली ॥ ६८ ॥

मंकि ब्राह्मण कहता है—हे भगवन्! तू कौन है अथवा कैसा है पूर्ण बुद्धि है, और महात्मा है और महाधैर्यवान है जिस कारण से व्याकुल नहीं है संपूर्ण लोक के वृत्तांत को देखता है जैसे मुसाफिर ग्राम के वृत्तांत को असंगता करके देखता है ॥ ६९ ॥ हे महामुने! क्या तुम ने अमृतपान किया है अथवा तू महासिद्ध है जिस कारण से यह संसार संपूर्ण उत्तम गुण से रहित है इस में तू सर्वार्थ पूर्ण जैसा विराजमान होता है ॥७०॥ मुने! तू दोषों से शून्य है और आनंद करके पूर्ण हो करके भी स्थिरमति है तू सब असंग है तो भी सर्वरूप है तेरे को जगत् कुछ भी प्रतीत नहीं होता है और कुछ तत्त्व अंतःकरण में प्रतीत होता है ॥ ७१ ॥ हे मुने! तेरी वानी और रूप उपशम को प्राप्त भया है और सुंदर है और प्रकट प्रकाशमान है परंतु विरोधी किसी का भी नहीं है और निवृत्ति को प्राप्त भया है तो भी सर्वत्र प्रवृत्त है यह किस कारण से है ॥ ७२ ॥ हे मुने! मैं शांडिल्य के कुल में प्रकट भया हूं मंकि मेरा नाम है तीर्थयात्रा के प्रसंग से बहुत देशों में फिरा हूं, बहुत तीर्थों को देख करके अब घर को जाने के वास्ते उद्यत भया हूं परंतु मैं विरक्तमन भया हूं घर के जाने को उद्यम नहीं भी करता हूं यह संसार में भूतों के समागमों को मैं ने देखा है वे समागम कैसे हैं विजुली के चमत्कार की

समान चंचल हैं ॥ ७३ ॥ हे भगवन् ! तुम मेरे को कृपा करके अपने आप को सत्य करके कहो आप कौन हो सज्ज नों के मनरूपी सरोवर गंभीर होते हैं और निर्मल भी होते हैं ॥ ७४ ॥ महात्मा लोक दर्शन से दर्शन से ही मित्रता करते हैं तिन्कों के कमलों की समान संपूर्ण प्राणियों के मन तत्क्षण प्रकाश मान होते हैं और प्रसन्न होते हैं ॥ ७५ ॥ मेरा यह मन संसार के मोह से मुक्त होने को समर्थ नहीं होता है तिस को बोध करने की कृपा से मोह से छुटाव ने को योग्य है ॥ ७६ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे महाबुद्धे ! मैं वसिष्ठमुनि हूं आकाश में ही मेरा घर है किसी राज्यऋषि के कार्य निमित्त इस मार्ग को आया हूं तू अब चिंता मत कर. तत्त्ववेत्ता जनों के मार्ग को आ गया है निश्चय करके संसारसमुद्र के तट में प्राप्त भया है ॥७७॥ हे मंकि ! वैराग्यादियुक्त भई ऐसी मति और शांतरूपा आकृति यह तुच्छ बुद्धियों को नहीं होती है ॥ ७८ ॥

मंकि का वचन—हे भगवन् ! मैं ने बहुत प्रकार की दश दिशा भ्रमी हैं परंतु संशय को नाश करनेवाला उत्तम जन मुझ को कोई नहीं मिला अब मेरे को संसार में अनेक जन्मों के पुण्य करने का फल प्राप्त भया है॥७९॥हे भगवन्! बहुत दोषों को देनेवाले संसार की बहुत दशा देखता मैं बहुत दुःखी भया हूं यह संसार के सुख फिर फिर उत्पन्न होते हैं फिर फिर नष्ट होते हैं अवश्य इन्हों से दुःख होता है तिससे ये दुःखरूपी भासते हैं ॥८०॥ यह संसार में सुख ही दुःखरूप है तिस से मैं दुःखों को भले मानता हूं जिस से दुःखों से फिर दुःख नहीं होते हैं और सुखों के अंत में मैं ने दुःख ही देखे हैं तिस से सुख मेरे को दुःख करते हैं मेरा चित्त सुखदुःखों के तरंगों करके व्याकुल भया है खु-

शकचिंता करके व्याप्त भया है ॥ ८१ ॥ मैं इंद्रियसुखों में तत्पर भया हूं मेरे को विवेकी जन स्पर्श भी नहीं करते हैं जो विवेकरूपी सूर्य उदय नहीं होवे तो वासनारूपी रात्रि का क्षय नहीं होता है यह चित्तरूपी हाथी मदोन्मत्त भया है जिस ने जो सत्य वस्तु नहीं है तिस को सत्य वस्तु जान करके गले में बांधा है जैसे बालक काचकी माला को गले में बांधता है ॥८२॥ हे साधो ! जैसे शरदऋतु में घनघटाका अंधकार दूर होता है और दश दिशा निर्मल होती हैं तैसे विवेक के उदय में मोह का अंधकार नष्ट होता है और चित्त की वृत्ति निर्मल होती है यह मैं सत्य जानता हूं साधुजनों की कही बानी बोध को प्राप्त करती है तिस से तुम ने भी मेरे को संसार की शांति को देनेवाला बोध करने से मेरे को संसारदुःख की शांति करने योग्य है ॥ ८३ ॥

श्रीवासिष्ठजी कहते हैं—हे मंकि ! पहिले इंद्रियों करके विषयों का भोग जो लक्षित करना लखना सो संवेदन कहा है, विषय नष्ट भये से फिर तिस का संबंध विचारणा सो भावना कही है. विषयाकार चित्त की वृत्ति करनी वासना कही है ॥८४॥ फिर मरणादिक में भी दृढवासना करके दूसरे देह के आरंभ में भोग चाहना सो कल्पना कही है यह चारों अपने नाम के अर्थ करके महा अनर्थ को करते हैं विचार करने से अर्थरहित होते हैं अपने अर्थ को नहीं करते हैं ॥ ८५ ॥ तिस से हे मंकि ! विषयों का संवेदन ही भावना जान सो कैसा है संपूर्ण दोषों का आश्रय है तिस में ही संपूर्ण आपदा रहती हैं जैसे वसंत ऋतु में लता होती है ॥ ८६ ॥ विवेकी पुरुष का संसार का भ्रम वासनासहित क्षीण होता है जैसे वैशाख मास के अंत में ग्रीष्म ऋतु में पृथिवी का रस सूख जाता है॥८७॥हे मंकि ! जिस बोध करके तत्त्ववस्तु का बोध होवे तिस को बोध कहते हैं तत्त्व वस्तु का बोध

नहीं होवे तो बोधका क्या करना है जिस कारण से तत्त्व के बोध विना जो बोध है सो बोध का विरोधी है ॥८८॥ हे मंकि ! देखनेवाला और देखने की क्रिया और देखने योग्य जो पदार्थ है इन तीनों में एक एक प्रति केवल बोधमात्र ही प्रतीत होवे तो सार का बोध होता है तो बोध का अंत होता है और जैसे आकाशपुष्प का नाम जानने से आकाशपुष्प की प्रतीति कदाचित् भी नहीं होती है तिस से तत्त्व जानने को ही बोध कहते हैं ॥ ८९ ॥ हे मंकि ! जो जिस के समान जातिवाला होता है सो तिस के साथ एकरूप होता है जैसे जल जल के साथ, दूध दूध के साथ, आकाश आकाश के साथ मिल जाता है तैसे बोध सर्वत्र एक जैसा है सो आपस में एक जैसा होने से एकरूप होता है ॥ ९० ॥ जो कहो काष्ठपाषाणादिक में बोध नहीं है और बोधरूप आत्मा एक अद्वितीय है. काष्ठ पाषाणादिक जड हैं तिन्हों में बोधरूप सत्तारूप परब्रह्म नहीं है इस करके एक अद्वितीयता की हानि होती है ऐसा नहीं कहो. जैसे और पदार्थ ज्ञान करके असत्य भासते हैं तैसे काष्टपाषाणादिक बोध विना स्वभाव से जड हैं और असत्य हैं ॥ ९१ ॥ हे मंकि ! 'अहं ब्राह्मणः' मैं ब्राह्मण हूं ऐसा फुरना बंध को करता है. मैं देहादिक नहीं ऐसा फुरना मुक्ति को देता है एता ही बंध है और एता ही मोक्ष है और स्वाधीन है इस में क्या असामर्थ्य है ॥ ९२ ॥ हे मंकि ! यह मनुष्यरूपी तृण है सो वासनारूपी पवनों कर के उडाये हैं तिन्होंके ऊपर जो दुःख आ पडते हैं सो कहने को समर्थ नहीं होते हैं ॥ ९३ ॥ हे मंकि ! यह मनुष्य लोक भ्रांति करके युक्त भये विषयभोगों के रस में आसक्त भये हैं जैसे हाथ करके ताडन किये गर्द के गोले ऊपर को चढके नीचे पडते हैं तैसे यहां भोगों को भोग करके नरक में पडते हैं फिर कल्पांतर करके और देहांतर पा करके और जैसे हो जाते हैं ॥ ९४ ॥ हे मंकि !

यह संपूर्ण जगत् के भाव आपस में असंग हैं जैसे वन में पत्थर होते हैं इन्हों को एकत्र करके बंधन करने को भावना ही संखली है ॥९५॥ हे मंकि! विचार करने मात्र से बंध की तुच्छ वासना भी नहीं है जैसे कठिन मार्ग में चलनेवाले को अपने हाथ में दीपक का उजाला करने वाले को मार्ग सुगम होता है ॥९६॥ हे मंकि! जितने यह देह, स्त्री, धन, पुत्रादिक जगत् के भाव हैं सो विचार करके सूखी रेती की समान क्षण में शिथिल हो जाते हैं ॥ ९७ ॥ हे मंकि! संपूर्ण भावों को मिथ्या ही चैतन्यस्वरूपता मानी है जैसे स्वप्नके पर्वतों को मिथ्या ही पदार्थता मानी है ॥९८॥ हे मंकि! पदार्थों की जो अपेक्षा (इच्छा) है सो ही बंध है और जो उपेक्षा (नहीं इच्छा) है सो ही मुक्ति है तिस उपेक्षा में जो विश्रांत भया है तिस ने क्या पदार्थ चाही है सो पूर्णकाम भया है ॥ ९९ ॥

श्रीवासिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! मंकि ने इस प्रकार श्रवण करते हुए तिस से उपरांत अत्यंत बलवान भी मोह को निःशेष करके त्याग कर दिया जैसे सर्प अपनी त्वचा को त्याग देता है ॥ १०० ॥ हे रामजी! जैसा संसारप्रवाह में कार्य आ जावे तिस को करते हुए तिस ने संपूर्ण वासना को त्याग करके शत वर्ष पर्यंत आत्मविचार की समाधि में स्थिति करी है ॥ १ ॥ सो मंकि अब तक पाषाण के बरोबर स्थिरता धारण करके अंतःकरण को शांत करके महायोगीश्वर भया है. हम लोक तिस के ध्यान में अंतःकरण में प्रवेश कर के बोधन करते हैं तो सावधान होता है नहीं तो ध्यान में मग्न रहता है ॥ २ ॥

॥ इति मंकिप्रसंगः समाप्तः ॥

हे रामजी! जैसे आकाश में वृक्षों का वन नहीं है, जैसे रेती में तैल नहीं है, जैसे चंद्रमंडल में बिजली नहीं है तैसे चित्त में देहादिक

नहीं है ॥ ३ ॥ हे रामजी ! जिस युक्ति करके बने तिस युक्ति करके अपने पुरुषार्थ के यत्न करके वासना को निर्मूल कर यही कल्याण का उपाय है ॥४॥ हे रामजी ! अपने पुरुषार्थ के यत्न करके जैसे जानता है तैसे अहंकार के भाव के अंश को निर्वाण कर यही वासनाक्षय का मूल है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! अहंभाव के त्यागने रूपी पौरुष यत्न से परे संसार तरने की और गति नहीं है. अहंभावत्यागरूप ही वासनाक्षय का नाम कहा है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! घोर शोक प्राप्त भये संते कठिन संकट की प्राप्ति में दुर्गमस्थान में क्रम करके जैसा स्थान समागम होवे तैसे लोकों को परचाने वास्ते अंतःकरण में दुःखरहित भया तू भी लोकों की समान दुःख को मान ॥ ७ ॥ हे रामजी ! स्त्रियों के समागम विषे और संसारदशा में और उत्सवों के उदय में वासनासहित मूढ पुरुष की समान आनंद को सेवन कर ॥८॥ हे रामजी ! मृत्यु के कार्य युद्धादिकों में शत्रुरूपी प्राणिगणों को बन की अग्नि तृणोंकी समान दया से रहित जैसा हो करके क्रोधरूपी अग्नि करके वासनासहित मूढ पुरुष की समान दग्ध करता रहो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! द्रव्यप्राप्ति के कार्यों में क्रम करके भय और खेद करके रहित भया तू वासनासहित मूढ पूरुष की समान जैसे बगुला मछरी वास्ते ध्यान स्थित होता है तैसे द्रव्य की प्राप्ति को विचारण कर ॥ ॥ ११० ॥ हे रामजी ! दया करने योग्य दीन जनों में दया कर, महात्मा पुरुषों में धैर्य और आदर को कर, अंतःकरण में आत्मविचार के आनंदसहित हुआ तू बाहिर के कार्यों को वासनासहित मूढ पुरुष की समान वर्तमान हो ॥ ११ ॥ हे रामजी ! अंतःकरण में नित्य आत्मा की भावनासहित होने करके स्थित होवे तो तेरे ऊपर वज्र की धारा पडे सो भी कुंठित हो जाती है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! तेरे चित्त की वृत्ति संकल्प त्याग करके लीन भई जैसी और बाहिर

के कार्य में आसक्त भई है तू अब और अंतःकरण में अत्यंत सुप्त भये जैसे चित्त करके चिंताज्वर से रहित स्थित हो ॥१३॥ हे रामजी! जो तू सुषुप्ति में है तो जाग्रत की समान हो जो जाग्रत है तो सुषुप्ति की समान हो और जाग्रत सुषुप्ति दोनों में एक वृत्ति होवे तो निर्विकार होवेगा ॥ १४ ॥ हे रामजी! तू इस जगत् को द्वैत भी नहीं जान और एक अद्वैत भी नहीं जान ऐसे निश्चय करके परम विश्रांति को प्राप्त हो आकाश की समान निर्मलचित्त हो ॥ १५ ॥

श्रीरामचंद्रजी का वचन श्रीमुनि प्रति.

हे मुनिश्रेष्ठ! जो जगत् द्वैत भी नहीं है और अद्वैत भी नहीं है तो मैं राम हूं तू वसिष्ठ है ऐसी प्रतीत कैसे सो मेरे प्रति कहो ॥१६॥

श्रीवाल्मीकि जी श्रीभरद्वाज प्रति कहते हैं.

हे भरद्वाज! श्रीरामचंद्रजी ऐसा वचन कहे संते प्रश्न का उत्तर कहनेवालों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी सब के प्रत्यक्ष प्रकट क्षणमात्र मौन करके तूष्णी होते भये ॥ १७ ॥ तिस वसिष्ठजी के तूष्णी स्थित होत संते अब कैसे उत्तर होवेगा ऐसे संशयसमुद्र में सभा के लोक को मग्न भये संते ॥ १८ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजी प्रतिकहते हैं.

हे मुनिश्रेष्ठ! तुम मेरे समान क्यों तूष्णी स्थित भये हो ऐसा जगत् में कोई प्रश्न नहीं है जिस का उत्तर तुह्मारे मनमें नहीं स्फुरण होता है ॥ १९ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं. हे रामजी! मैं कुछ कहनेकी अशक्यता करके युक्ति के क्षय करके तूष्णी स्थित नहीं भया हूं किंतु इस प्रश्न की कोटी का तूष्णी होना उत्तर है तो भी तुह्मारे संशय की निवृत्ति वास्ते कुछ उत्तर कहता हूं॥१२०॥ हे रामजी! दो प्रकार के

प्रश्न करनेवाले होते हैं उस में एक तत्त्वज्ञ होता है एक अज्ञानी होता है अज्ञानी को उसके समझने योग्य उत्तर देना और ज्ञानी को ज्ञानी-के समझने योग्य उत्तर देना ॥ २१ ॥ हे रामजी! इतने काल तू तत्त्व-ज्ञान को नहीं जानता था तिस से विकल्पसहित उत्तरों का अधिकारी था ॥ २२ ॥ अब तो तत्त्वज्ञानी भया है परमपद में विश्रांत भया है तिस से सविकल्प उत्तरों का पात्र नहीं है ॥ २३ ॥ हे रामजी! पुरुष जैसी वृत्तिवाला होता है सो तैसे वचन को कहता है तिस से मैं तौ वानी से परे परमपद में विश्रांत भया हूं तौ अब तैसा ही उत्तर कहने योग्य है ॥ २४ ॥ हे रामजी! जो पुरुष जीवता ही शांतवृत्ति भया है व्यवहार करता भी मृतपुरुष की समान जडवृत्ति जैसा है तिस को परमपद में प्राप्त भये को जानते हैं ॥ २५ ॥ हे रामजी! अहंता ही परम अविद्या है निर्वाणपद का विरोध करनेवाली है तिस करके ही मूढ पुरुष जानीया है सो ही विक्षिप्त पुरुष की चेष्टा है॥२६॥ ॥ हे रामजी! ऐसा शरदऋतुका आकाश नहीं शोभता है और गंभीर निश्चल भया क्षीर समुद्र भी नहीं शोभता है और पूर्णमासी का चंद्रमा भी ऐसा नहीं शोभता है ऐसा तत्त्वज्ञ पुरुष शोभता है॥२७॥ हे रामजी! जैसे चित्र में लिखी युद्ध करती सेना का युद्ध क्षोभ को नहीं करता है तैसे तत्वज्ञानी पुरुष व्यवहार को करता भी क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष इष्ट प्राप्ति में और अनिष्टप्राप्ति में शांत हो करके व्यवहार करता है तो भी मृतपुरुष की समान जिस के अंतःकरण में व्यवहार का फुरना नहीं होता है सो निर्वाणसुख को अनुभव करता है ॥ २९ ॥ हे रामजी! तिस से संपूर्ण कल्पना के आश्रय को त्याग करके आकाश की समान अंतःकरण में व्यवहार की शून्यता को सेवन कर व्यवहार का नहीं फुरना ही परम कल्याण कहा है इस का विस्मरण होना परम उत्तम पद है ॥ १३० ॥

हे रामजी! जो पुरुष परमतत्त्व में विश्रांत भया है जिस को समदृष्टि भई है और रागद्वेष से रहित भया है तिस को शांतता होनी और व्यवहार दोनों एक समान हैं ॥ ३१ ॥ अथवा इस को निर्वाण की प्राप्ति से शांतता ही शेष रहती है जो मुनि निश्चय करके वासनारहित होवेगा सो व्यवहार को कैसे करेगा ॥ ३२ ॥ हे रामजी! जबलग तत्त्वज्ञानी पुरुष को निर्वाण पुष्ट नहीं भया तबलग सो व्यवहार को करता है और राग-द्वेष-भयादिकों का तिस को उदय होता है॥३३॥ हे रामजी! सो ही ध्यान जानना अथवा समाधि जाननी जो अहंभाव का नहीं फुरना है जो जड नहीं है तिन्हों को जडता की समान निर्वाण सिद्ध होता है वह कैसा है सम चित्तता शांत चित्ततासहित निर्विकार है ॥ ३४ ॥ हे रामादिक तत्त्ववेत्ताजी! वाक्यसमूह के विस्तार करके प्रकट भये जो द्वैत मार्ग और अद्वैत मार्ग हैं तिन के भेदों करके भ्रम को प्रकट करनेवाले मत भेदों करके दुःख की प्राप्ति वास्ते मूढ पुरुषों की समान खेद को मत प्राप्त होओ तुम तत्त्ववेत्ता हो करके भेद दृष्टि को त्याग न करो ॥ ३५ ॥ तत्ववेत्ता पंडितों की संगति करके बुद्धिरूपी तलवार को तीक्ष्ण करके अज्ञानरूपी लता को तिल तिल प्रमाण करके खंडित करो ॥ ३६ ॥ हे रामजी! देहधारी जीवों को दो रोग महाघोर हैं. इस लोक की वांछा और परलोक की वांछा जिन रोगों करके यह जीव संपूर्ण पीडित भये महा घोर दुःख को भोगते हैं॥ ३७ ॥ हे रामजी! अज्ञानी जीव इस लोक के दुःख दूर करने वास्ते भोगरूपी दुष्ट औषधियों करके यत्न करते हैं जब लग जीवते हैं तब लग इहलोक वास्ते यत्न करते हैं और परलोक के सुख वास्ते यत्न नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे रामजी! जो उत्तम पुरुष हैं सो परलोक की महाव्याधिकी चिकित्सा वास्ते शम और सत्संग और आत्मबोध की अमृतरूपी औषधियों करके यत्न करते हैं ॥ ३९ ॥ हे रा-

मजी! जो कोई अवश्य परलोक में होनेवाली नरकरूपी व्याधि की चिकित्सा को यहां ही नहीं करता है सो पुरुष जहां औषध नहीं मिले तहां परलोक में जा करके क्या करेगा जैसे रोगी औषध मिलने के स्थान में चिकित्सा नहीं करे और जहां औषध नहीं मिले तहां जा करके क्या चिकित्सा करेगा ॥ १४० ॥ हे मूढजनो! यह लोक की चिकित्सा करके आयुष्य को वृथा मत क्षीण करो आत्मज्ञानरूपी औषधों करके परलोक की चिकित्सा को जल्दी करो ॥ ४१ ॥ यह आयुष्य पवन करके हलाये पीपल के पत्र के अग्र में लगे जलबिंदु की समान चंचल है इस कारण से परलोक की नरकरूपी व्याधि हरने वास्ते यत्न करके जल्दी चिकित्सा करो ॥४२॥ परलोक की महा-व्याधि की यत्न करके चिकित्सा किये संते इहलोक की व्याधि आप हो जल्दी नाश को प्राप्त होती है ॥ ४३ ॥ हे रामजी! यह आत्मा भोगरूपी कीचड के समुद्र में मग्न भया है सो अपने पौरुष के चमत्कार करके नहीं तारा जावे तो तिस के तरने का और उपाय कोई नहीं है ॥ ४४ ॥ हे रामजी! जो पुरुष अपने मन को नहीं जीते हैं और आत्मज्ञान से रहित है और भोगरूपी कीचड में मग्न भया है ऐसा मूढ है सो आपदों का पात्र होता है जैसे जलों का पात्र समुद्र है ॥४५॥ हे रामजी! जैसे जीवने का पहिला भाग भोगपदार्थों का त्याग है कैसा है वह त्याग राग-द्वेष की शांति को देनेवाला है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! अनेक सुख-दुःखों की प्राप्ति में जो पुरुष आत्मस्वरूप के विचार से नष्ट नहीं होता है सो कदाचित् भी नष्ट नहीं होता है जो सुख-दुःखों की प्राप्ति में नष्ट होता है सो स्वरूप करके नष्ट होता है और शास्त्रों के उपदेश करके क्या प्रयोजन है ॥ ४७ ॥ हे रामजी! जिस को भोगों में इच्छा का उदय भया है तिस को सुख-दुःखादिक बन हे इच्छा करके फिर चिकित्सा नहीं बनती है पहिले इच्छा दूर क-

रने वास्ते चित्त की चिकित्सा करनी ॥ ४८ ॥ हे रामजी! जो पुरुष भोगरसरूपी विषय को खा करके तिस के स्वाद में दिनों दिन प्रीति करता है सो विनाशरूपी अग्नि प्रज्वलित भई में अपने स्वरूप को अक्षय तृण बना करके तिस के बधावने वास्ते गेरता है ॥ ४९ ॥ हे रामजी! चित्त के समाधान करने को इच्छा का त्याग करना कहा है जैसे इच्छा त्यागने से चित्त शांत होता है तैसे सैकडों उपदेशों करके नहीं होता है ॥ १५० ॥ हे रामजी! इच्छा का उदय होना जैसा दुःख है तैसा नरक में भी नहीं है इच्छा की शांति में जैसा सुख है तैसा ब्रह्मलोक में भी नहीं ॥ ५१ ॥ हे रामजी! इच्छा के उदय होने को चित्त नाम करके कहते हैं. इच्छा की शांति को मोक्ष कहते हैं इतने में ही शास्त्र हैं और तप और नियम और इस में ही संपूर्ण होते हैं ॥ ॥ ५२ ॥ हे रामजी! जो पुरुष इच्छा को शांत करने में यत्न नहीं करता है सो नरों में नीच है अपने आत्मा को आप ही दिनों दिन अंधकूप में गेरता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी! यह लोक अपने तरने वास्ते शास्त्रों को और गुरुओं के उपदेश को क्यों चाहते हैं वृथा ही चाहते हैं क्यों तिन्हों को इच्छा के त्यागने से बिना आत्मचिंतन की समाधि नहीं प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ हे रामजी! जिस की बुद्धि केवल इच्छा मात्र त्यागने में असाध्य भई है तिस को गुरुओं का, शास्त्रों का उपदेश व्यर्थ है ॥ ५५ ॥ हे रामजी! इच्छा त्याग बिना एक क्षण भी जावे तिस के वास्ते चौरों करके लूटे पुरुष की समान मेरी चोरी भई है ऐसे कहलावने योग्य है ॥ ५६ ॥ हे रामजी! विवेकरहित आत्मा की जो इच्छा का पूर्ण करना सो ही संसाररूपी वृक्ष के पोषण वास्ते अखंड जलों करके सिंचन बना है ॥ ५७ ॥ हे रामजी! तत्त्वविवेकी पुरुष शास्त्र के विधिनिषेधों का पात्र नहीं है जिस की सर्व पदार्थों की इच्छा शांत भई है तिस को विधिनिषेध से क्या प्रयोजन है ॥ ५८ ॥

हे रामजी! तत्त्वज्ञ का यही लक्षण है जो इच्छा की शांति होवे सो इच्छात्याग कैसा है सर्व लोकों को आनंद करता है और अपने को आत्मा के स्वरूप के अनुभव को करता है ॥ ५९ ॥ हे रामजी! जब दृश्य पदार्थ को रसरहित जाना तब चित्त नहीं फुरता है तब ही इच्छात्याग प्रकट होता है सो ही मुक्ति का रूप है॥१६०॥हे रामजी! जो दुःख को सुख की भावना होवे तो विष भी अमृतरूप होता है धीरबुद्धि पुरुष ऐसा निश्चय करके बोध को प्राप्त भया प्रसिद्ध कहा है ॥ ६१ ॥ हे रामजी! तत्त्ववेत्ता पुरुष को इच्छा और अनिच्छा दोनों समान भई हैं और शांत भई हैं तो भी अनिच्छा के उदय को मैं परम कल्याण के उदय वास्ते मानता हूं॥ ६२॥ हे रामजी! चित्त का विषय भोगों के चेतने के सन्मुख होना ही रूप है तिस को चित्त कहते हैं सो ही संसार है अथवा सो ही इच्छा है तिस से रहित होना ही मुक्ति है ऐसे जान करके इच्छा की शांति को धारण करो ॥ ६३ ॥ हे रामजी! इच्छारूपी छुरी करके बेधे हुए हृदय में शूल जैसी पीड़ा होती है जिस में मणि मंत्र और औषध यह कुछ नहीं कर सकते हैं ॥ ६४ ॥ हे रामजी! योगीश्वर जो जन हैं सो आत्मज्ञान के फुरने से जगत् को आकाश की समान शून्य करते हैं फिर आकाश को ही सत्ताके फुरने करके त्रैलोक्य करते हैं ॥ ६५ ॥ हे रामजी? जैसे आकाश में सिद्धों के संकलपरचना के अनेक नगर हैं तैसे चैतन्यरूपी आकाश में हजारों सृष्टियां हैं ॥६६॥ हे रामजी! तत्त्वज्ञ पुरुष अहंता से रहित भया चैतन्यसत्ता की एकता में वर्त्तमान भया तिस को अणिमादि अष्ट सिद्धयां सूखे हुए पत्र के बरोबर तुच्छ ही भासती हैं ॥ ६७ ॥ हे रामजी! देवता-असुर-मनुष्यों करके सहित त्रैलोक्य में सो वस्तु मेरे को दृष्ट नहीं होती है जो वस्तु विवेकी पुरुष को लोभ का एक रोम मात्र भी अंश

को करे ॥ ६८ ॥ हे रामजी! अविचार करके अहमस्मि अहंभाव है विचार करके अहमस्मि ऐसा अहंभाव नहीं है हे रामजी! अहंभाव को अभाव भये संते जगत् कहां है और संसार कहां है ॥ ६९ ॥ हे रामजी! बुद्धि से आदि ले करके जगत् जिस के फुरने में नहीं है सो आकाश की समान फुरने से शांत भया है उत्तम पुरुष तिस को मुक्त भय कहते हैं ॥ १७० ॥ हे रामजी! संपूर्ण अर्थों से जिसका मन रहित भया है सर्वात्मा रूप हो करके जो स्थित भया है तिस को सर्व प्रकार करके सर्व काल में विश्व शिवरूप चारों तरफ बना है ॥ ७१ ॥ हे रामजी! जो पुरुष वासनारहित भया है भोगपदार्थों के रस से रहित भया है और सर्व प्रकार की इहलोक परलोक की इच्छा से रहित भया है तिस को वेदांतशास्त्र विना और विनोद के कारण निमित्त कौन हैं तिस से शास्त्रार्थ का विचार सज्जनों का सत्संग मुक्त भया है और निर्मल अंतःकरणवाले पुरुष को पदार्थों के फुरने का संबंध नहीं है यही तत्त्वज्ञों का स्वरूप हम लोकों ने माना है ॥ ७२ ॥ हे रामजी! तत्वज्ञ पुरुष का स्वभावरूपी सूर्य जैसे जैसे स्थिर होता है तैसे तैसे भोगवासना का अंधकार गलित होता है सत्य है असत्य है ऐसी प्रतीत में नहीं होता है ॥ ७३ ॥ हे रामजी! यह जगत् विवेक और अविवेक करके प्रकाशमान और असत्यरूप है अविवेक करके भी समान है और विवेक करके असत्य है ॥ ७४ ॥ हे रामजी! विवेक करके पूजित किया यह आत्मा तत्काल महावर को देता है जिस के वरप्रदान में विष्णु रुद्र इंद्रादिकों की पूजा के फल सूखे तृण के तुल्य भी नहीं होते हैं ॥ ७५ ॥ आत्मा ही परम देवता है सो विचार और सत्संग और शमादिक पुष्पों करके पूजन किया हुआ तत्काल मोक्षरूपी वर को देता है तिस से अपना आत्मा ही परमेश्वर है ॥ ७६ ॥ हे रामजी! महात्मा पुरुषों को भी देवतापूजन

तप, तीर्थ और दान किये हुए अविवेक से भस्म में होम के समान वृथा होते हैं ॥ ७७ ॥ हे रामजी! और जो विवेक देवपूजादिक श्रेष्ठ फल को करते हैं तो विवेक को ही अंतःकरण में सिद्ध क्यों नहीं करिये ॥ ७८ ॥ हे रामजी! जिस तिस प्रकार करके विवेक अंतःकरण में दृढता को प्राप्त करना जैसे जैसे फिर अनेक भ्रमों करके नाश को प्राप्त नहीं होवे ॥ ७९ ॥ हे रामजी! विचारवान पुरुष जैसे मिले तैसे स्थित होते हैं, जैसे बने तैसे जाते हैं जैसा बने तैसा कर्माकर्म करते मोक्ष सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १८० ॥ हे रामजी! अथवा संतजन जो हैं सो सर्व त्याग करके शांत और उज्ज्वल भये हैं अंतःकरण जिन्हों का एक एकांत में ही स्थित होवे चित्र में लिखे जैसे आत्मचिंतन की समाधि में स्थित होवे ॥ ८१ ॥ हे रामजी! जैसे जन्म से अंधा पुरुष लोकों से सुन करके नेत्रसहित पुरुष के रूप के अनुभव को वर्णन करता है आप नहीं जानता है और अंतःकरण में संताप को प्राप्त होता है तैसे अज्ञानी पुरुष निर्वाण को वर्णन करता हुआ आप नहीं जानता है संताप को प्राप्त होता है ॥८२॥ हे रामजी! जो पुरुष अज्ञानरूपी ज्वर से मुक्त भया है बोध करके जिस का अंतःकरण शीतल भया है यही तिस का प्रगट लक्षण होता है जो भोगरूपी जल उस को रुचि नहीं करता है ॥८३॥ हे रामजी! तुम चैतन्यसत्ता के आकाश बन जाओ परमानंदरस का पान करो संपूर्ण शंका त्याग करके स्थित हो जाओ और निर्वाण नाम आनंदवनमें स्थित हो जाओ ॥ ८४ ॥ हे रामजी! चित्तरूपी भूमिका में समाधि का बीज जो है सो संसार के निवार्ण सुख करके पडता है सो चित्तभूमिका कैसी है विवेकसहित है और जहां विवेकी जनों का वन है तहां सो चित्तरूपी निर्वाणबीज को गाडने वास्ते शुद्ध और पुष्ट तरोतकर करनेवाले और मधुर और अपने को हित करनेवाला ऐसा

बोध का अभ्यास रूपी अमृतजलों करके सिंचन करने योग्य है॥८५॥ सो कौन है अमृतजल सत्संगरूपी नया क्षीर है चंद्रमा के किरणों की समान शीतल है अंतःकरण से संसार की शून्यता को कर देते हैं और आनंद करके पूर्ण हैं और निर्मल हैं और अमृत की समान शीतल हैं अमृतरूपी नहिरसे प्रगट भये हैं ऐसे शास्त्रार्थरूपी उत्तम जल हैं और संसार की निवार्णशांति को करते हैं ऐसे ध्यानरूपी रस है सो यत्न करके सेवने योग्य है ॥८६॥ हे रामजी ! उस को तपरूपी कमर कोट देना है और पदार्थचिंतारूपी कांटे तोडने योग्य हैं और तीर्थों में विश्राम करनेरूपी वायु देने योग्य है ऐसे करने से निर्वाण का अंकुर उठ खडा होता है ॥ ८७॥ हे रामजी! इस की रक्षा करनेवाला माली गुरु शास्त्र के उपदेशवाला शीतल अंतःकरणवाला मुमुक्ष पुरुष है सो संतोष नामवाला है आत्मतुष्टि को देनेवाली मुदिता नाम्नी स्त्री करके युक्त है॥८८॥हे रामजी! और संपदारूप जो स्त्री है सो तरंगों को फुरने के समान चंचल है सो ही पापकर्मरूपी घनमंडल से प्रकट भई भोग तृष्णारूपी बिजुली पडती है तिन करके निर्वाणवृक्ष दग्ध हो जाता है ॥८९॥हे रामजी ! निर्वाणवृक्ष को सुकावनेवाले संसार की आपदा और संपदा विघ्न हैं तिन्हों को दूर करने वास्ते धीरता और उदारता और जप स्नान दान ओंकारादि मंत्र और शिवजी के ध्यान करने करके विघ्न हटावने और निर्वाणवृक्ष की रक्षा करनी ॥ १९० ॥ हे रामजी ! इस प्रकार करके रक्षण किये ध्यानबीज में विवेकरूपी अंकुर होता है सो अपनी शोभा करके प्रसिद्ध होता है समृद्धियुक्त होता है तिस अंकुर से दो पत्र निकसते हैं एक शास्त्रविचार दूसरा सत्संग होता है अंतःकरण की स्थिरतारूपी इस का पेड निकसता है संतोष करके विस्तार को प्राप्त होता है वैराग्यरस करके पूर्ण होता है शास्त्रार्थ और सत्संग और वैराग्यरस करके स्थूल होता है रागद्वेषरूपी वानरों

के क्षोभ करके भी किंचिन्मात्र भी कंपायमान नहीं होता है ॥९१॥ हे रामजी! प्रकट वचन कहना और सत्य बोलना सत्यरूप भासना और धीरता और निर्विकल्पता और समता और शांतता और मैत्री और करुणा और कीर्त्ति और विशालता और अधीनता ऐसे उत्तम गुणोंवाले पत्र जिन्हों की ऐसी लता हैं जिन्हों का यश पुष्प है तिन करके युक्त होता है जैसे कल्पवृक्ष कल्पलतायुक्त होता है ॥ ९२ ॥ हे रामजी! ऐसे निर्वाणवृक्ष को मुमुक्षुरूपी मुसाफिर छाया में आन बैठते हैं जिन्हों को दैवयोग से पिछले प्रारब्ध कर्मरूपी यात्रा की मजल पूरी होती है और पुण्यकर्मों करके भोगों विषें विरक्तता होती है जैसे मुसाफिर मारवाड के स्थलों में विरक्त होता है ॥ ९३ ॥ हे रामजी! अंतःकरण में तत्त्वविचार करके पूर्ण भया है व्यवहार में क्षीण भया जैसा है संसार की वृत्तियों में सोया जैसा है अंतःकरण में आनंद करके पूर्ण मन भया और इंद्रियों की विषयवासना में मौन को प्राप्त भया ऐसा पुरुष विवेकवृक्ष की छाया में स्थिति करने को जाता है. विषयों में परम वितृष्णता को समाधान कहते हैं सो जिस ने धारण किया है सो मनुष्यरूप करके परब्रह्म है तिस को नमस्कार करते हैं ॥९४॥ हे रामजी! विषयों से अत्यंत तृष्णा जो त्यागनी है सो वज्र के समान अभेद्य और संपूर्ण वासनाजाल को पूर्ण करनेवाला वज्र नाम ध्यान कहा है तिस ध्यान करके और तत्त्वज्ञान करके भेद गलित भये संते तृण समान और ध्यान करके क्या कार्य है ॥ ९५ ॥ हे रामजी! तत्त्वविवेकी पुरुष शास्त्रश्रवण पाठ करना जप करने को अंत में समाधि में तत्पर होवे समाधि के अंत में शास्त्र श्रवण पाठ जपों को करे वृथा और कृत्य में आसक्त नहीं हो ॥ ९६ ॥ हे रामजी! बागबगीचा में पुष्पसमूह करके शोभायमान वृक्ष लता के कुंजवन में धूप गरमी रहित आनंदयुक्त ऐसा विश्राम नहीं प्राप्त होता है

जैसा संतजनों के समागम में होता है ॥ ९७ ॥ हे रामजी! वसंतऋतु और नंदनवन और शरदऋतु का पूर्ण चंद्रमा और स्वर्ग की अप्सरा इन सब का आनंद एक तर्फ होवे और संतोषरूपी अमृत का आनंद एक तर्फ होवे तो भी संतोषामृत के आनंद समान नहीं होता है ॥ ९८ ॥ हे रामजी! द्रव्य का उपार्जन और रक्षा करने में महाकृपणता और दीनता को जानता भी है तो भी जो मूढ पुरुष द्रव्य में इच्छा को धारण करता है सो मनुष्यों में पशु है तिस को स्पर्श नहीं करना ॥ ९९ ॥ हे रामजी! हे महाबुद्धे!! जो कोई परमेश्वर को चिरकाल की भक्ति करके दिनरात्र प्रसन्न करे तिस को परमेश्वर निर्वाण को देता है ॥ २०० ॥ हे रामजी! जो पुरुष मन के बाहिर के प्रारंभ को और अंदर के आरंभ को तृष्णात्यागरूपी शस्त्र करके छेदन करता है तिस को खेती छेदने से जैसे खेती का क्षेत्र प्रकट देखा जाता है तैसे इच्छा-द्वेष सुख-दुःख बुद्धि धृति महाभूत और अहंकार चित्त महत्तत्त्व इस प्रकार का क्षेत्र तत्त्वज्ञान करके प्रकट प्रतीतिद्वारा प्रकाशमान होता है तिस से सो पुरुष क्षेत्रज्ञ होता है ॥१॥ हे महाबुद्धे! हे श्रीरामचंद्रजी! ईश्वर दूर नहीं है और दुर्लभ नहीं है महातत्त्वबोध ही तिस का रूप है ऐसा अपना आत्मा ही परमेश्वर है ॥२॥ हे रामजी! सो महात्मा प्रसन्न होता है सो ही महादेव है सो ही परमेश्वर है प्रसन्न हो करके विवेकरूपी दूत को प्रेरण करता है शुभ चरित्रों करके पवित्र जानता है ॥३॥ सो विवेकरूपी दूत इस को शुद्ध जान करके इस के हृदयरूपी मंदिर में आत्मारूपी परमेश्वर को प्राप्त करता है तब आत्मा हृदय में आनंद करके निवास करता है जैसे निर्मल आकाश में चंद्रमा शोभता है ॥ ४ ॥ हे रामजी! इस तत्त्ववेत्ता विवेकी पुरुष को विवेक के बल से आत्मा को हृदय में स्थित करना और मोहनिद्रा को त्यागना और वासनासमूह का मिल

दूर करना और संसार की वासना का घन पिंजरा बोधमुद्गर करके तोड करके अपने स्वरूपानंद के उदय में सावधान रहना अज्ञानी पुरुष की समान जड नहीं होना उचित है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यह जो दश दिशाओं में दृष्ट होता है मनुष्य और नाग और देवता असुर पर्वत गंधर्वादि नाम करके प्रसिद्ध हैं सो केते स्वप्न जागरणवाले हैं केते संकल्प जागरण में हैं केते केवल जागरण में हैं केते चिरकाल से जागरण में हैं केते घने जागरण में हैं केते जाग्रत स्वप्न में हैं केते क्षीण जागरण में हैं इस प्रकार के सात प्रकार के जीव हैं ॥ ६ ॥ हे रामजी ! कोई किसी कल्प में किसी सृष्टि में भये कोई किसी जगत् में भये केते पिछले कल्प में सोये हैं अब लग जागे नहीं हैं ॥७॥ जो इस जगत् को स्वप्न जानते हैं तिन्हों को यह जगत् स्वप्ना है तिन जीवों को तू स्वप्न जागरत में जान जीवन के कथाप्रसंग की समान जीवते हैं जीवने का अभिमान जिन्हों को नहीं है सो जीवने को स्वप्ना जानते हैं ॥ ८ ॥ जो पुरुष कहीं कल्प में सो गये हैं और तिस सृष्टि में तिन्हों को जो स्वप्ना भया है सो यह हमारी सृष्टि का व्यवहार है उन्हों के स्वप्न के मनुष्य हम हैं ॥ ९ ॥ हे रामजी ! किसी पिछले कल्प में किसी लोक में किसी देश में कोई प्राणी निद्रारहित हैं केवल मन के संकल्प में तत्पर हैं फिर तिस संकल्प के अंत में और संकल्प को करते हैं तिन्हों के संकल्प के पुरुष यह हम लोक स्थित भये हैं ॥ २१० ॥ हे रामजी ! केते ज्ञान के अथवा योग के आदि सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के साथ अवतार को प्राप्त भये हैं और ब्रह्मा के दिनरूपी कल्प के आदि अंत में उत्पत्तिविनाशरहित हैं और सृष्टि के प्रवाह करके जगत् में अरहठ की घडी सरीखे आय प्राप्त होते हैं पाहिली सृष्टि के जन्मवाले हैं सो केवल जाग्रत अवस्थावाले हैं ॥११॥ हे रामजी ! जो जीव जन्मजन्मांतर को प्राप्त भये हैं अपने स्वभाव

के संस्कार करके पिछले जन्मजन्मांतरों के ज्ञान करके सहित भये हैं किसी कार्य कारण करके संसार में प्राप्त भये हैं आत्मज्ञान के प्रकाश को प्राप्त हैं सो चिरकाल के जाग्रत में हैं ॥ १२ ॥ हे रामजी! कोई प्राणी ज्ञान को प्राप्त भये हैं परंतु कोई दुष्ट कर्म के वेग से वृक्षादिक जडभाव को प्राप्त भये हैं तौ भी अंतःकरण में ज्ञान करके घनी जाग्रत जैसी जिन्हों की अवस्था है सो घन जाग्रत में हैं ॥१३॥ हे रामजी! जो जीव शास्त्रार्थ का विचार करके सत्संग करके बोध को प्राप्त भये हैं ऐसे तत्त्ववेत्ता हैं सो जाग्रत को स्वप्न के समान देखते हैं सो जाग्रत स्वप्न में हैं और ज्ञान की छडी भूमिका में हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी! जो बोध को भली तरह से पा रहे हैं और परमपद में विश्राम को प्राप्त भये हैं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति से रहित हैं सो तुरीयावस्था में हैं सो जीवन्मुक्त हैं ॥ १५ ॥ हे रामजी! यह सात प्रकार जीवों का भेद मैं ने तुह्मारे प्रति कहा है कैसा है समुद्रों के समान कहने जानने में अगाध है इस को जान करके अपने कल्याण में सावधान रहो ॥ १६ ॥ हे रामजी! जितना स्थावर जंगम जड चैतन्य जगत् के पदार्थों का समूह है और जैसे जाग्रत अवस्था में प्रतीत होता है जैसे स्वप्ना में नगरादिक असत्य प्रतीत होते हैं संपूर्ण केवल स्वप्नमात्र हैं तैसे यह केवल चैतन्य ही परमाकाशरूप है ॥ १७ ॥ हे रामजी! इस प्रसंग में एक मेरे से पाषाणाख्यान कथाप्रसंग को श्रवण करो वह कैसा है कथा के रसवाला है पाहिले मैं ने देखा है आश्चर्यरूप है और प्रसंग के योग्य है ॥ १८ ॥ हे रामजी! मैं किसी काल में अत्यंत विरक्त भया त्रिलोकी में अनेक प्रकार के विक्षेपों करके व्याकुल भया मन में चिंतन करता हुआ दूरदेश में विक्षेपरहित स्थान में आकाश के कोण में सुंदर कुटियां बना करके दृढ समाधि में स्थित भया ॥ १९ ॥ शत

वर्ष से उपरांत समाधि से जाग्रत भया तिस काल में प्राणायाम उतार करके जाग्रत अवस्था के ज्ञान के अंश को मैं प्राप्त भया तब अहंकार नामा प्रसिद्ध पिशाच इच्छारूपी अंगना करके सहित देहरूपी घर में आय प्राप्त भया. ज्ञान के अंश के लय को प्राप्त करता भया जैसे उग्र पवन वृक्ष को उखाड देता है ॥ २२० ॥

श्रीरामजी का प्रश्न—हे ब्रह्मन्! तुम सदा निर्वाण के उदयसहित हो ऐसे तुम को भी अहंकार नाम पिशाच बाधा करता है यह मेरे को संदेह भया है तिस को शांत करो ॥ २१ ॥

श्रीवासिष्ठजी का वचन—हे रामजी! अहंभाव विना ज्ञानी की क्या अज्ञानी की देह स्थिति आधार विना नहीं बनती है॥ २२॥ हे रामजी! अज्ञानी से विश्रांत चित्तवाले ज्ञानी के इस विशेष को तू श्रवण कर जिस के श्रवण करके तेरा अहंभाव पिशाच शांत होवेगा ॥ २३ ॥ हे रामजी! यह अहंकार पिशाच असत्य है तो भी अज्ञानरूपी बालक ने कल्पित किया है तिस करके स्थित रहा है ॥२४॥ हे रामजी! अज्ञान भी सत्य नहीं है विचारवाले पुरुष को देखनेमात्र से क्षीण होता है जैसे दीपवाले से अंधेरा दूर होता है ॥ २५ ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी पिशाचनी जैसे जैसे विचारपूर्वक देखी है तैसे तैसे लीन होती है ॥ २६ ॥ हे रामजी! यह अज्ञान छठे मनसहित पांच इंद्रियों के स्वरूपवाला है और इंद्रियों करके प्रत्यक्ष स्वरूप करके साकार प्रतीत होता है तिस साकार का निराकार किस प्रकार करके कारण होता है कैसा है निराकार छठे मनसहित पांच इंद्रियों की गोचरता से परे है॥२७॥ हे रामजी! संकलपरूपी आकाश में जो कुछ वृक्षादिक अथवा संपूर्ण आकाशादिक दृष्ट होता है सो संकल्प ही तिस रूप करके प्रतीत भया है तिस संकल्प के पदार्थ में पदार्थसत्ता नहीं है

॥२८॥ हे रामजी! इसी प्रकार करके चैतन्यरूपी आकाश में जो सृष्टि से आदि जगत् का अनुभव होता है सो शून्यरूपी आकाश में सृष्टि की अखंड स्थिति संकल्प से ही भासती है वास्तव्य नहीं है ॥२९॥ हे रामजी! ऐसी भावना स्थित भये संते सृष्टि कहां है और अविद्या कहां है और अज्ञान की मूढता कहां है ॥ २३० ॥ हे रामजी! मैं ने आत्मविचार करके संपूर्ण प्रशांत और चित्तसत्ता करके परिपूर्ण और आनंदघन ब्रह्म जाना है तहां अहंकारादिक कहां है इस प्रकार करके संपूर्ण निष्फल जाना है तिस से अहंकार वर्त्तमान है तो भी शरदऋतु के घनघटा की समान निष्फल जाना है ॥ ३१ ॥ हे रामजी! जब मैं सौ वर्ष समाधि करता भया तिस काल में प्राणायाम के वेग करके एक शब्द होता भया तिस शब्द के करनेवाले को जानने वास्ते चिदाकाश की धारणा में स्थित हो करके तिस चिदाकाश की धारणा में अनेक सृष्टि आपस में भिन्न भिन्न लक्षणवालियों को देखता भया तिनों में एक सुंदरी को आर्याछन्द पढती को देखता भया ॥ ३२ ॥ हे मुने! यह संसार की प्रतीति असत्य ही प्रतीत है और चैतन्यता से रहित ही मोहवाले को व्याप्त होती है मैं इस को अवलंबन करके जैसे कोई आकाश में नृत्य करे तैसे भ्रमती भई तुह्मारे को बुलावती हूं ॥ ३३ ॥ हे रामजी! ऐसे कहती तिस स्त्री का अनादर करके मैं फिर चिदाकाश की धारणा करता भया तहां चिदाकाश की सत्ता में मैं प्रलयादिक को देखता भया ॥ ३४ ॥ तिस चिदाकाश में रुद्रों के अनेक सहस्र और ब्रह्मा की अनेक शतकोटी और विष्णु के अनेक लक्षों को और कल्पों की कोटि पद्मों को प्रलय को प्राप्त भये को देखता भया ॥ ३५ ॥ तिस को कहीं सूर्य बिना ही दिन रात्रि ज्ञान से रहित भूलोक में कल्प युग वर्ष मर्यादारहित जगत् के उदय अस्त को देखता भया ॥३६॥ तिस में मेरे समान वसिष्ठ नामवाले ब्र-

ह्मा के पुत्र अनेक मुनीश्वर मेरे से भी उत्तम मैं ने देखे हैं ॥ ३७ ॥ तहां अनेक ब्रह्मांडों में जगत् के लक्षों में अनेक नामरूप को धारण करते अनेक प्राणी देखे हैं ॥ ३८ ॥ तहां मैं ने चंद्रमा के बिंब गरमी सहित देखे हैं और सूर्य बिंब शीतल देखे हैं और विष खाने करके जीवते देखे हैं और अमृत पान करके मृत होते देखे हैं और पत्र पुष्पों करके शोभित वृक्षों के वन आकाश में देखे हैं और रेतियों के पीडने से तैलघृत निकसते देखे हैं और पाषाण शिला में कमल उदय होते देखे हैं ॥ ३९ ॥ हे रामजी! चिदाकाश कैसा है अंतर से रहित है आकाश का भी परम आकाश है अंत से रहित है उदय से रहित है जिस में अनेक चिंताओं की संख्या से रहित है और अनेक जगत् सृष्टिओं से रहित है ॥ २४० ॥ हे रामजी! तहां एक एक आकाश प्रति अनेक संसारों के मंडल हैं तिन संसारमंडलें में अनेक लोक हैं और तिन्हों में अनेक द्वीप हैं तिन द्वीपों में अनेक पर्वत हैं और तिन पर्वतों में अनेक देश हैं तिन देशों में अनेक ग्राम और नगर हैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी! तिन्हों में एक एक प्रति अनेक और अनेकों में और अनेक कल्प और अनेक युगों के सहस्र देखे हैं ॥ ४२ ॥ हे रामजी! जेते जीवतत्त्व ज्ञान से रहित हैं और मोक्ष को प्राप्त नहीं भये हैं सो सब ही जो जो मृत भये हैं सो तिन सृष्टियों में सब ही अनेक प्रकार के वर्त्तमान हैं ॥ ४३ ॥ हे रामजी! इस कारण से सो संपूर्ण संसार आपस में भिन्न भिन्न है और अपने अपने प्रवाहरूप करके अखंड वर्त्तमान है ॥ ४४ ॥ हे रामजी! तिन्हों के अंदर जो जीव हैं तिन्हों में एक एक प्रति एक एक मन है और एक एक मन प्रति एक एक जगत् है और एक एक जगत् प्रति अनेक अनेक मन हैं ॥ ४५ ॥ हे रामजी! इस प्रकार करके यह जगत् का भ्रम आदिअंत से रहित है सो ब्रह्मवेत्ता जनों के पक्ष में

संपूर्ण ब्रह्म ही है इस की संख्या की मर्य्यादा नहीं है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! इस प्रकार करके मैं चिदाकाश में अनेक प्रकार करके संसार के भ्रम को देखता रहा हूं सो विद्याधरी स्त्री मेरे पास स्थित रही है तिस को देख करके मैं ने कहा तू कौन है यहां क्यों आई है और कहां तेरा स्थान है सो कहो ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! तब सो विद्याधरी कहती भई हे मुने! लोकालोकपर्वत की उत्तर दिशा के किनारे पहिले शृंग की शिला में संसार है तिस में एक ब्राह्मण है तिस की मन से कल्पन करी मैं स्त्री हूं सर्व सिद्धियुक्त हूं और सर्वसिद्धिमती मेरा नाम है तिस ब्राह्मण ने मेरे विषे विरक्ति करी है तिस को विरक्त भये को देख करके मैं भी विरक्त भई हूं तेरे पास प्राप्त भई हूं ॥ ४८ ॥ हे मुने! सो मेरा भर्त्ता वेदों के अर्थ को एकांत में चिंतन करता है संपूर्ण विषयभावना से रहित भया है काल करके जगत् के आने जाने को नहीं जानता है ॥ ४९ ॥ हे मुने! तिस से मेरा भर्त्ता तत्त्ववेत्ता भी है परंतु केवल वेदों के अर्थ मात्र ही विचारता है आत्मचिंतन से रहित है इस से परमपद को प्राप्त नहीं भया है तिस से मैं भी मेरा भर्त्ता भी हम दोनों ही यत्न करके परमपद को चाहते हैं ॥ २५० ॥ हे मुने! हे ब्रह्मन्!! तिस से मैं तुह्मारी प्रार्थना करती हूं तिस को तुम सफल करने को योग्य हो महात्मा पुरुषों विषे प्रार्थना निष्फल नहीं होती है ॥२५१॥ हे मान को देनेवाले! मैं अनेक सिद्धों की मंडलियों में भ्रमती भई तुह्मारे पास आई हूं तेरे विना संसारदुःख को निवारण करनेवाला मेरे को प्रतीत कोई नहीं भया ॥५२॥ हे मुने! संतजन अपने कार्य के निमित्त विना ही अर्थिजनों की वांछा को पूर्ण करते हैं तिस से मैं भी शरणागत भई हूं मेरा अनादर करने को तुम योग्य नहीं हो ॥ ५३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! शिला में संसार कैसे

होवे इस आश्चर्य करके व्याकुल भया मैं तिस विद्याधरी के साथ ही इस संसार को लंघ करके लोकालोकाचल के शिखर की शिला को प्राप्त हो करके विद्याधरी को मैंने पूंछा यहां संसार कहां है ॥ ५४ ॥ विद्याधरी कहती है- हे मुने! यह हमारे को जगत् पहिले बना है सो मेरे को प्रकट प्रतीत होता है जैसे दर्पण में प्रतिबिंब होता है तैसे अंतःकरण में प्रतीत होता है ॥ ५५ ॥ हे मुने! यह अंतःकरण में संकल्प की कथारूपी चिरकाल से पीडा वृथा ही उदय भई है इस करके आत्मसुख निर्मल भी है और विशाल भी है तो भी विस्मृत भया है ॥ ५६ ॥ हे मुने! तिस से यह संसारभ्रम जडरूपी अंतःकरण में संकल्प के अभ्यास से प्रतीत भया है और जो शुद्ध चैतन्यमात्र आकाशरूपी है तिस के चिंतन का जो अभ्यास है तिस के आनंद का जो रस है तिस करके पुरुष तद्रूप होता है तो संकल्प फुरने की अवधि हो जाती है ॥५७॥ हे मुने! जो शुद्ध चैतन्य सत्ता करके जो आनंदरस नहीं होवे तो शास्त्रों करके संन्यास करके कुछ नहीं होता है आत्मचिंतन विना जो आनंदरस होता है सो नहीं भये जैसा है तिस से शुद्ध चित्कलाचिंतन के अभ्यास को करे ॥ ५८ ॥ हे मुने! तू सब का गुरु है मैं तेरी शिष्या हूं और अबला हूं और बाला हूं मैं तेरे को देखती हूं और तू मेरे को नहीं देखता है तू सर्वज्ञ है तो भी तू मेरे को नहीं देखता है यह अंतःकरण शिला जैसा जड है इस में संकल्प के अभ्यास से प्रपंच विस्तार को प्राप्त भया है ॥ ५९ ॥ हे मुने! अभ्यास से अज्ञानी भी तत्त्ववेत्ता होता है और जड भी कार्य को करता है जैसे बाण भी अभ्यास से निशाने को जाय लगता है यह संपूर्ण अभ्यास का विलास है ॥ २६० ॥ हे मुने! पुण्य भी अभ्यास विना निष्फल होते हैं और संपूर्ण कला भी अभ्यास विना निष्फल होती हैं भाग्य भी निष्फल होते हैं तिस से अभ्यास कदाचित

निष्फल नहीं है ॥ ६१ हे मुने! जिस ने अभ्यास त्याग दिया है सो इष्टवस्तु को कदाचित् भी नहीं प्राप्त होता है जैसे वंध्या स्त्री अपने पुत्र को नहीं प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ हे मुने! अभ्यास से असाध्य भी सिद्ध होते हैं शत्रु भी मित्र होते हैं विष भी अमृता होते है यह अभ्यास नामा सूर्य लोक में प्रकाश भये संते बन में समुद्र में क्या दूर देशांतर में स्वर्गादिक में नहीं है जो अभ्यास करनेवाले महावीर पुरुष को सिद्ध नहीं होवे ऐसा कोई नहीं है अभ्यास से लोक में भय भी अभयरूप होता है अभ्यास से ही संपूर्ण पर्वतों की निर्जन कंदरा में निर्भय निवास होता है ॥ ६३ ॥ हे मुने! तिस से प्राचीन संस्कार से बोध की धारणा का अभ्यास करने से जगत् तेरे को शिला में कमल की समान असंभववाला प्रतीत होवेगा ॥ ६४ ॥ हे मुने! प्राचीन वासना के अभ्यास से यह जगत् शिला में कमल जैसा प्रतीत होता है और बोध के अभ्यास विना असत्य प्रतीत नहीं होता है तिस के बोध का अभ्यास अवश्य करने योग्य है ॥ ६५ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! तिस विद्याधरी ने ऐसी युक्तियुक्त वचन कहे संते तिस से उपरांत मैं पद्मासन बांध करके समाधि के अभ्यास में उद्यत होता भया ॥ ६६ ॥ हे रामजी! केवल चैतन्यमात्र की एकांत भावना करके संपूर्ण पदार्थों की भावना को त्यागने से जितना जो नाम मात्र अहंभाव था तिस अहंभाव के अभ्यास को मैं त्यागन करता भया ॥ ६७ ॥ हे रामजी! तिस से सत्यरूप एक आत्मा की एकांत दृढ भावना के अभ्यास से समाधि स्थिर होती भई अहंभाव की भ्रांति अस्त होती भई ॥६८॥ इस से उपरांत जब मैं ने अपने आत्मा का निर्मल प्रकाश देखा तब मेरे को आकाश और अहंभाव शिला में कमल की भ्रांति जैसा लय को प्राप्त होता भया केवल परम ब्रह्मस्वरूप प्रतीत होता भया ॥ ६९ ॥

जैसे स्वप्ने में अपने घर में महाशिला दृष्ट होती है सो केवल अपने अंतःकरण का चैतन्य ही तद्रूप भया है शिला तहां कोई नहीं है तैसे यह संपूर्ण विश्व शुद्ध चैतन्य ही है सो तद्रूप प्रतीत भया है ॥ ॥ २७० ॥ हे रामजी ! अपने संकल्प का फुरना ही अति वाहिक शरीर करके प्रत्यक्ष पहिले कहा है सो ही माया करके सत्यरूप सर्वत्र व्याप्त होता है तिस को ही तू आधिभौतिक शरीररूप भये को जान ॥ ७१ ॥ हे रामजी! यह आधिभौतिक देह आत्मविचार करके कुछ नहीं प्रतीत होता है जैसे मारवाड के थल में सूर्य की किरणों करके समुद्र जो प्रतीत होता है सो अपने चित्त की भ्रांति ही तद्रूप प्रतीत होती है वास्तव विचार से मिथ्या प्रतीत भई है ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! सब का आदि और सत्य और प्रत्यक्ष प्रतीत ऐसे आत्मविचार के सुख को त्याग करके जो कोई असत्यरूप और भ्रम करके मध्य में ही प्रतीत भये कल्पना मात्र सुख को दृढता मान करके मग्न भया है सो प्रत्यक्ष प्राप्त भये शीतल जल को त्याग करके रेती की चमक में भ्रांति करके प्रतीत भये जल करके तृप्ति को चाहता है ॥ ॥ ७३ हे रामजी ! जो सुख क्षण में नष्ट होवे और क्षण मात्र ही अनुभव होवे है सो दुःखरूप ही है जो सुख स्वभाव करके है और आदिअंत में एक जैसा है सो ही सुख कहा है ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! जिस में प्रत्यक्ष ही असत्यता प्रतीत होवे तिस में सत्यता और अखंड आनंदता कहां से होवेगी जो वस्तु असत्य सामग्री करके सिद्ध होवे सो सत्य कहां से होवे ॥ ७५ ॥ हे रामजी! यहां प्रत्यक्ष ही अभाव प्रतीत होवे है तहां अखंड सुख की क्या वार्त्ता है जहां हाथी वहि जाते हैं तहां मेंढे के वहिने की क्या गिनती है ॥ ७६ ॥ हे रामजी! यह परमात्मा सर्वत्र एक जैसा निरंतर व्याप्त भया है और बोधरूप है और चैतन्यरूप है तिस को जानने विना जो कोई असत्यरूप और तुच्छ

सुखवाले पदार्थ में दृढ मान रहे हैं सो मूढ पुरुष हैं और तृण समान रूप हैं और कपटी हैं तिन्हों की संगति नहीं करनी ॥ ७७ ॥ हे रामजी! ऐसा विचार करने से उपरांत चैतन्य में प्रतिबिंबित भये जगत् में विद्याधरी के साथ ही मैं प्रवेश करता भया तब विद्याधरी ब्रह्मलोक में प्राप्त हो करके मेरे को कहती भई ॥ ७८ ॥

विद्याधरी का वचन—हे मुने! यह ब्रह्मा मेरे को विवाह करनेवास्ते प्रकट करता भया. मैं वृद्ध भी हो गई तो भी नहीं व्याही गई. इस कारण से मैं विरक्त भई हूं तिस से तू मेरे व्याह के कारण ब्रह्मा को बोधन कर ॥ ७९ ॥

श्रीवसिष्ठजी का वचन—हे रामजी! सो विद्याधरी ऐसा कह करके ब्रह्मा को कहती भई हे स्वामिन्! वसिष्ठ मुनि तुह्मारे घर आया है इस का आदरसत्कार करो ऐसा कह करके ब्रह्मा को समाधि से उठा करके सावधान करती भई ॥ २८० ॥

तब श्रीब्रह्माजी का वचन—हे वसिष्ठजी! तुम ने इस विश्व को हाथ में आमलक फल जैसा साररहित देखा है और तुम बोधरूपी अमृत के समुद्र हो तुह्मारे को यहां आने से सुख होवे तुम को कुशल है ॥ ८१ ॥ हे वसिष्ठजी! तुम बहुत दूर मार्ग से चल करके आये हो और तुम मार्ग के खेद को विश्राम करके दूर करो और यहां आसन पर बैठो ॥ ८२ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! तिस से अनंतर मैं आसन ऊपर बैठा ब्रह्माजी ने देवगणों करके मेरी पाद्यादिक पूजा कराई तब मैं ने ब्रह्माजी को प्रश्न किया हे भगवन्! तुम भूत भविष्यत् वर्तमान कालज्ञान के स्वामी हो यह विद्याधरी तुह्मारे को बोध करने वास्ते मेरे को क्यों प्रेरणा करती है और कहती है हे वासि-

ष्ठजी! तुम अपनी वाणी करके और ज्ञान करके ब्रह्माजी को बोधन करो ॥ ८३ ॥ हे महाराज! तुम सब भूतों के ईश्वर हो संपूर्ण ज्ञान के पार को देखनेवाले हो तुम ने यह विद्याधरी विवाह वास्ते प्रकट करी ऐसा यह कहती है तो तुम ने व्याही कैसे नहीं है यह विरक्त भई कैसे भ्रमती है इस का कारण कहो ॥ ८४ ॥

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—हे मुने! जैसा वृत्तांत भया है तिस को तू सुन मैं सब ही करता हूं जिस से संतजनों के आगे सब ही सत्य कहने योग्य होता है ॥ ८५ ॥ हे मुने! आदि सब का एक परब्रह्म है सो जन्म से रहित है और शांत है जीर्ण होने से रहित है किंचिन्मात्र है कहने में चिंतन करने में श्रवण करने में देखने में नहीं आवे है और सत्तामात्ररूप है और चैतन्यमात्र है तिस चिन्मात्रस्वरूप का एक चैतन्य का अंशमात्ररूप मैं जगत् में कथन मात्र ही हूं ॥ ८६॥ सो मैं भी पहिले आकाशरूपी हूं अपनी स्वरूपसत्ता में सदा रहता हूं मेरे आगे सृष्टि होती है तो मेरे को स्वयंभू कहते हैं ॥ ८७ ॥ वास्तव विचार से मैं उत्पन्न नहीं भया न कुछ देखता हूं चिदाकाशरूपी मैं चिदाकाश में ही रहता हूं ॥ ८८ ॥ जो कुछ हम हैं तुम हो ऐसा जो आपस में कहना है सो जैसे तरंग के आगे और तरंग कहा जाता है तैसे वृथा कहना मात्र है वास्तव नहीं है ऐसी मेरी मति का विचारना है ॥ ८९ ॥ हे मुने! ऐसे रूपवाले शुद्ध चैतन्यरूप को काल के वेग से मैं हूं यह मेरी है ऐसी वासना उदय भई है परंतु आत्मस्वरूप विचारने से नहीं उदय भई जैसी है ॥ २९० ॥ हे मुने! सो अहंभाव की वासना है तिस की भ्रांति जगत् की स्थिति करके सिद्ध भई है तिस का स्वरूप यह विद्याधरी है यह विद्याधरी अपनी वासना के वेग से मैं ब्रह्मा की घरवाली हूं ऐसे भाव को प्राप्त भई है यह आप ही अपने भाव करके वृथा दुःख को प्राप्त भई है जिस का

रण से यही मेरे अंतःकरण की वासना है ॥ ९१ ॥ हे मुने! अब मैं चिदाकाशरूप भया हूं तिस से अब चिदाकाशरूप की स्थिति को ग्रहण करना चाहता हूं तिस से अब विश्व के क्षय का काल प्राप्त भया है ॥ ९२ ॥ हे मुनींद्र! अब महाप्रलय का समय प्राप्त भया है अब मैं ने वासनारूपी इस विद्याधरी को त्यागने का प्रारंभ किया है तिस यह मेरे विचार से रस करके वर्जित भई है अब इस को मैं नहीं चाहता हूं ॥ ९३ ॥ हे मुने! अब ही कल्प का अंत प्राप्त भया है और महाकल्प ब्रह्मा का प्रलयकाल सो भी प्राप्त भया है अब मेरी वासना का अंत प्राप्त भया है और मेरा देह आकाश में लय होवेगा ॥ ९४ हे वसिष्ठ! तिस से अब तू भी अपने आसन में अपने ब्रह्मांड को चला जा और शांति को प्राप्त हो और जैसे अहंकार बुद्धि आदि मनसहित इंद्रियां हैं सो सब ही अपने अपने स्थान को जावें हम अब ब्रह्मपद को जाते हैं ॥ ९५ ॥ हे रामजी! सो ब्रह्मा भगवन् ऐसा कहके ब्रह्मलोकवासी जनों करके सहित पद्मासन को बांध करके समाधि में स्थित होता भया ॥ ९६ ॥ हे रामजी! ओंकार की तीन मात्रा हैं उदात्त अनुदात्त स्वरित नामवाली हैं चौथी अर्द्ध मात्रा है जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिवाली है और अर्द्ध मात्रा तुरीया अवस्था है सृष्टिस्थितिलयरूप है आनंदरूप है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जिन्हों के देवता हैं चौथी का देवता ईश्वर है ॥ ९७ ॥ सो ब्रह्मा तीन मात्रा से परे चौथी अर्द्धमात्रा के अंत में ध्यानावस्था करके स्थित होता भया संपूर्ण मन की वासना मनसहित लीन होती भई जैसे चित्र लिखा होता है तैसे निश्चल होता भया और अहंभाव की वेदना शांत होती भई ॥ ९८ ॥ हे रामजी! सो वासनारूपी विद्याधरी तिस के ध्यान में शांत होती भई संपूर्ण अंशों करके सहित आकाश की समान शून्य हो करके शांत होती भई ॥ ९९ ॥

हे रामजी ! जब संकल्प करके ब्रह्मा रहित होता भया तब मैं भी सर्वव्यापी अनंत चैतन्याकाशरूप होता भया रूप हो करके पृथिवी को देखता भया ॥ ३०० ॥ तब पृथिवी में मनुष्यलोक अपने वर्णाश्रम धर्म से रहित भये केवल अन्न की उपजीवका वास्ते खेती व्यापारसेवा को करने लगे और देश नगर ग्राम सब ही संपदा से रहित भये शृगाल और चोर भय करके उजाड हो गये ॥ १ ॥ और स्त्रियां अपने कुल की मर्य्यादा को और पतिव्रताधर्म को त्याग करके केशों का शृंगार करके वेश्या के धर्म में वर्तमान होती भई और राजे लोग प्रजापालनरूपी राजधर्म को त्याग करके केवल द्रव्य के संग्रह में प्रवृत्त होते भये ॥ २ ॥ हे रामजी ! सब का आचार शूल की समान दुःख को बधावनेवाला होता भया और प्रजा के राजों की बिगाड करके पीडित भई जैसी दुःखरूपी शूल करके व्याकुल होती भई और स्त्रियां शूल की समान महा कठिन अधर्म मर्यादा में वर्त्तमान होती भई और राजे शूल की समान महा उग्र दंड करने और अभिमान करके संतजनों के अनादर में प्रवृत्त होते भये ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार के और भी जगत् के नाश होने के निमित्त महाउत्पात होते भये मैं ने देखे हैं ॥ ४ ॥ हे रामजी ! तिस से उपरांत संहार भैरव संपूर्ण ब्रह्मांड को निगल करके महा विशाल आकाश में कालरात्रि के साथ नृत्य करता भया और डिम डिम करके डमरू बजावता भया ॥ ५ ॥ हे रामजी ! तिस से उपरांत कालरात्रि महाभैरव में लीन होती भई सो महाभैरव परमात्मा में लीन होता भया ॥ ६ ॥ हे रामजी ! तिस से उपरांत मैं ने सूक्ष्मदृष्टि करके तिस अहंकाररूपी शिला में अनेक वृक्षों में एक एक प्रति अनेक पत्र देखे तिन वासनारूपी पत्रों में अनेक संकल्परूपी तृण देखे तिन तृणों में अनेक जगत् देखे हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो कुछ निर्मल शुद्ध सात्त्विक बुद्धि करके दृष्ट

होता है तिस को तीन नेत्रों करके शिव देखने को भी समर्थ नहीं होता है और इंद्र सहस्र नेत्रों करके देखने को समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ हे रामजी! इस से उपरांत तिस संसार का प्रलय देख करके अपने चित्त के फुरणों के यत्न से मैं पिछले संसार में हठ करके चला आया तहां आ करके तिस संसार में आकाशकोण को कुटिय को प्राप्त भया ॥ ९ ॥ हे रामजी! तहां अपने देह को ध्यानावस्था करके जड भये को जब देखने लगा तब ही तहां एक शुद्धस्वरूप एकांत बैठे और समाधि में स्थित भये सिद्ध को देखता भया सो सिद्ध मेरे हठ करके आवने को चिंतन करता भया और मृत भये अपने शरीर को त्याग करके स्थिति करता है तिस से उपरांत जब मैं तहां रहने के संकल्प को त्याग करके अपने स्थान प्राप्त होने को प्रवृत्त भया तब मेरी कल्पना करी कुटिया नष्ट भई सो सिद्ध भी आश्रय विना सात समुद्र से परे दिव्य पृथिवी में पतित भया तब मैं ने तिस की समाधि उतारने वास्ते अहिन की वर्षा करनेवाले बादल की समान गर्जना करी तब तिस की समाधि उतरी फिर मैं ने तिस को प्रश्न किया ॥ ३१० ॥ हे सिद्ध! तू कौन है और कहां से आया है ऐसा वचन सुनके तिस सिद्ध ने ध्यान करके संपूर्ण वृत्तांत जान करके मेरे प्रति वचन कहा ॥ ११ ॥

सिद्धजी का वचन—हे मुने! मैं ने अब तुम को पहिचाना है मैं तुम को वंदना करता हूं तुह्मारे को पहिले नहीं जानने का अपराध मेरे से भया है तिस अपराध को आप क्षमा करो संतों की क्षमा ही स्वभाव है ॥ १२ ॥ हे मुने! मैं देवताजन के नगर के बाग बगीचे में बहुत भ्रमा हूं तिन्हों में भोगवासना मोहित करती है जैसे भ्रमर कमलवन में भ्रमण करता है तैसे मैं भी भोगवासना करके तिन्हों में बहुत काल भ्रमण करता भया परंतु शांति नहीं भई ॥ १३ ॥ हे

मुने ! संसारसमुद्र में दृश्य पदर्थों की वासनारूपी तरंगों करके मैं बहुत व्याकुल भया काल के वेग करके दुःखी भया जैसे चातक वर्षा के विना व्याकुल हो करके दुःखी होता है ॥ १४ ॥ इस संसार में शब्दमात्रा रूपमात्रा रसमात्रा स्पर्शमात्रा गंधमात्रा से परे और कुछ पदार्थ नहीं हैं एतन्मात्र में मैं क्यों प्रीतियुक्त विलास करूं ॥ १५ ॥ इस सब ही चित्कलामात्र आकाश में है अथवा चित्कलारूप हैं चिन्मात्रा विना संपूर्ण असत्यरूप है इस में मैं नष्टबुद्धि पुरुष की समान किस अर्थ के वास्ते प्रीति को करता हूं ॥ १६ ॥ इस में जो विषय है सो विष के बरोबर विपरीत रसवाले हैं और स्त्रियां काम के मोह देनेवाली हैं इस के संपूर्ण रस अंतकाल में उलटे दुःखरूपी रस को देते हैं इन में आसक्त भया कौन पुरुष नहीं मरा है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! यह देह कैसा है समुद्र में बुदबुदे की समान जल्दी नष्ट होनेवाला है इस के आगे पींछे मृत्यु रहता है जैसे दीप की शिखा के साथ पवन रहता है ॥ १८ ॥ इस में बडे चतुर विषय वासनारूपी महाशत्रु चोर रहते हैं सो सब ही इस की आयुषारूपी सर्वस्व को हरते हैं इस वास्ते मैं सदा जागरण को करता हूं मोहरूपी निद्रा करके सो नहीं रहता हूं ॥ १९ ॥ हे मुने ! दिन दिन करके इस की आयुषा के भाग काल करके चले जाते हैं तिन को वारंवार चले जाते को कोई पुरुष नहीं जानता है ॥२०॥ यह मेरे को आज प्राप्त भया है यह फिर मेरे को आज मिलेगा ऐसी कल्पना में लगा भया लोग गत भये को प्राप्त भये काल के वेग को नहीं जानता है ॥ २१ ॥ भोगों के समूह भोगे हैं सो चले जाते हैं तिन्हों की अनित्यता को नहीं जानता है इस में शांति प्राप्त कहीं भी नहीं होती है ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं विक्षिप्त पुरुष की समान सुमेरुपर्वत के बगीचे की पृथ्वीपर्यंत भ्रमा हूं और

इंद्रादिक दश लोकपालों की पुरियों में अच्छी तरह से फिरा हूं मेरे को अखंड सुख कहीं नहीं मिला है ॥ २३ ॥ हे मुने! जहां देखे तहां सर्वत्र काष्ठ के वृक्ष हैं और प्राणी सर्वत्र मांस रक्त के देखे हैं पृथ्वी सर्वत्र मृत्तिका की देखी हैं और सर्वत्र दुःख और अनित्यता देखी है यह कहो किस में स्थिरता का विश्वास बने है ।।२४।। हे मुने! काल करके व्याकुल भये लोक को धन और मित्र और बांधव रक्षा करने को समर्थ नहीं हैं ॥ २५ ॥ हे मुने! मेरे को सुंदर स्त्रियां भी प्रिय नहीं हैं और उत्तम संपदा भी प्रीति नहीं करती है और स्त्री के चतुर कटाक्ष की समान चंचल जीवना भी रुचि को नहीं करता है ।।२६ ॥ हे मुने! यह शरीर पुराने पत्तों के बरोबर गिरनेवाला है और तिस का जीवना सूके हुए पत्तों के बरोबर गिरनेवाला है और बुद्धि अधीरता करके ग्रहण करी है और विषय रस सब ही रस करके रहित हैं ॥ २७ ॥ हे मुने! तिस से आज मेरा मोह भया है और देह पुराणे मंदिर जैसा उदासीनता को प्राप्त भया है अब इन्हों की अवस्था जो करनी सो ही उत्तम अवस्था है और इन देहादिकों की अवस्था करनी ही नीचली अवस्था है ॥ २८ ॥ हे मुने! इस संसार में ऐसा मानना आपदा यह आ भई है वह आपदा कैसी है महामोह को बधावनेवाली है और नित्यप्रति ऐसा ही मानने योग्य है और संसार में आसक्त नहीं होना ॥ २९ ॥ हे मुने! यह विषयरूपी विष के पवन हैं वह कैसे हैं चित्तरूपी कमल पुष्प से विवेकरूपी सुगंधी को हर करके मूर्छा को कर देते हैं ॥ ३३० ॥ हे मुने! चित्तरूपी बान हृदय से छूट करके विषयरूपी निशाने को धाय करके प्राप्त होते हैं और उत्तम गुणों को स्पर्श नहीं करते है जैसे कृतघ्न पुरुष उत्तम गुणों को स्पर्श नहीं करते हैं और दोषों को भी ग्रहण करते हैं ॥ ३१ ॥ हे मुने! आयुषा उत्पता पवन की समान चली जाती है जो मित्र हैं सो शत्रुरूप

हैं और भाई बंधुलोक बंधन रूप हैं और धन ही मृत्यु का रूप है ॥ ३२ ॥ हे मुने! संसार के सुखदुःखपरू हैं संसार की संपदा परम आपदा है और संसार के भोग महारोगों के रूप हैं और प्रीति जो है सो अप्रीति करनेवाली है ॥ ३३ ॥ हे मुने! काल के अनेक प्रकार के उलट पलट होते हैं और इष्ट जो हैं सो अनिष्ट हो करके प्राप्त होते हैं और प्रेमवाले जनों के वियोगों को देख करकें मेरा मन जर्जर जैसा होता है ॥ ३४ ॥ हे मुने! ये जो भोग हैं सो विषयों के भोगने से हैं जैसे सर्पों की फणा हैं किंचित्मात्र स्पर्श करने से भी डंश करके मारते हैं और भली तरह विचार युक्त देखने से नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ हे मुने! भोगों की आशा करके जो पुरुष बांधे गये हैं तिन्हों का पद पद में अनुमान होता है जैसे वन के काम करके मत्त हाथी हथनी को देखते ही बांधे जाते हैं तिन्हों को काम भोग तृष्णा करके बंधन होता है ॥ ३६ ॥ हे मुने! संपदा और स्त्रियां तरंगों के संग बरोबर क्षणभंगुर हैं ऐसा कौन चतुर पंडित पुरुष है जो सर्प के फण की छाया में प्रीति करता है ॥ ३७ ॥ हे मुने! ये विषय कैसे हैं देखने में अच्छे हैं परंतु देहविनाशसमय में दुःख देते हैं जैसे अपक्क अन्न भोजन करके लोक पीडा को प्राप्त होते हैं जैसे भोगों से नरक को प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ हे मुने! धन कैसे हैं सुखदुःख के मूल हैं और क्षय को प्राप्त होनेवाले हैं ज्ञानरहित मूढ पुरुषों करके सेव्यमान हैं यह मेरे को प्रीति नहीं करते हैं ॥ ३९ ॥ हे मुने! और यौवन की संपदा कैसी है शरदऋतु के बादल की समान जल्दी जानेवाली है अंत में दुःख देनेवाली है चिरकाल संताप करनेवाली है ॥ ६४० ॥ हे मुने! यह मनुष्य के जीवनेकी आयुषा हाथ लिये जल की समान क्षण में अंश अंश मात्र चलने करके गलती जाती है फिर नदी में वहे जल सरीखी फिर फिरती नहीं है ॥४१॥ हे मुने!

मन शांत भये संते आत्मस्वरूप में विश्रांत होने से जो सुख होता है सो पाताल स्वर्ग पृथिवी लोक के भोगों में नहीं होता है ॥ ४२ ॥ हे मुने ! बहुत दीर्घ काल करके अहंकाररहित होने से अपनी शुद्ध भई बुद्धि करके स्वर्ग और मोक्ष की तृष्णा का त्याग मैं ने धारण किया है ॥ ४३ ॥ हे मुने ! यह वृत्तांत मैं ने तुम को वर्णन करके सुनाया है जो मैं हूं और जैसी मेरी स्थिति है सो मैं ने कहा है अब जैसा तुम जानते हो तैसा करो ॥ ४४ ॥ हे मुने ! सिद्ध पुरुष आत्मविचार में तत्पर हो करके और उत्तम बुद्धि करके वास्तव वस्तु का विचार जब लग प्रमाण नहीं करा तब लग त्रिकाल ज्ञानी भी हैं तो भी दृढ निश्चय को नहीं करते हैं यह ब्रह्मादि देवता जनों के मन का स्वभाव है ॥४५॥ हे रामजी ! तब मैं ने कहा है हे सिद्ध मुने ! निश्चय दृढ हृदय में नहीं होना यह अविचार का अपराध है केवल तुम को ही नहीं है यह अविचार का अपराध स्वभाव मेरे में भी तुल्य है जिस कारण से यह कुटिआ मेरी है तेरे चिरकाल रहने वास्ते नहीं स्थिर करी है ऐसा अविचार मेरे में भी है ॥४६॥ हे रामजी ! इस से उपरांत मैं भी और वह सिद्ध भी अपने अपने चाहे देश को चले जाते भये ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! यह महारामायण मात्र शास्त्र के केवल देखने से अंतःकरण में सब पदार्थों में शीतलता उदय होती है जैसे बर्फ में शीतलता होवे है ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! चित्त की शीतलता मोक्ष है चित्त की संतप्तता बंधन है जिन को इतना भी अर्थ का ज्ञान नहीं है यह लोकों की मूढता महा आश्चर्यरूप है ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! यह लोक अपनी प्रकृति करके विषयों के वश हैं परस्त्री परधन में लोभसहित हैं इन को संसार के पदार्थों का उपदेश नहीं करना यह यथायोग्य अर्थ विचार से सुखी होता है और मुक्त होना चाहे तो सत्संग शास्त्रविचार से सदा सुखी होवे ॥ ३५० ॥

इति पाषाणोपाख्यानम्।

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! जो पुरुष इस प्रकार दृढ निश्चय करता है कि मैं चिदाकाश मात्र हूं ऐसी भावना स्थिर होत संते भावे वज्रपात होवे भावे प्रलय की अग्नि लगे तिन्हों का दाह पुष्पवृष्टि के कमलवन की समान शीतल होता है ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! मैं चिन्मात्र नहीं और मैं अमर नहीं मैं नष्ट होता हूं ऐसा जो रोवे है तिस को पहिला किया उपदेश सब भस्म के बिखेरने तुल्य है ॥ ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! मैं चिन्मात्र हूं और अमर हूं मैं नष्ट नहीं होता हूं ऐसे भाववाले पुरुष को उपदेश किया अमृत की वर्षा के तुल्य होता है ॥५३॥ हे रामजी ! सो वस्तु नहीं है जो सत्य नहीं है सो वस्तु नहीं है जो संसार में वृथा नहीं है जैसे जिस को निर्णय भया है तिस को तैसा ही दृढ भाव होता है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! नष्टबुद्धि पुरुष जो है सो भोगरूपी अग्नि में भले प्रकार दग्ध होते हैं जैसे दैवयोग से पर्वत में अग्नि लगने से पर्वत के वृक्ष दग्ध होते हैं ॥५५॥ हे रामजी ! भोगी पुरुष जो हैं सो खानपानादिक भोगपदार्थों के कीचड में पडे हैं जैसे विक्षिप्त पुरुष दुर्गंधि मलमूत्रवाले कुंड में पड जाते हैं ॥ ५६॥ हे रामजी ! यह पुरुष केवल अन्न के कण के खातर दिन रात्रि पडे भ्रमते हैं सो पुरुष पिपीलिका समान तुच्छ वृत्तिवाले हैं ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! सब ही दिशाओं में अनेक प्रकार के प्राणी हैं परंतु तत्त्वबोध करके युक्त कोई विरले प्राणी हैं जैसे वृक्ष सब ही फलपुष्पों करके अनेक पृथिवी में देखे हैं और कल्पवृक्ष कहीं विरले हैं॥५८॥ हे रामजी ! पराया चित्तरूपी महासमुद्र है सो अनेक तर्क-वितर्करूपी तरंगों करके चंचल है तिस के ठहराने को किनारे में स्थितपर्वत की समान संतजन समर्थ होते हैं ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! बुद्धि को नाश करनेवाली महाआपदा में और चित्त के अनेक तर्क-कुतर्कों की व्याकुलता में और महादुस्तर संकटों में संतजनों को तारने की गति संतजनही हैं

॥ ३६० ॥ हे रामजी ! ऐसा मन में दृढ नहीं करना कैसा है मेरे को विचार करके क्या अर्थ है जो होना है सो मेरे को होवे ऐसी कल्पना धार करके गढे में कीडे की समान उद्यम पुरुषार्थ से रहित नहीं होना ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! गुणों के और दोषों के समझने के अर्थ बालपने से लेकर जैसे बने तैसे ही शास्त्र के प्रसंग करके बुद्धि को बधावे ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! दोषक्लेश को त्याग करके सज्जनों की संगति को करे जिन करके निर्वाणपद की प्राप्ति नहीं होवे ऐसे दोषों को और गुणों को भी यत्न करके क्रम से त्याग देवे ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! नीचसंगति करके उत्तम वस्तु पदार्थ अधमरूप को प्राप्त होता है और स्थिर पदार्थ चंचलता को प्राप्त होता है जैसा प्रसंग मिले तैसा ही स्वभाव होता है और साधुजन असाधुजन के स्वभाव को प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! यह महा आश्चर्य है जो साधुजन दुष्टजन जैसा होवे देशकाल के वश से पापी पुरुषों के संग से पुण्यात्मा भी पापी पुरुष होता है जैसे देशकाल के प्रभाव से लोकों में आश्चर्यरूपी उत्पात भी होते हैं ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! सब ही काम त्याग करके सज्जनों की संगति करे यही दुःखदाई कर्मों को दूर करने का उपाय है इस सत्संग करके इहलोक और परलोक को सिद्ध करने का साधन करने योग्य है ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! सज्जन पुरुष से कदाचित् दूर नहीं रहे बहुत प्रेम विनंति करके सज्जन पुरुष की सेवा करे सज्जन पुरुष और उत्तम वृक्ष एक स्वभाववाले होते हैं जैसे उत्तम वृक्ष के पुष्पों की रेणु जिस को लगे तिस को सुगंधियुक्त करती है तैसे सज्जन पुरुष की संगति करके नीच पुरुष को भी सज्जनता होती है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! सत्संगवाला पुरुष समाधि करने विना भी समाधान को प्राप्त होता है महादुःखी होवे तो भी महासुख को प्राप्त होता है और व्यवहार करे तो भी मौन धारने के फल को प्राप्त होता है कर्म करे तो

भी कर्म बंधन से रहित होता है ॥६८॥ हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञेय वस्तु परमात्मा को जानते हैं सो निर्मलचित्त होते हैं सो ही संतजनों के भाव को जानते हैं जैसे सर्प के चरणों को सर्प ही जानते हैं ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! जो उत्तम पुरुष हैं सो अपने अंतःकरण के भाव को गुप्त करते हैं चिन्ह को उत्तम से भी उत्तम जानना जिस कारण से चिंतामणि पाषाण की किंमत बजार के लोकों से नहीं होती है तैसे ही उत्तमजनों के भाव को जाननेवाले कोई विरले उत्तम जन हैं ॥ ३७० ॥ हे रामजी ! एकांत में रहना और अभिमानरहित होना और पदार्थ संग्रह से रहित होना और लोकों की स्तुति विनती से रहित होना यह उत्तम जनों के गुण उत्तमजनों को जैसा आनंद करे हैं तैसे जगत् की आप संपदा आनंद नहीं करती है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! अहंकारवाले पुरुषों को यह इच्छा रहे है कि लोक मेरे उत्तम गुणों को जाने और लोक मेरी पूजा को करे ऐसी वासना निरंतर रहती है जो अहंकाररहित है तिहों को यह वासना नहीं होती है इस से अपने भाव को छिपा रखते हैं ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! जिस को संपूर्ण जगत् तृण समान होता है किंचित् गर्दके किणके समान भी प्रीति करती है तिस को और जगत् के पदार्थ ग्रहण करने की इच्छा कहां से होवेगी ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता पुरुष अपने देह में प्राप्त भये शीतवातादिक दुःखों को पराये देह की समान अनादर से देखता है ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तत्त्ववेत्ता है सो निर्मल सात्विक बुद्धिरूपी ऊंचे शिखर पर चढा है आपसे कैसे रहता है और शोच करने योग्य अज्ञानी पुरुषों को संसारसमुद्र में मग्न भये को देख करके दया करके शोच करता है जैसे पर्वत में स्थित भया पुरुष पृथिवी में स्थित जनों को नीचे स्थान में देखता है सो उन को तुच्छ जानता है तैसे तत्त्ववेत्ता पुरुष संसारी लोकों को देखता है तृण समान तुच्छ जानता है॥७५॥

हे रामजी! तत्त्ववेत्ता पुरुष शांति को प्राप्त होने से आत्मयोग से प्राप्त भई अष्ट सिद्धि को मानता नहीं है ॥ ७६ ॥ हे रामजी! आठ प्रकार की योगसिद्धियां हैं सो कौन हैं अणिमा १ महिमा २ गरिमा ३ लघिमा ४ प्राप्ति ५ प्राकाम्य ६ ईशित्व ७ वशित्व ८ यह आठ प्रकार का ऐश्वर्य है अणुरूप होना १ पर्वतसमान विशाल होना २ पर्वतसमान भारी होना ३ रूई समान हलका होना ४ सर्व देश में प्राप्त होना ५ अपनी कामना का स्वरूप और पदार्थ को प्राप्त होना ६ त्रैलोक्य का ईश्वर होना ७ सब को अपने वश करना ८ सो तत्त्ववेत्ता को तृण समान होती है दूसरे पुरुष में देख करके मन में आश्चर्य नहीं मानता है ॥ ७७ ॥ हे रामजी! इस प्रकार की और भी सिद्धियां हैं कोई पर्वत की कंदरा में सिद्ध हैं कोई पवित्र आश्रमों में सिद्ध हैं और कोई गृहस्थाश्रम में सिद्ध हैं कोई बहुत भ्रमने में सिद्ध हैं कोई भिक्षाटन करके सिद्ध हैं कोई केवल जप से सिद्ध हैं कोई मौन से सिद्ध हैं कोई ध्यान से सिद्ध हैं कोई पंडिताई से सिद्ध हैं कोई शास्त्रश्रवण से सिद्ध हैं कोई राज्य करके सिद्ध हैं कोई मूढवृत्ति की समान सिद्ध हैं कोई गुटका करके सिद्ध हैं कोई आकाश में उडने से सिद्ध हैं कोई कलाशास्त्र से सिद्ध हैं कोई दीनरूप करके सिद्ध हैं कोई आचार त्यागने से सिद्ध हैं कोई वेदपाठ करके सिद्ध हैं कोई विक्षिप्त होय करके सिद्ध हैं कोई संन्यास धारण करके सिद्ध हैं परंतु अविद्या की शांति किसी को नहीं होती है ॥ ७८ ॥ हे रामजी! तुम को महारामायण श्रवण करके अविद्याकी शांति भई है तो भी निरंतर अभ्यास करने बिना भली तरह से नहीं होती है ॥ ७९ ॥ हे रामजी! तिस से असत्य शास्त्रों के विचार से निवृत्त होना उत्तम शास्त्र के विचार से शांति प्राप्त होवेगी जैसे रणलीला करने से जीत प्राप्त होती है ॥ ३८० ॥ हे रामजी! इस शास्त्र से विना कल्याण को

देनेवाला और उपाय न भया है और न होवेगा तिस से परम उत्तम बोध वास्ते इसी शास्त्र को विचारण करो ॥ ८१ ॥ हे रामजी! वासना के त्याग से विना आत्मा का उद्धार करने को कोई और उपाय समर्थ नहीं है तिस से यत्न करके वासना का त्याग करना ॥ ८२ ॥ हे रामजी! जो जगत् के भाव सत्य विद्यमान होवे तो नाश से रहित होवे तिस से सब जगत् के भाव ससे की शृंग की समान असत्य ही हैं ॥ ८३ ॥ हे रामजी! संपूर्ण भावों की तृष्णा त्यागने से संपूर्ण साधन करने की समाप्ति होती है तिस से समाधान करके चित्त सिद्ध होता है सो ही निर्वाण की प्राप्ति है ॥ ८४ ॥ हे रामजी! जो पुरुष शांत इच्छावाले हैं और बोध करके वासनारहित भये हैं तिन्हों को चाहे विना भी निर्वाण प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ हे रामजी! बोध की यही अवधि है जो तृष्णारहित होना और तृष्णा निवृत्त नहीं होवे तो पंडिताई भी मूर्खताई सी है ॥ ८६ ॥ हे रामजी! हजारों में भी हजारों से कोई एक पुरुषार्थ के उद्यम को करता है तिस से वासना के जालबंधन को छेद करके संसार से मुक्त होता है जैसे पिंजरे को तोड करके सेर निकसता है ॥ ८७ ॥ हे रामजी! सो ही शास्त्र का श्रवण है जो ज्ञान को देवे सो ही ज्ञान है जिस से समदृष्टि होवे सो ही समदृष्टि है जिस से सुषुप्ति अवस्था की समान जाग्रत में भी एकाग्रता होवे ॥ ८८ ॥ हे रामजी! समदृष्टि जो पुरुष हैं तिन्हों को महाघोर सुखदुःख विस्तार करके होवे तो भी एकरूप आनंद से उदासीनता नहीं होती है ॥ ८९ ॥ हे रामजी! राजा शिवि समदृष्टि करके कबूतर की रक्षा वास्ते अपना मांस प्रसन्न मन हो करके बाज नामा पक्षी को छेदनकर देता भया ॥ ३९० ॥ हे रामजी! तैसे राजा जनक संपदा करके संयुक्त अपनी नगरी दग्ध भये संते समदृष्टि करके शोक को नहीं करता भया ॥ ९१ ॥ हे रामजी! तैसे मातंग ना-

मा समदृष्टि करके परोपकार वास्ते अपना देहत्यागने से उत्तम विमान पर चढ करके परमपद को जाता भया ॥ ९२ ॥ हे रामजी! तैसे बालचंद्रनामा मुनि समदृष्टि करके गुड के लड्डु की समान प्राप्त भई अग्नि को खा लेता भया ॥ ९३ ॥ हे रामजी! तिस से समदृष्टिवाला तत्त्ववेत्ता पुरुष मरण को और जीवन को नहीं चाहता है जैसा मिले तैसा आचरण करता हुआ रागद्वेष से रहित विहार करे॥९४॥ हे रामजी! जब लग आरबला है तब लग देह सावधान विचरता है तिस से ऐसे विचार करके जैसे बने तैसे एकाग्र वृत्ति करके विचरते रहना और किसी से प्रयोजन क्यौं करता है ॥९५॥ हे रामजी जो कोई अपने वर्णाश्रम के कर्म क्रियाके क्रम में त्याग करके तूष्णीभाव को धारण करे तो यह देह कर्म से खाली नहीं रहता है तिस से स्वतंत्रता करके विपरीत कर्म में प्रवृत्त होवेगा तब लोकमर्यादा क्षीण होवेगी तिस कारण से सत्कर्म करने में दोष नहीं मानना ॥९६॥ हे रामजी! कर्म त्यागनेवाले लोकों के समाज में नहीं रहते हैं जहां स्वप्न से भी लोक देखने में न आवे ऐसे महामूढ मृग जहां रहते हैं ऐसे वन में लग रहते है ॥ ९७ ॥ हे रामजी! केते पुरुष आधा ज्ञान पा करके आधे मार्ग को करके जैसे आधी सोई आधी जाग्रत बुद्धिवाले ज्ञान के और ध्यान के गर्व करके कर्म को त्याग देते हैं सो पुरुष इहलोक परलोक से भ्रष्ट होते हैं ॥ ९८ ॥ हे रामजी! चित्त को चिंतवन से रहित कर केवल आत्मसत्ता के चिंतन में प्राप्त करके समान वृत्ति करके सुख से स्थित हो करके परब्रह्मरूपी परमआकाशरूप को धारण कर॥९९॥ हे रामजी! तुम परमार्थ को प्राप्त भये हो और रागद्वेषादि दोषों से रहित भये हो ऐसे और समबुद्धि भये हो और आनंद करके उदित मन भये हो ऐसे तुम महात्माजनों के भी महात्मा हो अब शोक से रहित हो और निःशंक हो और एक आत्मस्वरूप भये हो और ज-

न्ममरण से रहित ऐसे परम पवित्र परम निर्वाण पद में स्थित हो जाओ ॥ ४०० ॥ हे रामजी! अब तुम को ज्ञान के बोध वास्ते और अधिक वचन विस्तार करके क्या प्रयोजन है यह हम ने तुम को सब ज्ञान शास्त्र का आदि शिरोमणि सार ज्ञान उपदेश किया है इस करके तू सर्ववेत्ता भया है और पूर्णज्ञानी भया है ॥ १ ॥

श्रीवाल्मीकिजी का वचन—हे मुनिश्रेष्ठ! वसिष्ठजी ने ऐसा वचन कह करके तूष्णी भये संते श्रीरामचंद्र सर्व प्रकार की इच्छा रहित होते संते संपूर्ण सभा के जन भी ध्यान में एकाग्र होते भये सब ही विशालबुद्धि करके ब्रह्मपद में विश्रांत होते भये जैसे भ्रमर गुंजार शब्द करके कमलपुष्प के वन में रसमान करने में प्रवृत्त होता है ॥ २ ॥ हे भरद्वाज! मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी निर्वाण प्रकरण की कथा समाप्ति का मंगलाचरण करते भये तब संपूर्ण सभा के लोक शांतवृत्ति भये और निर्मल अंतःकरण होते भये और निर्विकल्प समाधि की अवस्था को प्राप्त होते भये ॥ ३ ॥ हे भरद्वाज! तिस काल में संपूर्ण आकाशचारी और स्वर्गवासी सिद्धजनों के मुखसे जय शब्द और स्तुतिशब्द होते भये और सभा में स्थित विश्वामित्रादि मुनियों के मुख से भी पूर्ण भावना से स्तुति शब्दवाली वाणियां प्रकट होती भईं ॥ ४ ॥ हे भारद्वाज! तिस काल में महा उत्सव के कोलाहल शब्द करके संपूर्ण दिशा पूर्ण होती भई परदे का प्रतिशब्द अत्यंत मधुर होता भया जैसे पवन करके छिद्रद्वार करके पूर्ण भये कीचक जाती के वांसों से मधुर शब्द होते हैं ॥ ५ ॥ और आकाश में स्थित भये सिद्धजनों के जय शब्द होते भये और देवतों के नगारे के शब्द होते भये और पुष्पों की वर्षा को देवता करते भये ॥ ६ ॥

सिद्ध स्तुति करते हैं—हे मुने! ब्रह्मा के कल्प के प्रारंभ से

ले करके सिद्धों के समाजों में हजारों मोक्ष के उपाय सुने हैं और कहे भी हैं परंतु महारामायणरूपी मोक्ष के उपाय बरोबर कोई नहीं है ॥ ७ ॥ वसिष्ठमुनिजी के वचन के विलास करके प्रकट भये इस महारामायणरूपी मोक्ष के उपाय करके पशु पक्षी स्त्रियां और बालक और सर्पकीटादिक सब ही परमानंद को प्राप्त भये हैं ॥ ८ ॥ श्रीवसिष्ठजी ने युक्ति करके और दृष्टांतों करके और न्याय करके जैसा श्रीरामचंद्रजी को बोध करा है तैसा साक्षात् निकटवर्ती अपनी स्त्री अरुंधती को भी बोध नहीं करा है ॥ ९ ॥ इस मोक्षोपाय कथा करके पशुयोनि भी निर्विकार स्थिति को पा करके मुक्त होवेगा और अधिकारी जो मनुष्य हैं सो कैसे मुक्त नहीं होवेंगे ॥ ४१० ॥ इस ज्ञानरूपी अमृत को कर्णरूपी अंजलियों करके पान करने से संपूर्ण लोक नई सिद्धि की संपदा को प्राप्त भये हैं ॥ ११ ॥

विश्वामित्रजी का वचन—अहो इति महा आनंद भया है वसिष्ठमुनिजी के मुख से परम पवित्र ज्ञान हम ने सुना है इस के श्रवण से हम हजार गंगास्नान के फल को प्राप्त भये हैं ॥ १२ ॥

नारदजी का वचन—जो हम ने ब्रह्मलोक में नहीं सुना है और स्वर्ग में और मनुष्यलोक में नहीं सुना है सो ज्ञान आज हम ने सुना है आज हमारे कर्ण पवित्रता को प्राप्त भये हैं ॥ १३ ॥

राजा दशरथजी का वचन—हे वसिष्ठ! मैं अपने शरीर करके स्त्रियों करके संयुक्त और इहलोक और परलोक में सुख देनेवाले पुण्य करके और राज्य करके अपने भृत्यलोकसहित संपदा के देने करके तुम्हारी पूजा करता हूं ॥ १४ ॥

श्रीवसिष्ठजी का वचन—हे राजन्! हम ब्राह्मण लोक के-

वल प्रणाममात्र से प्रसन्न होते हैं सो तुम ने हम को प्रणाम करी है और पूजा की वांछा नहीं है ॥ १५ ॥

श्रीरामजी का वचन—हे मुने! पूजा करने में तुम ने हम को निरुत्तर किया है तिस से मेरे में भी प्रणाममात्र सार है इस से तुम्हारे चरणकमलों को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥ श्रीरामचंद्रजी ऐसा कह करके पुष्पों की अंजली ले करके वसिष्ठजी के चरणकमलों पर चढावते भये जैसे हिमाचल के वन में बर्फ शोभती है तैसे वसिष्ठजी के चरण कमल में चढे हुए पुष्प शोभते भये ॥ १७ ॥ सो नीति को जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी आनंद के अश्रुजल करके पूर्ण नेत्र भये गुरुजी के चरणकमलों को बारंबार प्रणाम करते भये ॥ १८ ॥

श्रीवसिष्ठजी का वचन—हे राजन्! हे रामजी! तुम रघुकुल के चंद्रमा हो जो मैं कहता हूं तिस को करो इतिहासकथा की समाप्ति में ब्राह्मण अवश्यमेव दक्षिणा भोजन वस्त्र भूषण गोदान और पृथिवी दानादिकों करके पूजने योग्य हैं ॥ १९ ॥ तिस से आज सर्व प्रकार करके श्रद्धा-भक्ति-विधिसहित ब्राह्मणों को प्रसन्न करो तब तुम को मोक्षोपाय वेदांत शास्त्र श्रवण करने का सांग फल प्राप्त होवेगा ॥ ४२० ॥ इस मोक्षोपाय कथा की समाप्ति में निर्धन पुरुष को भी अपनी यथाशक्ति ब्राह्मणों की पूजा करनी योग्य है और राजा को क्यों नहीं पूजा करनी ॥ २१ ॥

श्रीवाल्मीकिजी का वचन—हे भरद्वाज! राजा दशरथ मोक्षोपाय कथाश्रवण से संसार की मोहनिद्रा के अंत होने के हर्ष में सात दिन रात्र महा उत्सव को करता भया जिस में स्वर्ग की संपदा भी तुच्छ होती भई ॥ २२ ॥ हे भरद्वाज! तू महाबुद्धि है मेरे

शिष्यों में श्रेष्ठ है श्रीरामचंद्र से आदि श्रोता तत्त्ववस्तु को जान करके शोकमोहादि से रहित भये परमानंद में मग्न होते भये ॥ २३ ॥ हे भरद्वाज! इसी ज्ञानदृष्टि को धारण करके तू भी रागद्वेषरहित भया और संशयरहित भया और शांतमति भया अब जीवन्मुक्त-दशा को प्राप्त हो जा ॥ २४ ॥ हे भरद्वाज! जो महात्मापुरुष मोक्षोपायकथा के भाव को जानेंगे सो तत्त्ववेत्ता जनों में श्रेष्ठ होते हैं फिर संसारबंधन को नहीं प्राप्त होते हैं और बहुत वचन विस्तार कहने करके क्या अर्थ बनै है ॥ २५ ॥ जो कोई पुरुष बहुत शास्त्र श्रवण करनेवाले हैं तिन के आगे भली प्रकार करके आगे फिर व्याख्यान करेंगे सो फिर बालभाव को नहीं पावेंगे और कहने से क्या अर्थ है ॥ २६ ॥ जो पुरुष इस का अर्थ जानने विना भी इच्छा से और श्रद्धा से रहित भये भी इस कथा को वाचेंगे और लिखेंगे और लिखावेंगे और श्रवण करेंगे और लोगों को पढावेंगे उत्तम देश-पुण्य तीर्थ में संतजनों के आगे देवता के आगे कथा लगावेंगे सो भी पाप से रहित होवेंगे ॥ २७ ॥ जो पुरुष इस कथा के संबंध को करेंगे सो राजसूय अश्वमेधादि यज्ञ के फल करके युक्त होवेंगे और बहुत स्वर्ग में निवास करेंगे सो मोक्ष को प्राप्त होवेंगे ॥२८॥ हे भरद्वाज ! इस मोक्षोपायकथा को ब्रह्माजी पहिले आप ही अनुभवसहित विचारण करके लोगों के उपकार वास्ते रचन करते भये और ब्रह्माजी से वसिष्ठजी प्राप्त होते भये श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी की सभा में प्रकट करके कहते और तहां से सुन करके मैं ने तुम को प्रेमभक्ति से कही है ॥२९॥ हे भरद्वाज ! जिस का इस कथा में मन लगे तिस के माता पिता संपूर्ण कुल देश पवित्र होता है इस कारण से

इस में श्रद्धाभक्तिसहित मन को स्थिर करना योग्य है ॥ ४३० ॥

इति श्रीमहारामायणे मोक्षोपायकथायां वासिष्ठसारे
निर्वाणप्रकरणस्य उत्तरार्द्धसारोद्धारः समाप्तः ।
॥ शुभं भूयात् सर्वजगताम् ॥ श्रीराम ॥

सवैया–ग्रंथ वसिष्ठ रचो मुनिआतमतत्त्व निरूपणाख्यात सुभावै ।
जोहि पढे नर विश्वसमस्त अतीत भजै पद नाक विहावै ॥
जंबुसतीसरआदिहुं को नृप श्रीरणवीर नरेश शुभावै ।
सो अनुवादन लोकहुं के उपकारक अर्थन गूढ दिखावै ॥१॥

दोहा–शिवशंकर पंडित कियो, जिहि अनुवादन सार ॥
लेखक तुलसी दास लिपि, छपवायो जु विचार ॥ २ ॥
चन्द्रवाणनवइंदुमित, संवत् विक्रम जान
मुद्रित इह पूरण भयो, वासिष्ठी व्याख्यान ॥ ३ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना.
कल्याण-मुंबई.

नूतन विक्रेय पुस्तकोंकी सूची.

	की. रु. आ. पै.
यजुर्वेद संहिता.	३–०–०
शारीरिक (शङ्करभाष्य)	१०–०–०
गीता चिद्घनानन्दी भाषाटीका	८–०–०
गीता श्लोकार्थ दीपिका अति उत्तम	१–४–०
शाङ्कर दिग्विजय सटीक	३–०–०
शिवस्वरोदय (भाषाटीका)	०–१०–०
शिव संहिता (भाषाटीका)	१–०–०
श्रीमहाभारत सटीक	४०–०–०
हरिवंश पुराण सटीक	५–०–०
बाल्मीकिरामायण केवल भाषा	१०–०–०
श्रीमद्भागवत श्रीधरी टी० बड़ा	१५–०–०
" व्रजभाषा टीका	१२–०–०
" सचूर्णिका	८–०–०
मनुस्मृति सान्वय भाषा टीका	२–८–०
संस्कार भास्कर	३–०–०
वैवाह पद्यावली	०–१२–०
महाभाष्य (कैय्यट भाष्यसह)	१२–०–०
सिद्धांत कौमुदी (प्रसाद टीका)	४–०–०
लघुसिद्धान्त कौमुदी बड़ी	०–१२–०
सारस्वत सटीक	०–१२–०
तर्कसंग्रह लघुबोधिनी	०–६–०
बृहज्जातक (भाषा टीका)	१–८–०
ताजक नीलकंठी (भाषाटीका)	१–८–०
गीतगोविंद संस्कृत टीका तथा भाषाटीका	१–४–०
सुभाषित रत्नाकर	२–०–०
भागवत चम्पू	१–०–०
अष्टाङ्ग हृदय (वाग्भट)	१०–०–०
बृहन्निघंटु रत्नाकर (४ भाग)	१२–०–०
हारीत संहिता भाषाटीका	३–०–०

	की. रु. आ. पै.
अमृतसागर कोश सहित	२–४–०
बृहत्स्तोत्र रत्नावली ३ भाग	३–१२–०
वेदार्थ दीपिका	०–१०–०
सम्प्रदाय कल्पद्रुम	१–४–०
दुर्गासप्तशती शान्तनवी टीका	१–४–०
बृहत्स्तोत्र रत्नाकर १४४ स्तोत्र	१–०–०
गोपालसहस्रनाम भाषाटीका	०–८–०
शुकसागर भाषा न० १	१०–०–०
तुलसीकृत रामायण बड़ा	५–०–०
" मझोला	२–८–०
" गुटका	१–४–०
व्रजविलास बडा	५–०–०
विचारसागर सटीक	१–१२–०
प्रेमसागर बडा	२–०–०
विदुरनीति	०–४–०
वेणीसंहार नाटक (भाषा)	०–१०–०
गरुडपुराण भाषाटीका	१–०–०
भक्तिप्रबोध	०–२–०
विष्णुसहस्रनाम दीपिकाभा० टी०	१–०–०
राधारासविलास	०–३–०
वैष्णव धर्मशिक्षा	०–२–०
भूतपुरीमहात्म्य	०–३–०
प्रेमशतक	०–४–०
संस्कृत नामावली	०–२–०
भजनावली	०–८–०
भवानी मानसिक पूजन	०–१–०
बटुकभैरव	०–१–६
गीतामाहात्म्यभाषा	०–१–६
विष्णुसहस्रनाम चंद्रिका भा. टी.	०–१२–०
आळवंदार भाषाटीका	०–४–०
गीताभाष्य रामानुजीय	२–०–०
कर्मविपाक भाषाटीका	१–४–०

सर्वमान्य तीन अपूर्व संस्कृत व्याख्याओं सहित.

श्री वाल्मीकीय रामायण।

संस्कृतसाहित्य के अलौकिक क्षमतासम्पन्न विश्वविदित आदिकवि ऋषीश्वर वाल्मीकि की अमियवाणी से निसृत महान् महिमा—मण्डित अखिलमान्य पुरुषोत्तम भगवान अयोध्यानरेश की नरलीला का वर्णन आजकल हमारे भारतवर्ष ही भर को अनुपम अगम्य और अप्राप्य आनन्दप्रद नहीं, परन्तु सारे संसार में इस सुरसमय अद्वितीय. ग्रन्थ का अनुवाद होने लगा है. उस कवि की इस कूट रचना का संस्कृत भाषा के परिचयी सुगमतापूर्वक स्वाद ले सकें, इस अभिप्राय से 'तनिश्लाकी' 'रामानुजी' और 'भूषण' नामक तीन व्याख्याओं से भूषित यह अपूर्व काव्य पण्डित महाबनशास्त्री और प्रभाकर शास्त्री द्वारा संशोधित कराकर बहुतही उत्तम चिकने और सुन्दर कागज पर स्पष्ट मनोहर अक्षरों में छापकर प्रकाशित किया जाता है.

इस में पांडित्यपारङ्गत कल्पनाकोविद श्री गोविन्दाचार्य्य की विशद व्याख्याशक्ति का रमणीय सुन्दर कानन है, भूषण व्याख्या का सुरस अम्बुप्रवाह है, जगत्‌रमण श्री अवधेश कुमार भगवान रामचन्द्र का कलितकीर्तन है.

इस की विशेष बड़ाई में हम और क्या कहें जो सारे ग्रन्थ का रसानुभव करने के लिये नमूना देखना चाहें तो केवल चिट्ठी लिखने ही पर हम बिना किसी प्रकार का खर्चा लिये "तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ" आदि एक श्लोक की व्याख्या सब को भेज सकेंगे. बाल. अयोध्या, आरण्य और सुन्दर काण्ड छपचुके हैं शेष छप रहे हैं. दाम पूरे ग्रन्थ का २५ रु. है, जो इस समय २५ रु. भेजकर ग्राहक होंगे वे ऊपर लिखाहुआ बृहद्‌विष्णुसहस्रनाम पांच रुपये मोल का ग्रन्थ बिना खेवा खरचा के घर बैठे उपहार पावेंगे.

श्रीमद्भागवत संस्कृत तथा भाषाटीकासहित।

अठारहों पुराणोंमेंसे श्रीवेदव्यासप्रणीत श्रीमद्भागवत सबसे कठिनहै और इसका प्रचार भारतखण्डमें सबसे अधिक है यह ग्रंथ क्लिष्टताके

कारण सर्वसाधारण लोगोंको टीका होनेपरभी अच्छीरीतिसे समझना कठिनथा कोई २ स्थलमें बडे २ पण्डितोंकी बुद्धि चक्करमें उडजातीथी इसलिये बिना संस्कृतपढे सर्व साधारण पण्डित व स्वल्पविद्या जाननेवाले भगवद्भक्तोंके लाभार्थ संस्कृतमूल अतिप्रिय ब्रजभाषाटीकासहित जो कि हिन्दीभाषाओंमें शिरोमणि और माननीयहै उसी भाषामें टीका बनवाकर प्रथमावृत्ती छपायी-थी वह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदके कृपाकटाक्षसे बहुतही जल्दी हाथोंहाथ बिकगई अब इसकी द्वितीयावृत्ती प्रथमावृत्तीकी अपेक्षा अच्छीतरह शुद्ध करवाके मोटे अक्षरमें छपायीहै और संबंधित कथाओंके सिवाय उत्तमोत्तम भक्तिज्ञानमार्गी ५०० अतीव मनोहर दृष्टांत दिये हैं कि जिनके श्रवणसे श्रोताओंका मन भावनानुसार मग्न होजाता है कागज विलायती बढिया ल-गायाहै माहात्म्य षष्ठाध्यायी भाषाटीका सहित इसके साथही है प्रथमावृत्तीमें मूल्य १५ रुपय्येथा इस आवृत्तीमें केवल १२ बाराही रुपया रक्खाहै ज्यादा प्रशंसा बाहुल्यमात्रहै.

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत-
रामायण (सटीक)
पंडित ज्वालाप्रसादकृतटीका।

लीजिये महाशय ! कविवरशिरोमणि तुलसीदासकी अपूर्व कवि-ताका अक्षरार्थ भाषामृतभी लीजिये सम्पूर्ण क्षेपकों सहित और श्रु-तिस्मृतिपुराणोंके अद्भुत दृष्टांतोंसहित जिसमें सम्पूर्ण शंका समा-धानका विवरण है, तुलसीदासजीका समग्र जीवनचरित्र, माहात्म्य, रामजन्म चतुर्दशवर्ष वनवासका तिथिपत्र और अष्टम रामाश्वमेध लवकुशकाण्डभी अक्षरार्थ सम्मिलित है, गूढार्थ, अक्षौहिणीकी सं-ख्या, प्रश्नावली, भजनमाला, प्रभाती आदिके सिवाय परम मनोहर फोटोग्राफके विचित्र चित्रभी हैं, सूर्यवंशका वृक्ष और हनुमानजीको